ओ३म्

१८५७

के स्वातन्त्र्य संग्राम में

स्वराज्य प्रवर्त्तक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

का क्रियात्मक योगदान

पिण्डीदास ज्ञानी

आर्य प्रकाशन अमृतसर-देहली

१६.५.१०

२६४६

(सोनीपत)

१८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम में

स्वराज्य प्रवर्त्तक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

का

क्रियात्मक योगदान

लेखक की अन्य पुस्तकें

१.	गा—विश्वकी -मा	मूल्य	२-००
२.	विविध-वैदिक-यज्ञ-विधान	”	२-००
३.	वैदिक गुरमति (गुरुमुखी) की भूमिका	”	०-५०
	वैदिक गुरमति (गुरूमुखी) लेखक डा० धर्मानिन्तसिंह पीएच. डी	”	१०-००
४.	इस्लाम कैसे फैला ?	अलभ्य	
५.	पुराण और वाममार्ग	”	
६.	महानिर्वाण तन्त्र क्या है ?	”	
७.	पुराणों और तन्त्रोंका घनिष्ट सम्बन्ध	”	
८.	हमारी मातृ भाषा केवल हिन्दी (देवनागरी तथा गुरुमुखी लिपि में—)	प्रति	०-२५

भावीप्रकाशन

९. मेरा राम (बाल्मीकि रामायण के आधारपर श्री राम चरित्र)
१०. नीति-निपुण नंद-नदन (महाभारत के आधारपर श्री कृष्ण चरित्र)
११. आर्याभिविनयका (गम्भीर) स्वाध्याय

व्यवस्थापक :

'आर्य प्रकाशन' २१९, दुर्ग्याणा अमृतसर तथा देहली

ओ३म्

१८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम

में

स्वराज्य-प्रवर्त्तक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

का

क्रियात्मक योगदान

१६.५.१९

...वैदिक ...कालेज
२६४६
...गढ़ (सोनीपत)

पिण्डीदास ज्ञानी

आर्य प्रकाशन, अमृतसर तथा देहली

अगस्त १९७१

प्रकाशक :
आर्य प्रकाशन
२१९-दुर्ग्याणा, अमृतसर तथा देहली

साधारण संस्करण ७)
राज संस्करण १०)

प्रथमावृत्ति

मुद्रक :
श्रीमती कमला बख्शी
विक्रम एण्ड कम्पनी,
६/९ इण्डस्ट्रियल एरिया, कीर्ति नगर,
न्यू देहली-१५

विषय-सूची

प्रारम्भिक शब्द vii
प्राक्-कथन xv
आभार-प्रदर्शन xviii
सादर-समर्पण xxi
बर्तानियासे प्रोत्साहन xxii
विश्वविद्यालय कुलपतिका आशीर्वाद xxiii
श्री पं० युधिष्ठिरजी मीमांसिकका सद्भावना-सन्देश xxvi
पूर्व अध्यक्ष पंजाब-हरियाणा भाषा विभागके उद्गार xxvii
पूर्व प्रधान केन्द्रीय आर्यसभाका प्रेम-प्रदर्शन xxix
१—१८५७ : क्रियात्मक योगदान १
२—स्वराज्य-प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती :
महर्षिके आगमनसे पूर्व देशकी दशा ३१
३—विदेशी विद्वानोंका घृणित भ्रमजाल ४४
४—विदेशी विद्वानोंके लेखोंका प्रभाव ६१
५—क्या आर्य लोग कहीं बाहरसे आये ? ६६
६—विदेशियों द्वारा वेद-सम्बन्धी अनर्गल-प्रचार ७२
७—प्रबल शब्दोंमें महर्षिने स्वराज्यकी भावनाका जातिके
मस्तिष्कोंमें पुन: उद्बोधन किया ७३
८—आर्य्यावर्त्तकी महिमा ७७
९—विनाशके हेतु ७९
१०—महर्षिको स्वदेशकी चिन्ता ८५
११—देशका वैभव ९८
१२—महर्षिका प्रभाव स्वदेशी-विदेशी विद्वानोंपर १०७
१३—हमारा पक्ष १३८
१४—देश-भक्तोंकी चार श्रेणियां १४२
क—नरमदलके मॉडरेट १४३
ख—गरमदलके एक्स्ट्रीमिस्ट १५०
ग—कांग्रेसी १५५
घ—क्रान्तिकारी १७५
१५—अन्तिम निवेदन २२२
१६—महर्षि दर्शन २२५

ओ३म्

प्रारम्भिक-शब्द

आरम्भ सृष्टिसे लेकर महाभारतके महा-विनाशकारी महासंग्रामतक विश्वभरमें आर्योंका एकच्छत्र चक्रवर्ती-राज्य था। सम्पूर्ण देश-देशान्तरों और द्वीप-द्वीपान्तरोंपर इनकी विजय-वैजयन्ती अबाध-गतिसे निरन्तर फहराती थी। महर्षि दयानन्दजीके अनुसन्धानके अनुसार कुरुक्षेत्र युद्धसे एक सहस्र वर्ष पूर्व हीसे अपनी जातिकी अधोगति, राष्ट्रमें उच्छृङ्खलता, अनुशासनहीनता एवं अनैकता-के स्पष्ट-चिह्न दृष्टिगोचर होने लग गये थे। इस युद्धमें असंख्य वेद-वेत्ता, यज्ञ-निपुण, धर्म धुरन्धर ब्राह्मणों, शस्त्रास्त्र-प्रवीण, नीति-निपुण धनुर्धर, वीर, योद्धा क्षत्रियों, पदार्थ-विज्ञान निष्णात वैज्ञानिकों, विद्या-विशारद, शिक्षा-प्रदाता गुरुओं-आचार्यों, एवं धन-धान्य सम्पन्न, कृषि-पशुपालन विशेषज्ञ वैश्योंके विध्वंसके कारण राष्ट्रका पतन तीव्रतम गतिसे होने लग गया था; तथापि, जगती-तलकी सम्पूर्ण जातियोंका एक इष्ट (निराकार ब्रह्म), एक पुस्तक (वेद) एक धर्म (मानव) और एक ही महत्वाकांक्षा (मुक्ति) थी। परन्तु शताब्दियाँ व्यतीत हो जानेपर परस्परके कलह-क्लेश, ईर्ष्या-द्वेष, लोभ-लालच, स्वार्थ-परायणता तथा विषय-लम्पटता आदि दुर्गुणोंसे अभिभूत् देशका वैभव, राज्य-श्री, ज्ञान-विज्ञान-धन रसातलको जाने लग गया था। देशके कला-कौशल और अद्भुत् ललित-कलाओंका भी ह्रास होने लग गया था।

इसी मध्यमें यहाँ वाममार्ग जैसे घृणित मतका प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने मद्य, मांस, मछली, और मैथुनके खुल्लम-खुल्ला प्रचारके साथ निरीह पशु-पक्षियोंको काट-काटकर अध्वर (जिसमें हिंसा न होने पाए) यज्ञोंको भ्रष्ट कर दिया, जिससे उद्विग्न-मन शाक्य मुनि गोतमने बुद्धमत और महावीरने जैन-मत* का प्रचार-प्रसार कर दिया। साथ ही मूर्ति-पूजा, अवतार-वाद, मृतक-

---

* पौराणिक, ईसाई और इस्लामी मतोंने नारी समाज और शूद्र-वर्गको जिस वीभत्स स्थितिमें डाल रक्खा था, उसका विस्तृत-विवेचन आप इसी पुस्तकके

श्राद्ध, बाल-अनमेल विवाहादि अवैदिक रूढ़ियोंका प्रचलन हुआ और इन वेद-विरुद्ध प्रथाओंका समर्थन करनेके लिए पुराणोंका संकलन किया गया, जिससे राष्ट्रका पतन द्रुतगतिसे समक्ष आ खड़ा हुआ।

उधर भारतके पश्चिमोत्तरमें बसे देश ईरानमें महात्मा ज़रदुश्तने पारसी मज्हबका, यहूदियोंमें उत्पन्न हज़रत ईसाने ईसाइयतका और हज़रत मुहम्मदने अरबमेंइस्लामका प्रचार आरम्भ कर दिया, जिससे अनेक इष्टों, अनेक धर्मपुस्तकों, अनेक पंथों और अनेक महत्वाकांक्षाओंका सृजन हो गया। जहाँ-तहाँ विभिन्नता, अनैकता एवं वैर विरोधका साम्राज्य हो जानेके कारण मानव समाज खण्ड-खण्ड हो गया। तब भी हमारे भारत-वर्षमें व्यवसाय-व्योपार, धन-सम्पत्ति एवं विविध-वैभवकी कोई कमी नहीं थी। भारतको सोनेकी चिड़िया और पारस-मणिके नामों-से स्मरण किया जाता था। सांसारिक सौख्य-सामग्रीकी पर्याप्त बहुलता थी, दूधकी नदियाँ बहती थीं; पानीकी याचना करने वाले विदेशी पर्यटकोंका, सम्माननीय यात्रियोंका प्रेमपूर्वक आतिथ्य करनेके लिये, दूध पिलाना हम अपना कर्त्तव्य समझते थे। चोरी-डकैती-तस्करी जानते ही नहीं थे; अकाल, भुखमरी, रोग अथवा महामारीके नामसे भी परिचित नहीं थे; दैनिक पञ्चमहा-यज्ञोंके अनुष्ठानसे प्रसन्न परमपिता परमात्मा इन्द्र समयपर वृष्टि करते थे, जिससे सब प्रकारके अन्न-धान्य, औषधियाँ, वनस्पतियाँ और फल-फूल आवश्यकतासे अधिक उपजते थे। दूरस्थ असभ्य अथवा अर्द्ध-सभ्य, नग्न अथवा अर्द्ध-नग्न

पृष्ट ३४ से ४२ तकमें पढ़ेंगे। परन्तु खेदका विषय है कि जैनी भी नारी-घृणा-के विषयमें पीछे नहीं रहे, उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियाँ पढ़िये—

Gnostic sayings from Medevial Jain Texts.

"Donot desire women, those female demons on whose chests grow two lumps of flesh, who continually change their minds, who entice men, and then make a sport of them as of slaves." (Illustrated Weekly, April 11, 1971 Page 21)

अर्थात्—नारी रूपिणी पिशाचियों, जिनकी छातियोंपर दो मांस-पिण्ड उभर आते हैं, जो निरन्तर अपनी मनः स्थितिमें परिवर्त्तन करती रहती हैं, जो पुरुषोंको अपने मोह-जालमें फांस लेती हैं और तत्पश्चात् क्रीत-दासके सदृश उन मोहित पुरुषोंके साथ खिलवाड़ करती हैं, की कभी-भी अभिलाषा मत करो।"

(इलस्ट्रेटिड वीकली, बम्बई, ११ अप्रैल, १९७१ ईस्वी, पृष्ठ २१)

जंगली जातियाँ यहाँपर संग्रहीत अमूल्य सुवर्ण-कोषों, अन्न-धान्यके अनन्त भण्डारों, राशिकृत हीरे-पन्ने-जवाहिरातकी अगणित जातियोंकी कथाएँ देश-विदेशमें जाने-आनेवाले व्योपारियों, व्यवसाइयोंसे सुनतीं, अपनी निर्धनता, साधन-हीनता, कङ्गाली और तज्जन्य दुर्दशाका चिन्तन करतीं तो अपने आप-पर उन्हें ग्लानी होने लगती और गृध्र-दृष्टिसे देखते-सुनते-विचारते हमारी समृद्धिपर उनकी राल टपकने लगती। इसी लिये असंख्यात तस्कर-समूहोंने शताब्दियों पर्यन्त हमें लूटा-खसोटा और हमें हर प्रकारके अमानुषिक अत्या-चारोंका निशाना बनाये रक्खा। परन्तु यह गर्वका विषय है कि शताब्दियोंतक हम भी उनसे निरन्तर युद्ध-रत रहे, बराबर लोहा लेते रहे।

तब मुसलमानी ख़लीफ़ाके आदेशसे ७१२ ईस्वीमें मुहम्मद-बिन-क़ासिमने सिन्धु-प्रदेशपर आक्रमण कर दिया। तबसे तो मानों मुसलमानोंके हमलोंकी बाढ़-सी आ गई। परन्तु हर्ष और गर्वका विषय है कि देशके वास्त-विक स्वामी (हिन्दुओं) ने पूर्वके आक्रमण-कारियोंकी भान्ति इन विदेशी-विधर्मी आक्रामकोंको एक दिनभी सुखका साँस नहीं लेने दिया। इन मुसल-मानोंको छः-सातसौ वर्षोंके निरन्तर संघर्षने जब निराश-हताश और निर्बल बना दिया और प्रायः भारत-भरपर पुनः हिन्दू-राज्यकी स्थापना हो रही थी कि योरुपकी कुछ जातियोंने इधर मुंह फेरा। इन सबसे बड़ा धूर्त्त अंग्रेज़ तो जम-कर बैठ ही गया। इसने हमारा धन लूटा, कला-कौशल लूटा, व्योपार-व्यव-साय लूटा, धर्म-वैभवभी लूटा और इनके स्थानपर अपना भौंडा मज्हब, अपनी अपूर्ण भाषा, अपना ऊल-जलूल साहित्य और अपनी विनाशकारी भोगवादी सभ्यता एवं उल्टी-टेढ़ी परम्पराओंको हमारे मन-मस्तिष्कपर बलात् ठोंस दिया। इन बिड़ालाक्ष, मर्कट-मुख, मायावी-मानवों अथवा दम्भी-दानवों-की पैशाचिक-लीलाओं और अमानुषिक-अत्याचारोंकी हृदय-विदारक घटनाओं-ने शनैः शनैः देशभरमें विप्लवके वातावरणका सृजन कर डाला—आज बंगाल-के चौदह सहस्र साधुओंने अपने चिमटों और त्रिशूलोंसे फ़िरंगी-राक्षसोंका विध्वंस किया तो कलभालेर (दक्षिण)के सैनिकोंने विद्रोहाग्निको प्रज्वलित कर दिया; तीसरे दिन बैरिकपुर (बंगाल)में फ़ौजी बग़ावत हुई तो चौथे दिन भारतके किसी अन्य भागमें क्रान्तिकी लपटें धधकने लगीं। परन्तु इन छुट-पुट घटनाओंसे फ़िरंगीकी जड़ें भारतमेंसे पूर्णतः हिल नहीं पाईं। भगवान्की प्रेरणासे जैसे महर्षि विश्वामित्र, अगस्त्य और भरद्वाज आदिने रामका, जगद्-गुरु शंकराचार्यने राजा सुधन्वाका, शृङ्गेरी मठाधीश श्री सायणाचार्यने विजय-नगराधिपतिका, समर्थ गुरु रामदासने छत्र-पति शिवाजीका और लक्ष्मणदास

वैरागी (वीर बन्दा) ने पंजाबका पथ-प्रदर्शन किया था, उसी तरह फिरंगी-संकटके समय महात्मा सम्पूर्णानन्द (कन्खल), स्वामी विरजानन्द (मथुरा) और स्वामी दयानन्द सरस्वतीने 'भारतके प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम (१८५७)' के सम्माननीय नेताओं सर्वश्री नाना साहिब, तांत्या टोपे, महाराणी झाँसी, श्री अज़ीमुल्ला, महाराणा कुँवर सिंह एवं मुग़ल सम्राट बहादुरशाहका हाथ थामा और उन्हें सार्वजनक विप्लवके कण्टकाकीर्ण मार्गपर अग्रसर होनेका साहस, सत्परामर्श, सुझाव एवं राजनीतिके गुह्य-रहस्य बताये थे। इसके सम्बन्धमें कुछ विशेष घटनाओं और विद्वान् लेखकोंके अनुसन्धानात्मक लेखोंको साभार उद्धृत करना अप्रासंगिक नहीं समझा जायगा—

१. स्वामी विरजानन्दके गुरु स्वामी सम्पूर्णानन्दजी—

जिज्ञासु दयानन्द १८५५ ई० में कनखलमें विरजानन्दके गुरुदेव स्वामी* पूर्णानन्द सरस्वतीकी सेवामें विद्या प्राप्तिके निमित्त पहुंचते हैं। पूर्णानन्दजी उन्हें कहते हैं "हम बहुत वृद्ध हो चुके हैं। हम आपका मनोरथ पूर्ण करनेमें असमर्थ हैं। आप मथुरा जाइये। वहाँ विरजानन्द सरस्वती हमारे योग्य शिष्य रहते हैं। वे आपकी मनः कामना पूर्ण करेंगे।"

(क्रान्तिके प्रवर्त्तक स्वा. विरजानदन्का जीवन-चरित, पृष्ठ ९३)

२. स्वामी विरजानन्दके उपदेश—

"अपने विद्यार्थियोंको पढ़ाते-पढ़ाते कभी-कभी वे देश-दशा, धर्मकी हीन स्थिति तथा उसके कारणोंका निर्देश करके उसके निवारणके उपाय भी बताया करते थे।"

(उक्त पुस्तक, पृष्ठ १४६)

३. स्वामी विरजानन्दजीकी देशभक्ति—

"यदि यह कहा जाय कि उस समय समस्त भारतमें उनके गुरु श्री स्वामी (सं) पूर्णानन्द सरस्वती के अतिरिक्त कदाचित् ही कोई उनकी कोटिका देशभक्त हो तो अतिशयोक्ति न होगी। जिस महामानवने देशकी स्वतन्त्रता-के लिये एक महनीय आयोजनकी योजनाकी हो, उसकी देशभक्तिके लिये किसे सन्देह हो सकता है ?"

(उक्त पुस्तक, पृष्ठ १४९)

४. स्वामी संपूर्णानन्द और स्वामी विरजानन्दने विप्लव आरम्भ कराया था—

"......(स्वामी) विरजानन्द तथा उनके गुरु संपूर्णानन्द सरस्वतीने

*कहीं इन्हें सम्पूर्णानन्द और कहीं पूर्णाश्रम भी कहा गया है —सम्पादक

इस संग्रामका आरम्भ कराया था। इसके लिये वे (ऐतिहासिक) दो हेतु प्रस्तुत करते हैं। सम्वत् १९१४ वि० (१८५७ ई०) के स्वातन्त्र्य-संग्राममें जिन राजाओंने भाग लिया था, वे सब-के-सब (स्वामी) विरजानन्दके शिष्य थे। उस समयके राजाओंकी जैसी प्रवृत्ति हो रही थी, उसको देखते यह कहा जा सकता है कि इस समरमें जूझनेकी भावना उनकी अपनी न थी, वह किसी दूसरेकी प्रेरणासे प्रसूत थी। स्वभावसे यह मानना पड़ता है कि वह किसी ऐसेकी थी कि जिसकी बात टालनेका उन्हें साहस न होता था। भारतीय संस्कृतिमें गुरु ही एक ऐसा उच्च पदस्थ व्यक्ति है कि जिसकी आज्ञाके उल्लंघन करनेकी कल्पना भी सच्छिष्यमें आ ही नहीं सकती। दूसरा प्रमाण वे यह उपस्थित करते हैं कि·········व्यग्र दयानन्द कनखलसे सीधे मथुरा नहीं जाते। वे उत्तरा-खण्डकी ओर चलकर कानपुर तथा नर्मदाके परिसर में पहुंचते हैं। यह क्षेत्र है जहां स्वतन्त्रता संग्रामका आयोजन किया जा रहा था। तो क्या यह समझना उचित न होगा कि वृद्ध संपूर्णानन्दने युवा बलिष्ठ दयानन्दको उस ओर प्रेरा हो? भले ही कुछ लोगोंको ये तर्क प्रबल न जचें किन्तु ये इतने दुर्बल वा हीन भी नहीं हैं कि इनकी उपेक्षा की जा सके·········
(उक्त पुस्तक, पृष्ठ ९२)

५. स्वातन्त्र्य यज्ञ में आहुति डालने वाले राजा स्वा० विरजानन्द के शिष्य—

(क) "·········दण्डी जी नित्य स्नान के पश्चात् नित्य नियम के अनुसार गंगामें खड़े होकर विष्णु स्तोत्रका पाठ कर रहे थे?

अलवर नरेश महाराजा विनय सिंह भी वहां उपस्थित थे। दण्डीजी के सुमधुर, ललित, मनोहर उच्चारणने महाराजपर वशीकरणका काम किया·········महाराजने निवेदन किया कि आप मेरे साथ अलवर चलिये·········अनुरोधपर (स्वामी) विरजानन्दने कहा कि यदि आप प्रतिदिन नियमित रूपसे हमसे पढ़ना स्वीकार करें तो हम आपके साथ अलवर चल सकते हैं। अलवर नरेशने दण्डीजीकी यह बात स्वीकार कर ली·········दण्डीजीने राजाका अनुरोध मान लिया और थोड़े समयके पश्चात् अलवर पहुंच गये।"
(उक्त पुस्तक, पृष्ठ ९५)

(ख) ·········दण्डीजीको गुढ़ियाघाटका निवास न रुचा, वहांसे चलकर 'मुरसान' पधारे। मुरसानके राजा टीकमसिंहने उस विद्वान् संन्यासीका बहुत आदर किया।
(उक्त पुस्तक, पृष्ठ ७०)

(ग) "………कुछ दिन वहां रहकर 'भरतपुर' आ विराजे। भरतपुरके राजा बलवन्त सिंहने बहुत चाहा कि (स्वामी) विरजानन्द उनकी राजधानीकी शोभा बढ़ायें…किन्तु उन्हें वहां रहना नहीं जंचा।" (पृष्ठ ७०)

(घ) स्वामी विरजानन्द जी ने मथुरा पाठशाला खोली। विरजानन्दकी पाठशालाका व्ययभार अलवर नरेश, भरतपुरके महाराजा तथा जयपुराधिपति वहन करते थे।………हमारा विचार है कि दण्डीजीका राजपूताना तथा भारतके अन्य राजाओंमें बहुतोंके साथ सम्बन्ध था।" (पृष्ठ ७२)

"……दूसरे राजस्थान तथा मध्यभारत समीप थे। यहांके राजाओंसे विरजानन्दका सम्बन्ध भी था। देशकी दीनताका जितना ज्ञान विरजानन्द को था, कदाचित् उनके गुरु स्वामी सम्पूर्णानन्द सरस्वतीजीके अतिरिक्त किसीको न था। वे देशोद्धारका उपाय पराधीनता पाशसे मुक्त होनेमें मानते थे। उन्होंने अनुभव कर लिया था कि वर्त्तमान् शासनका उन्मूलन किये बिना देशका कल्याण सम्भव नहीं। उसके लिये वे राजाओंसे आशा रखते थे। इसी लिये उन्होंने मथुराको चुना। केवल पढ़ाना उनका लक्ष्य होता, तो वे सोरों ही टिके रहते, या काशी चले जाते। उनका उद्देश्य तो अति महान् था। उसकी सिद्धिकी सम्भावना उन्हें मथुरामें सम्भव प्रतीत हुई।" (उक्त पुस्तक, पृष्ठ ७३)

(६) " अप्रैल १८५५ से जबकि उस (दयानन्द) का दूसरा समवयस्क (नाना धोंधोंपन्त राव) भारतका पेशवा बननेके बाद क्रान्तियज्ञके समारम्भ में दीक्षित होने जा रहा था, मार्च १८५७ तक वह प्रायः गंगाके साथ गंगोत्तरी और बद्रीनाथसे बनारस तक गढ़वाल रुहेलखण्ड दोआब और काशीके प्रदेशोंमें घूमता रहा, जहांपर क्रान्तिकारी तय्यारियां जनतामें भीतर-ही-भीतर जोरोंसे की जा रही थीं। १८५६ के मई मासमें वह नानाके नगर कानपुर गया और आगे पांच मास तक कानपुर इलाहाबादके बीच ही चक्कर काटता रहा। फिर बनारस, मिर्ज़ापुर, चुनार होकर मार्च १८५७ में जब कि क्रान्तिकी तय्यारियाँ लगभग पूरी हो चुकी थीं और नाना साहबके सैंकड़ों सन्देशवाहक साधु फ़कीरों आदिके रूपमें पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्खिन, देशके हर कोनेमें क्रान्तिका सन्देश लेकर रवाना हुए और स्वयं नाना साहब और उसके मन्त्रदाता अज़ीमुल्ला भी क्रान्ति आरम्भ करनेकी तारीख निश्चित् कर उसकी सारी तैय्यारी अपनी आंखोंसे देख लेनेको तीर्थयात्रा करने निकले, तब दयानन्द भी बनारससे मिर्ज़ापुर, चुनार होकर

नर्मदा स्रोतोंके लिये दक्खिनकी ओर निकल पड़ा। अपने आरम्भिक जीवन-का परिचय देनेके लिये दयानन्दकी स्वलिखित जीवनीका यहाँ एकाएक अन्त हो जाता है। आगे तीन वर्ष क्रान्ति युद्धके दिनोंमें वह कहां रहा और क्या करता रहा इसकी विगत उसने कभी नहीं दी। ....उसकी जीवन घटनाओंका जो संक्षिप्त-सा वर्णन ऊपर दिया गया है, उससे यह बात तो स्पष्ट हो ही सकती है कि क्रान्तिकी तय्यारियों आदिसे उसे निकटसे परिचय करनेका अवसर अवश्य मिलेगा। यह बात मान लेना आसान नहीं कि दयानन्द-के सदृश भावना-प्रवण और चेतनावान् हृदय और मस्तिष्कका युवक उसके प्रभावसे अछूता बचा हो और उस युद्ध की सफलता-विफलताकी उसपर कोई प्रतिक्रिया न हुई हो। अतः उसकी उन तीन वर्षोंके बारेमें यह पूरी चुप्पी भी कम अर्थभरी प्रतीत नहीं होती।" (हमारा राजस्थान, पृष्ठ ३६८-,। भारतीय स्वातन्त्र्य सग्राममें आर्य समाजका योगदान, पृष्ठ ५ पर उद्धृत)

७. "दयानन्दको विरजानन्दके पास पढ़नेकी प्रेरणा (स्वामी) विरजानन्दके गुरु (स्वामी) संपूर्णानन्दने १८५५ में ही दी थी, परन्तु क्रान्ति आन्दोलनके शीघ्र छिड़ जानेकी सम्भावनाके कारण प्रतीत होता है कि उनकी मनः स्थिति तब गम्भीर अध्ययनकी ओर न थी, किन्तु उसकी विफलता-ने १८६० में वह मनः स्थिति पैदा कर दी।" (उक्त उद्धरण, पृष्ठ ५)

८. "कुछ आर्य भाई राजकोट जानेके लिये हमारे साथ बैठ गये, उनमें एक रेल कर्मचारी हैं, उन्होंने बताया कि १८५७ ई० के समय नाना धुन्धुपन्त-को सुरक्षित रहनेके लिये मोरवीके सामन्तके नाम ऋषि दयानन्दने पत्र देकर भेजा था, सुना है कि वह पत्र किसी सेठके पास सुरक्षित है।"
(साप्ताहिक आर्योदय, ३-९-६५, उक्त पुस्तक, पृष्ठ ६ पर उद्धृत)

९. ब्रिटिश सत्ताके उन्मूलन के लिये १८५७ ई० में जो राज्य क्रान्ति हुई थी, उसमें ऋषि दयानन्दने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। इतिहास-की इस नवीन स्थापनापर आज यहाँ गोष्ठीमें महत्वपूर्ण चर्चा हुई, लाहौरके वयोवृद्ध पत्रकार तथा समाजसेवी श्री वासुदेव वर्माने इस विषयपर अपना निबन्ध पढ़ते हुए अनेक नवीन तथ्योंपर प्रकाश डाला, स्वामी सम्पूर्णानन्दसे ब्रिटिश अत्याचारोंकी हृदय-विदारक कथा सुनकर किस प्रकार ऋषि दयानन्द-ने तांत्या टोपे और नाना साहबसे निकट सम्पर्क स्थापित किया, और किस प्रकार योजना-बद्ध रूपसे क्रान्तिके इन नेताओंने विभिन्न रियासतों तथा आम जनताको संगठित करनेका प्रयत्न किया, यह इतिहासका एक रोचक

किन्तु अलिखित अध्याय है। भारतीय साहित्य संघकी इतिहास-परिषद् की ओरसे आयोजित इस गोष्ठीकी अध्यक्षता करते हुए श्री क्षितीश वेदालंकारने कुछ नये प्रमाण प्रस्तुत करते हुए इस धारणाको मिथ्या सिद्ध किया कि नाना साहब पेशवा सन् ५७ की राज्य क्रान्ति विफल हो जानेके पश्चात् नेपाल चले गये थे, उन्होंने कहा कि नाना साहब पेशवा गुप्त-रूपसे भावनगर (सौराष्ट्र) के पास सिहोरे नामक स्थानमें साधुके रूपमें रहते रहे, और मौरवीमें उनका स्वर्गवास हुआ, जहाँ उनकी समाधि बनी हुई है। नाना साहब पेशवाने अपनी मृत्युसे पहले स्वयं यह रहस्य जिन लोगोंके समक्ष उद्घाटित किया था, उनमेंसे कुछ लोग अभी तक जीवित हैं और उन्हींसे इतिहास के इस नवीन पहलूपर प्रकाश पड़ा है।

(दैनिक हिन्दुस्तान, दिल्ली १२-८-६६, उक्त पुस्तक, पृष्ठ ६-७ पर उद्धृत)

१०. "दयाराम (दयानन्द) ने साधु तपस्वियोंके अन्दर संगठनके लिये कोशिश की थी, देशकी बुरी हालत मिटानेके लिये साधुओंको तत्पर होनेके लिये कोशिश की थी, उन्होंने सिपाही विद्रोह आन्दोलनके साथ भी संयोग स्थापित किये थे, मराठी नेता नाना साहब भी महर्षि दयानन्दसे विचार-विमर्श करनेके लिये आये थे, बैरकपुर सैन्यावास (बंगाल) में भी आये थे, मंगल पाण्डे नामक सैन्यने उनसे आशीर्वाद मांगा था।"

(सार्वदेशिक, १२-१-६६)

(उद्धरण संख्या ६ से १० तक श्री पं० सत्यप्रिय शास्त्री, सिद्धान्त शिरोमणि कृत 'भारतीय स्वातन्त्र्य सग्राममें आर्य समाजका योगदान नामकी पुस्तक के पृष्ठ ५-६-७ से साभार उद्धृत)।

उपरिलिखित कतिपय उद्धरणोंसे भी हमारे पक्षका 'कि १८५७ के स्वातन्त्र्य सग्राममें महर्षि दयानन्दका क्रियात्मक योगदान' रहा विद्वान् इतिहासकारों के शब्दों के आधार पर भी स्पष्ट, सम्पुष्ट एवं समर्थित होता है।

पिण्डीदास ज्ञानी

प्राक्कथन

महर्षि दयानन्द सरस्वतीने अष्टांग-योगानुष्ठान द्वारा प्राप्त ज्ञान-चक्षुओंसे स्वातन्त्र्य-प्राप्तिका मार्ग निश्चित कर लिया था और वे उत्कृष्ट सामाजिक स्थिति एवं जन-जागरणको ही उक्त-ध्येयकी उपलब्धिका मूल-मन्त्र समझने लगे थे। क्योंकि मानव एक सामाजिक प्राणी है, अतः आप स्थान-स्थानपर भ्रमण करके, साधु, सन्तों, मण्डलेश्वरों, मठाधीशों, शंकराचार्यों तथा अन्य गण्य-मान्य संन्यासीवर्गको स्वदेश, स्वधर्म, स्वजाति एवं स्वातन्त्र्य-सेवाके लिये कटिबद्ध रहनेकी प्रेरणा निरन्तर करते रहते थे। यद्यपि आरम्भमें आप-को पर्याप्त साहाय्य-सहयोग नहीं मिला, परन्तु आपके धैर्य्य पूर्वक संघर्ष-रत रहनेके कारण समयान्तरमें सैकड़ों महात्मा आपकी सत्प्रेरणासे सन्मार्गावलम्बन करके जन-जागरणमें पर्य्याप्त परिश्रम करने लगे।

स्वामीजीने आरम्भमें ही विशुद्ध ज्ञानकी परम आवश्यकताको समझ लिया था और साथ ही यह भी अनुभव कर लिया था कि बिना वेदाध्ययनके, विशुद्ध ज्ञानकी उपलब्धि हो ही नहीं सकती। समाज-संस्कार तथा जन-जागरण वैदिक भित्तीपर हो—इस सिद्धान्तको आपने देश-हित और मानव-कल्याणके लिये हृदयङ्गम कर लिया हुआ था। महाराजका यह विश्वास था कि यदि देशमें शत-सहस्रों प्रचार-धर्मी वेद-प्रसारक बन जायें तो निस्सन्देह आर्यजाति तथा आर्यावर्त्तका पूर्ण-हित अविलम्ब सम्पन्न हो सकता है। उनकी यह धारणा भी दृढ़ हो चुकी थी कि वेद-विहीन, समाज-सुधारक और राजनैतिक कर्णधार राष्ट्रको भोगवाद उच्छ्ङ्खलता और नास्तिकताके गहरे गर्तमें गर्क कर देंगे।

अब १८५७ की महाक्रान्तिकी धधकती ज्वालाओंको अधिक प्रचण्ड करने, जन-जागरणके चर्म-सीमा तक पहुंच जाने और हीन-संगठन एवं कतिपय उछृङ्खल व्यक्तियोंके धर्म विरुद्ध कुमार्ग-गामी प्रवृत्तियोंके कारण सारा बना-बनाया खेल किस प्रकार बिगड़ गया था—यह भी आपने अपने चर्म-चक्षुओंसे देख लिया था। आपने अपनी कुशाग्र बुद्धि और दूर-दर्शिताके कारण विप्लवके महान् नेताओंको, एक समय स्पष्टतः कह भी दिया था कि, जब तक स्वतन्त्रता-का यह आन्दोलन धर्मकी भित्तीपर चलेगा, जब तक इसमें स्त्रियों और

शिशुओंपर अत्याचारकी वीभत्स घटनायें नहीं घटेंगी, तब तक इसे सफलता प्राप्त होती रहेगी, परन्तु इस सरल-सीधे-सन्मार्गसे विचलित होते ही सर्वनाश हो जायगा ।"

आपकी इस दैवी चेतावनीकी अवहेलना और तज्जन्य विफलतारूप दुष्परिणाम भी आपके समक्ष उपस्थित हो गये थे । विजित भारतीय क्रान्ति-कारियोंपर अंग्रेजों द्वारा किये गये पैशाचिक दुर्व्यवहारोंका भी आपने खूब अध्ययन कर लिया था । परिणामतः गम्भीर विचारानन्तर आपने निर्णय ले लिया था, कि वेदको सर्वसाधारण जन-समुदायके अन्दर सहज, सरल और सुबोध रूपसे जाति-वर्ण-लिंग-निर्विशेष प्रचारित करनेकी आवश्यकता है। यह धारणा दृढ़कर लेनेके उपरान्त आप सोचने लगे कि वेदके अनुभवी निष्ठा-वान् प्रचार-प्रवृत्ति महात्मा, जो अपने वेद-ज्ञानको अधिकारी व्यक्तियोंके प्रति उदारता एवं सहानुभूति पूर्ण ढंगसे दे डालनेमें समर्थ एवं इच्छुक भी हों, उनकी खोज की जानी चाहिये । गृह-त्यागके पश्चात् जिस प्रकार आपने योग विद्या-पारङ्गत योगियोंके सन्धानार्थ अविरल प्रयत्न तथा निरन्तर भ्रमण किया था, उसी प्रकार अब आप वैदिकज्ञान प्रदानके इच्छुक वेदज्ञ पण्डितोंकी खोज-भालमें अहर्निश घूमने लगे । तब आप पूर्व संकल्पके अनुसार मथुरा-वासी परम वेदज्ञ पण्डित दण्डी स्वामी श्री विरजानन्दजी सरस्वती, जो कि भारत-भरमें व्याकरणके सूर्यके नामसे सुविख्यात थे, की सेवामें उपस्थित हुए । सन् १८५१ के कुम्भके अवसरपर कनखल (हरद्वार) निवासी १०८ वर्षीय महा-विद्वान् श्री स्वामी सम्पूर्णानन्द* जी ने इन्हीं दण्डी स्वामीजीके पास उच्च-विद्या-ध्ययनार्थ उपस्थित होनेका परामर्श दिया था, परन्तु देश-व्यापी क्रान्ति निकट होने और उसमें क्रियात्मक योग-दान देनेके विचारसे आपने वहां जानेका विचार स्थगित कर दिया था ।

इन दण्डीजीने अशेष कृपा पूर्वक आपको स्नेह भाजन बनाये रक्खा और वेद-वेदांग विद्या प्रदान की थी तथा शिक्षाकी समाप्तिपर आपको (स्वामी दयानन्दजीको) ओर से जन-साधारणके अन्दर वेद-प्रचार एवं अवैदिक मतोंके खण्डनकी प्रतिज्ञाको गुरु दक्षिणा रूपमें ग्रहण किया था ।

गुरुदेव दण्डी श्री स्वामी विरजानन्दजीके आदेशानुसार नैष्ठिक ब्रह्म-चारी महर्षि दयानन्दने सैकड़ों स्थानोंपर भ्रमण किया, अनेकों ग्रन्थ लिखे

*श्रीयुत् देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्यायने इनका शुभनाम 'पूर्णाश्रम स्वामी' लिखा है । पृष्ठ ११५ ।

और उनमें देशभक्तिकी भावनाओंको कूट-कूटकर भरा, जिससे जन-साधारण-के मन-मस्तिष्कपर यह अङ्कित हो जाय कि मनु महाराजके आदेश कि

'सर्वं परवशंदुःखं, सर्वमात्मवशं सुखम्'

के अनुसार 'स्वतन्त्रता जीवन और परतन्त्रता मृत्यु है'। आपके अपने घोर तप अभूत्-पूर्व त्याग, असीम विद्या, नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, प्रबल युक्ति-प्रवाह, अटूट प्रमाण-संग्रह, अविरल प्रयत्न और अनूठी सूझ-बूझके कारण देश-वासियोंको अभ्युदय (इहलौकिक उन्नति) और निःश्रेयस (पारलौकिक कल्याण) की सिद्धिके योग्य बना दिया था, परिणामतः अनेक-विध मार्गोंका अवलम्बन करते हुए सब भारतवासी जन-समुदाय अपने देशको स्वतन्त्र करानेमें जुट गये और अन्ततः घोर परिश्रम, अखण्ड प्रयत्न, तथा असह्य वेदनाओंका मुकाबिला करते हुए अपने निर्धारित लक्ष्य (देशकी स्वतन्त्रता) तक पहुंच ही गये।

आगामी पृष्ठोंमें इन्हीं तथ्योंकी अभिव्यक्तिका प्रयत्न किया गया है। पाठकवृन्द रुचिपूर्वक एवं ध्यानसे पढ़ने और मनन करनेकी कृपा करें।

ऋषि बोधोत्सव — विनीत

२३-२-१९७१ — **पिण्डीदास ज्ञानी**

भूल सुधार—

१. इस पुस्तकके पृष्ट ७५ पर, 'मन्त्र ३१ इषेपिन्वस्व' आदि यजु० ३८-१४ का भाष्य करते हुए यजुर्वेद भाष्यमें स्वामीजीके निम्न शब्द भूलसे छपने रह गये हैं, जिसका हमें खेद है। पाठक क्षमा करें —लेखक।

"मनुष्यैर्द्वाम्याम् प्रयोजनानां प्रवर्तितव्यम्। एकमत्यन्त पुरुषार्थशरीरारोग्याभ्यां चक्रवर्त्ति राज्यश्री प्राप्तिकरणम, द्वितीयं सर्वा विद्या सम्यक् पठित्वा तासां सर्वत्र प्रचारीकरणम्॥"

अर्थात्—मानव को अपने जीवनके दो ही कर्त्तव्य सम्पादन करना चाहियें: प्रथम—परमपुरुषार्थ और नीरोग शरीर द्वारा चक्रवर्ती राज्यश्रीकी प्राप्ति और द्वितीय—सब प्रकारकी विद्याओंका सम्यक् अध्ययन करके उनका सर्वत्र प्रचार।

२.

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८२	१२	१ जौलाई, १९०६	८ अगस्त, १९०९
१८२	२२	१० अगस्त, १९०८	१९ अक्तूबर, १९०९

आभार प्रदर्शन

यह पुस्तक आजसे दो-तीन वर्ष पूर्व लिखी जा चुकी थी। इसकी पाण्डु-लिपि सर्व प्रथम मैंने स्वयं अपने बम्बई प्रवासके दिनों आर्य समाजके मूर्धन्य तपस्वी-संन्यासी श्रद्धेय श्री महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती जी को, जब कि आप वेदप्रचार-अभियानके सम्बन्धमें उक्त महानगरमें अमृत-वर्षा कर रहे थे, बीच बीचमेंसे कुछ भाग पढ़कर सुनाई थी (क्योंकि अपने क्षण-क्षण व्यस्त समयमेंसे आप अधिक नहीं सुन पाये थे)। इसे सुनकर आपने हार्दिक प्रसन्नता-रूप आशीर्वाद देते हुए एक प्रसिद्ध पुस्तक-प्रकाशक सज्जनके नाम निजी पत्रमें इस पुस्तकको शीघ्र प्रकाशित करनेकी प्रेरणा भी की थी। तत्पश्चात् मेरे हितैषी मेरे माननीय मित्र श्रद्धेय श्री पं० रामगोपाल जी शास्त्री, वैद्य देहली तथा उनके सहयोगी श्री ला० वासुदेव वर्मा और श्री ला० विश्वम्भरदासजीने आद्योपान्त सुनी थी। इसके श्रवण-मात्रसे ये सज्जन अत्यन्त प्रभावित एवं प्रसन्न हुए थे, क्योंकि इसमें उन्हें अपनी चिर-चर्चित हार्दिक भावनाओंकी अभिव्यक्ति प्रतीत हुई थी। उन्होंने सहर्ष इसे प्रकाशित करनेका आश्वासन भी दिया था, परन्तु बादमें सम्भवतः किसी विवशताके कारण इन सज्जनोंने एक स्वतन्त्र पुस्तकका प्रकाशन उचित समझा, तथापि यह उनकी उदारता है कि उन्होंने प्राक्कथनमें बहुमूल्य सुझावोंके लिये, मेरा भी आभार प्रकट करनेकी कृपा की है, जिसके लिये मैं हृदयसे कृतज्ञ हूं।

तदनन्तर मित्रवर श्री ला. रामगोपाल शालवाले संसद सदस्य, मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, श्री पं० रघुनाथ प्रसादजी पाठक, श्री प्राध्यापक रामसिंह जी एम. ए., श्री पं० धर्मपाल जी बी. ए., श्री पं० रामनाथ शर्मा (रीसर्च आफिसर, नहर विभाग) श्री पं० युधिष्ठिरजी मीमांसिक, तथा राय साहिब श्री चौ० प्रताप सिंहजी प्रभृति विद्वानोंने इसे देखा, सुना और पढ़ा और मेरे लिये यह हर्ष और गौरवका विषय है कि सबने इसे पसन्द करते हुए मेरा उत्साह बढ़ाया जिसके लिये मैं इन सबका कृतज्ञ हूं।

दुर्दैव कि मैं इससे पूर्व अपना निजी यन्त्रालय 'आर्य प्रेस' बन्द कर चुका था। अतः इस पुस्तकके प्रकाशनकी [समस्या जटिल-रूप धारण करके मेरे समक्ष आ खड़ी हुई। कई द्वार खटखटाये; परन्तु सर्वत्र निराशाका ही सामना हुआ।

अन्ततः थोड़ेही दिन पूर्व अपने हितैषी श्रद्धेय श्री चमनलाल अरोड़ा एम. एस-सी, प्रिन्सिपल श्रीमद्दयानन्द ऐङ्गलोवैदिक कॉलिज अमृतसरकी श्रीसेवा-में उपस्थित होकर इस पुस्तकके प्रकाशनका सुझाव रक्खा। वस्तुतः यह अत्यन्त हर्ष एवं सन्तोषका विषय है कि दो-तीन वर्षोंकी निरन्तर निराशाके अनन्तर, मेरी पूर्वकी अनेक प्रार्थनाओंकी भान्ति आपने अविलम्ब इस योजना-को भी स्वीकार किया और उनके उदार प्रोत्साहनका ही यह परिणाम है कि वर्षोंसे ताकपर धरा हुआ मेरा यह परिश्रम मूर्त्तरूप धारण करके पाठक महानु-भावोंके कर-कमलोंमें पहुंचनेका गौरव प्राप्त कर पाया है। इसके लिये मैं हृदयसे आपका आभारी हूं।

पूज्य भ्राता आचार्य श्री पं० देवप्रकाशजीने इस्लाममें नारी जाति सम्बन्धी प्रमाण भेजनेके अतिरिक्त अन्यभी कई सुझाव दिये; जिसके लिये कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं।

पुस्तकारम्भमें, 'महर्षि दयानन्दकी अज्ञात जीवनी' के लेखक श्री पं० दीनबन्धु शास्त्री, बी. ए. तथा 'सार्वदेशिक' साप्ताहिक, नई देहलीसे पुष्कल सामग्री उपलब्ध हुई है, जिससे इस लेखका रंग बहुत निखर आया है। वे भी मेरे हार्दिक धन्यवादके पात्र हैं।

'गुरुवर श्री स्वामी विरजानन्दजी, १८५७ के सुविख्यात् कर्णधारोंके प्रेरणा-स्रोत थे' के सम्बन्ध में लिखी पंक्तियाँ 'आर्यमर्यादा' देहलीके उद्धरणसे दैनिक 'प्रताप' जालन्धरमेंसे ली गई हैं, जिनके लिये मैं श्री पं० जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती शास्त्री तथा श्री वीरेन्द्र जी एम. ए. का हृदयसे कृतज्ञ हूं।

इनके अतिरिक्त जिन-जिन लेखक महानुभावोंकी पुस्तकों, लेखों, निबन्धों तथा समाचार-पत्रोंके उद्धरण इस पुस्तकमें संकलित किये गये हैं, उन सभीका मैं हृदयसे उपकार मानता हूं।

श्री पं० युधिष्ठिरजी 'मीमांसिक', श्री प्राध्यापक रामसिंह जी एम. ए., श्री पं० धर्मपाल जी बी. ए. तथा श्री डा. परमानन्दजी एम .ए., पी.-एच.डी. ने अपना अमूल्य समय लगाकर अपने विचार अंकित किये हैं, इसकेलिये उनकाभी मैं आभार प्रदर्शन करता हूं।

विद्या-प्रेमी, महर्षि दयानन्दके अनन्य भक्त और आर्य समाजके कर्मठ नेता श्री चौ० प्रतापसिंहजी करनाल निवासीने, जो कि छोटे-बड़े लेखकोंकी यथोचित सहायता करते रहते हैं, मेरी भी पुष्कल सहायता की थी, जिसके लिये मैं हृदयसे उनका धन्यवाद करता हूं।

अन्तमें, मैं सहृदय पाठक सज्जनोंसे आग्रह पूर्वक आशा रखता हूं कि वे इस पुस्तकको पढ़कर, अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्रमें, इसमें प्रदर्शित भावोंको यथा-सम्भव प्रचार करनेकी कृपा करेंगे, ताकि जहां संसार महर्षि दयानन्द सरस्वती-के दृढ़ ईश्वर-विश्वास, अनन्य वेद-निष्ठा, अतुलित सत्य-प्रियता, अद्भुत् धर्म परायणता, अनूठी अध्यात्म उत्कृष्टता, पूर्णयोगानुष्ठान, प्रकाण्ड पाण्डित्य, प्रबल प्रमाण-भण्डार, अकाट्य युक्ति समूह, सर्वतोमुखी सुधार-व्यवस्था, अनुकरणीय दीन-बन्धुत्व, अभूतपूर्व नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, अद्वितीय शारीरिक बल, देदीप्यमान् ब्रह्म-तेज, आकर्षक व्यक्तित्व एवं ओजस्वी मुख-मण्डल आदि अनेकानेक दैवी गुणोंसे मोहित, नत-मस्तक हो मुक्त-कण्ठसे उनकी प्रशंसा करता है, वहां सबके हृदय-पटलपर यह भाव भी अङ्कित हो जाय कि स्वराज्य-प्रेरणाके प्रवर्त्तक, स्वतन्त्रता-यज्ञ के ब्रह्मा, स्वातन्त्र्य-संग्राम के स्वनाम धन्य वीर सेनानी, १८५७ के विप्लवके कर्णधारोंके प्रेरक-सहयोगी और स्वदेश-प्रेम तथा स्वदेशी-प्रचार-के सूत्रधार भी **महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ही थे** ।

पिण्डीदास ज्ञानी

ऋषि बोधोत्सव
२३-२-१९७१

सादर समर्पण

जिन्होंने शैशवावस्थामें आर्य-संस्कारोंको मातृ-दुग्धके साथ पान किया; किशोरावस्थामें महात्मा हँसराज जीके चरण-चुम्बनका सौभाग्य प्राप्त किया; उन्हीं के उपदेशों-आदेशोंको शिरोधार्य्य करके अकाल पीड़ितोंको विकराल कालके गालसे बलात् छीना; बाढ़-ग्रस्तोंके नावक बन उन्हें किनारे लगाया; सुदूर धर्मान्ध मोपलों द्वारा पीड़ित, त्रस्त, आतंकित हिन्दु-पुरुषों और अपहृत हिन्दु-देवियोंका उद्धार किया; हिंस्र पशुओंसे व्याप्त निर्जन-बनोंमें प्रवेश करके धर्मच्युत सहस्रों हिन्दुओंको शुद्धिके सुदर्शन-चक्र द्वारा इस्लामी राक्षसोंके पञ्जेसे छुड़ाकर पुनः वेदामृत पिलाया; मल्काना प्रदेशोंमें लाखों पतितोंके परावर्त्तनमें सहायता प्रदान की; रणवीर जीके विवाह तत्पश्चात् फांसीके दण्ड और अपनी रीढ़की हड्डीके विचलित हो जानेपर सदा 'खुशहाल', 'खुर्सन्द' और 'आनन्द' प्रकट करके 'स्थितप्रज्ञता' का परिचय दिया; वैदिक धर्मकी आश्रम-मर्यादाको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये क्रमशः ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और बाणप्रस्थ (अज्ञातवास) का परिपालन किया और अन्ततः सती-साध्वी, पतिव्रता धर्मपत्नी, छः सम्पन्न सुपूतों, पुत्रियों, पोतों-नवासों, धन-सम्पत्ति, विस्तृत-व्यवसाय, अद्वितीय मान-प्रतिष्ठा और विविध-विशाल-वैभवका परित्याग करके योगीराज श्री स्वामी आत्मानन्दजीसे संन्यासकी दीक्षा ग्रहणकरके महात्मा आनन्द स्वामीजी सरस्वतीके नामसे आर्यसमाजके उज्ज्वल नभोमण्डलपर अत्यन्त आभावान नक्षत्रके रूपमें चमकना आरम्भ किया; अष्टांगयोग-जन्य विभूतियोंसे सम्पन्न आज ८८ वर्षकी आयुमेंभी अमरीकाके धन-कुबेरों, योरुपके भोग-प्रधान-प्रदेशों, अफ़रीकाके नर-भक्षी हब्शियों और एशिया महाद्वीपके अनेक भू-खण्डोंमें अहर्निश वेदके धर्म, महर्षिके सन्देश और आर्य सभ्यताकी उत्कृष्टताको जन-जनके मन-मस्तिष्कपर अपनी मधु-सी मधुर, मिश्री-सी मीठी सिंह गर्जना द्वारा अंकित करनेकोही अपना जीवन-लक्ष्य बना रक्खा है।

उन्हीं वयो-वृद्ध, ज्ञान-वृद्ध, अनुभव-वृद्ध अपने पुरातन हित-चिंतक वेद-परिश्रमी, वेद-वक्ता, वेद-व्याख्याता, वेद-प्रचारक श्रद्धेय **श्री महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती** जीके करकमलोंमें

सादर, सानुनय ! सप्रेम समर्पित

महात्मा हंसराज जन्म-दिवस, — पुरातन प्रशंसक

१८-४-७१ नई देहली — **पिण्डीदास ज्ञानी**

सम्मतियां

बर्तानिया से प्रोत्साहन

"आदरणीय ज्ञानी जी ! सादर नमस्ते ।

"·········आपका कृपा-पत्र पढ़कर श्रद्धासे हृदय द्रवित हो गया । पुस्तक सम्बन्धी फोल्डर भी अलग लिफाफेमें मिला·········आपने यह पुस्तक लिखकर महान् कार्य और सेवा की है । आपकी पुस्तकने एक महान् ऐतिहासिक कार्य किया है, ऋषि दयानन्दके स्वतन्त्रता संग्राम १८५७ के इस पक्षपर आज तक किसीका ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ था; अतः यह विषय प्रकाशमें नहीं आया था । 'महर्षिका स्वतन्त्रता संग्राममें क्रियात्मक योगदान' एक नये पक्षको संसार और विशेषकर भारतीयोंके सम्मुख रख रहा है । आपके अनुसन्धानसे जो महर्षिके क्रियात्मक योगदानको गहरे अन्धकारसे उजालेमें दिखाया गया है, वह ऐतिहासिक कार्य्य है, जिसे हर भारतीयको धन्यवाद-सहित स्वीकार करना चाहिये । इस पुस्तकका जितना भी प्रचार हो, करना सबका कर्त्तव्य हो जाता है । इस सेवाके लिये हम सभी भारतीय आपके आभारी रहेंगे ।

"···चारसौरुपये मनीआर्डर द्वारा भेज रहा हूं । बीस पुस्तकें अपने संकलपानुसार लोक-सभाके सदस्योंको मेरी ओरसे भेंट कर दें और शेष यहां भेज दें । यहां इस पुस्तकका प्रचार किया जायगा । अपने सत्संगोंमें घोषणा होती रहेगी । आशा है कुछ समयके उपरान्त कुछ और कापियां भी भेजनेके लिये आपको निवेदन किया जायगा ।·········"

आपका कृपापात्र
(प्रो०) **सुरेन्द्रनाथ भारद्वाज एम. ए.**
(हिन्दी, अंग्रेजी, इतिहास)
प्रधान हिन्दु सैण्टर, लण्डन

ग्रेटर लण्डन, इंगलैंड
२५-३-७१

विश्वविद्यालय कांगड़ीके कुलपतिका आशीर्वाद

श्री ज्ञानी पिण्डीदासजी आर्य समाज-क्षेत्रके मान्य महारथी हैं। आर्यसमाजके सेवकोंकी दूसरी पीढ़ीमें आपकी गणना की जा सकती है। अतः आश्चर्य नहीं यदि आज भी इस 'पश्चिमे वयसि' सजग और सक्रिय हैं। उनमें अदम्य-उत्साह और समाज-सेवाकी लग्न युव-काल जितनी ही है। क्षण-भर खाली नहीं बैठते। लेखनी चलती है और विचार-प्रसून अधिक विकसित रूपमें खिलते ही रहते हैं। यह नया संदर्भ भी लिख डाला।

भारत-विभाजनके पश्चात् देशने एक नया मोड़ लिया—स्वराज्यके स्वप्नको साकार करनेका सुवर्ण-अवसर 'कांग्रेस' के हाथ लगा। तथा-कथित स्वतन्त्रताका श्रेय भी कांग्रेसको ही दिया गया। प्रत्यक्ष-ऐतिहासिक घटनाओंकी बलि चढ़ा दी गई और देश-विदेशके प्रचार (Propaganda) के साधन बापू (गांधीजी) के यशोगान और बापू हीके द्वारा 'आज़ादी' मिली—इसी होड़में लग गये। स्वतन्त्रता-संग्रामके युद्धवीर, नेता, महारथी, महामना, क्रान्तिकारी, हुतात्मा —सभी-म्यूज़ियम-मन्दिरमें रख दिये गये और उपास्य-देवोंका स्थान मिला केवल गांधीजी और नेहरूजी को। देशका कोई भाग ही बचा होगा जहां गांधीजी और नेहरूजीके नामसे कोई गली-मोहल्ला, बाग़-बग़ीचा, मठ-मन्दिर, पाठशाला-धर्मशाला प्रसिद्ध न की गई हो। अभिधाका कोई स्थान और संस्था 'बापू-नेहरू'से वंचित नहीं रहा। गोखले, तिलक, परमानन्द, सावरकर-सभी—धकेल दिये गये विस्मृतिके गहरे गर्त में। मानो, गांधीजीके प्रादुर्भावके साथ जगत्की उत्पत्ति और नेहरू-निधनके साथ प्रलय हो गई हो। तथापि अपवाद रूपमें राजेन्द्र बाबू और मौलाना आजादको कभी-कभार स्मरण कर लिया गया। वास्तविकता तो यह है कि मस्तिष्कोंपर गांधीवाद और देशपर नेहरू-शासन, ऐसे छा गये कि उनके समक्ष न कांग्रेसके अतिरिक्त अन्य कोई संस्था ठहरी और न भारतीय संस्कृति।

प्रगति-शील समाजोंमें प्रार्थना-समाज और ब्राह्म-समाज तो प्रायः गांधीजीके जीवन-कालमें ही समाप्त हो चुके थे। एक जीती-जागती संस्था शेष बची थी आर्यसमाज, उसकोभी देखते-देखते कांग्रेस मानो कवलित कर गई। मंच एक ही रह गया और वह था राज-नीति मंच। आर्यसमाज की व्यास-पीठपरसे पण्डित पछाड़ दिये गये। उत्सवोंपर शासन (कांग्रेस) के मन्त्रियों, संसद-सदस्यों, विधानसभा मेम्बरों और अन्य राजनैतिक नेताओंको ही सम्मान मिलने लगा और गांधीके जय-जयकारकी

ध्वनि होने लगी। स्वराज्यका जन्म-दाता गांधी, उत्सर्ग और बलिदानका प्रतिनिधि गांधी और अन्ततोगत्वा 'राष्ट्रपिता' होनेका सौभाग्य-श्रेय प्राप्तभी गांधीजी ही माने गये।

ऐसी स्थितिमें कुछ मन-चलों, परन्तु विचारशील आर्य्यमनीषियोंके हृदयपर एक आघात-सा लगा। स्वभावतः एक महत्वपूर्ण मूक्-प्रश्न उनके मन-मर्मको विलोडित करने लगा—'क्या महर्षि दयानन्दका इस स्वतन्त्रता-संग्राममें कोई स्थान नहीं ? क्या उनके अनुपम योगदानका मूल्याङ्कन नहीं होगा ?'

प्रश्न गम्भीर था, अतः परस्पर चर्चा भी होने लगी, पुरानी-नई पुस्तकोंके पन्नेभी पढ़े-पढ़ाये जाने लगे। इसी उधेड़-बुनमें कई-एक लेख भी समाचार-पत्रों में छपे, परन्तु कुछ विशेष हाथ न लगा। इसका कारण इतिहास-विशेषज्ञोंकी तत्सम्बन्धी अरुचि, पर्याप्त सामग्रीका अभाव तथा समाजके कर्मठ व्यक्तियोंकी उदासीनताके अतिरिक्त और क्या हो सकता था ?

श्री ज्ञानी पिण्डीदासजी एक अनुभवी विचारक होते हुए इस चिन्तामें भला कैसे चैन पाते ? प्रस्तुत संदर्भ (१८५७ के स्वातन्त्र्य-संग्राममें महर्षि दयानन्द सरस्वतीका क्रियात्मक योगदान) उनके इस गम्भीर चिन्तनका परिणाम है।

श्री ज्ञानीजीने एक-डेढ़ वर्ष पूर्व अपना निबन्ध तिहाड़-जेल-वासके दिनों आद्योपान्त पढ़कर मुझे सुनाया-दिखाया था।

इसी विषयकी एक और पुस्तिका प्रकाशित की गई है। इसके लेखक हैं श्री वासुदेव वर्म्मा। वह भी मेरे देखने में आई है।

महर्षि का १८५७ की क्रान्तिमें शारीरिक अथवा पारमार्शिक कितना योगदान रहा, यह विषय चिन्तनीय और सर्वाङ्गेण गवेषणीय है। श्री ज्ञानीजीने इस सम्बन्धमें प्रकाश डालनेका यत्न किया है। इतिहास-मर्मज्ञ और अन्वेषण-प्रिय महानुभावोंके लिये प्रस्तुत पुस्तक सुन्दर प्रारूपका काम दे सकती है। इस विषयमें अभी अधिक अकाट्य तथ्योंके आधारपर इस ऐतिहासिक समस्याका समाधान अपेक्षित है। श्री महाराजने स्वरचित जीवनचरितमें स्वयं लिखा है 'तीन वर्ष नर्मदा तटपर घूमता रहा'। इसीको आधार बनाकर अधिक अनुसन्धानकी आवश्यकता है।

यहां यह लिखना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्रीजीने भी बड़े परिश्रमसे एक 'सर्वखाप' के माध्यमसे श्री स्वामी विरजानन्द-विषयक एक पत्र खोज निकाला है, जिससे प्रतीत होता है कि श्री स्वामी

विरजानन्दजीका प्रत्यक्ष रूपसे १८५७ की राज-क्रान्तिमें बौद्धिक सहयोग अवश्य था।

उपर्युक्त पत्रिका का ऐतिहासिक मूल्याङ्कन भी करना शेष है।

श्री स्वामीजीका प्रत्यक्ष सार्वजनक कार्य १८६४ से प्रारम्भ होता है और इस समयसे निरन्तर उनका प्रबल-प्रयास वैदिक धर्मको शुद्ध रूपमें जनता के सम्भुख रखना ही रहा है। इसी मध्यमें 'राष्ट्र और राजनीति' के गूढ़तर-रहस्योंका भी निर्भय और निडर होकर आप प्रचार करते रहे और महाराज-का कार्य मुख्यतः यही रहा कि देशीय एवं विदेशीय विद्वानोंकी मस्तिष्क-शुद्धि (ब्रेन-वाश-Brain-wash) कर दी जाय।

श्री महाराजकी दिव्य-दृष्टिने यह भांप लिया था कि शताब्दियोंकी विदेशी-दासतासे हिन्दु (आर्य) जनतामें हीन-भावनाका उद्रेक है—इसपर ईसाइयत एवं इस्लामके आक्रमण, अंग्रेज़ों द्वारा निर्मित इतिहास, धर्मशास्त्रोंके मिथ्या अनुवादों और उसी आधारपर वैदिक धर्मकी आलोचनाओंने जन-मानस-को दीन-हीन बना दिया था। श्री राजा राम मोहन राय तथा ब्राह्म-समाजके नेताओं द्वारा किये सुधार-श्रम और राष्ट्रोद्धार (Hindu Revivalism) का प्रयास अधिक सफल नहीं हो सका। ऐसी स्थितिमें महर्षिके दैवी-व्यक्तित्व, उनके अगाध वैदिक-ज्ञान और प्रबल युक्ति एवं तर्कने पांसा ही पलट दिया। बुद्धि-जीवी सजग और सबल हो उठे। आर्य्य (हिन्दु) जनताका मनो-बल इतना बढ़ा कि विदेशी शासन भी हिल गया और विदेशी मत-मतान्तरोंके पैर भी डगमगाने लगे। इसका परिणाम स्वाभाविक था। देशके प्रत्येक नागरिकमें स्वराज्य, स्वराष्ट्र और स्वधर्मकी भावना इतनी मात्रामें जागृत हुई कि प्रत्येक प्रकारका बलिदान देने के लिये वे कटिबद्ध हो गये।

श्री ज्ञानीजीका यह सन्दर्भ हमारे इसी विचारकी पुष्टि करता है। उक्त पुस्तकमें उन्होंने स्वातन्त्र्य-संग्रामके सम्माननीय सेनानियोंको चार श्रेणियोंमें (नरम-दल, गरम-दल, कांग्रेसी और क्रान्तिकारी) विभक्त करके यह सिद्ध किया है कि प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सभी सेनानियोंकी विचारधारा श्री स्वामीजी महाराजके 'राष्ट्र' सम्बन्धी विचारोंसे ही प्रभावित हुई थी।

श्री ज्ञानीजीका चयन और विश्लेषण एक-दम युक्ति-युक्त और तथ्यों-पर आधारित है। श्री महाराजके प्रवचनों और उपदेशोंने जन-मानसको एक-दम मोड़कर रख दिया था। समस्त बुद्धिजीवी वर्ग और साधारण जनता-सभी स्वधर्म, स्वदेश, स्वराष्ट्र और भावी चक्र-वर्ती राज्यकी उद्दात्त एवं उत्कृष्ट

भावनाओंसे आन्दोलित हो उठा और उसका शुभ परिणाम हुआ—अंग्रेज़ पलायन एवं स्वराज्य संस्थापन।

खेद है कि महर्षिका यह पुनीत-प्रयास आजकी जनताके सम्मुख ठीक उभरकर नहीं आया। श्री ज्ञानीजीने इस विषयमें अपना कर्तव्य समझा और महर्षिके इस उपेक्षित राष्ट्रीय-पक्षको जिस अद्भुत्, अनूठे एवं अभूतपूर्व ढंगसे-सुललित एवं परिमार्जित साहित्यक भाषामें जनताके समक्ष रखा है, उसे पढ़कर प्रत्येक पाठक आपके गम्भीर स्वाध्याय, अनथक परिश्रम तथा अलौकिक वर्णन-शैलीपर मुग्ध हो जायगा। इसके लिये आप साधुवाद एवं बधाईके पात्र हैं। मैं, अन्वेषण-प्रिय पठित समाजसे तथा स्कूलों, कालिजों एवं आर्य्य समाजोंके प्रबन्धकोंसे सानुरोध निवेदन करूंगा कि आप इस उत्तम ग्रन्थसे कदापि वंचित न रहें।

प्रा० रामसिंह एम. ए.
भूतपूर्व अध्यक्ष अखिल भारत हिन्दु महासभा,
प्रधान आर्य प्रतिनिधिसभा पंजाब एवं
कुलपति गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी, हरिद्वार

—

आर्यसमाजके महाविद्वान्के उत्साहजनक विचार

आदरणीय श्री ज्ञानी जी!

सादर नमस्ते।

"……निस्सन्देह आपने बहुत परिश्रम करके महर्षि दयानन्दके राष्ट्रीय पहलूको स्पष्ट करने और आगे लाने का प्रयत्न किया है, प्रयास बहुत स्तुत्य है। पुस्तक प्रत्येक आर्यसमाज, कॉलिज, स्कूल और व्यक्तियोंके संग्रह योग्य है……।"

युधिष्ठिर मीमांसिक
रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत

भूतपूर्व अध्यक्ष भाषा विभाग
पंजाब-हरियाणाके उद्गार

'१८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम में महर्षि दयानन्दका क्रियात्मक योगदान' नामक ग्रन्थ-रत्नको यद्यपि आद्योपान्त अध्ययन करनेका सौभाग्य मुझे मिला नहीं, तथापि उसके पर्याप्त प्रमुख भाग दृष्टि गोचर हुए हैं। अपने पूज्य भावनामयसुहृद-वर ज्ञानी पिण्डीदासजीको इस सामयिक एवं परमोपयोगी ग्रन्थ लिखनेपर मैं बधाई देनेमें हर्ष अनुभव करता हूं। ज्ञानीजी वे सुलझे हुए अनुसन्धान-प्रिय आर्य-नेता हैं, जिन्होंने अपने उदीयमान नवयौवनके सुनहरे दिनोंमें आजसे अर्द्ध शताब्दिपूर्व स्थायी सरकारी नौकरीको छोड़कर आर्य समाजकी सेवाका व्रत अपनाया था, जिसके लिए प्रेरणा मेरे पूज्य पिता श्री पं० परशुरामजीने दी थी। इन्होंने कई गवेषणात्मक ग्रन्थ लिखे हैं। उसी लड़ीमें यह एक तेजस्वी भेंट और इन्होंने की है।

ऋषि दयानन्द विश्वके सफल ख्यात-तम नेताओंमेंसे एक हो गुज़रे हैं। इनकी सर्वतोमुखी, अप्रतिहत् प्रतिभा त्रिकालदर्शी थी। समाधिस्थ होकर भारतकी तत्कालीन अन्तर्व्याधियोंकी दिव्य औषधि, जो इन्होंने दिव्य प्रेरणा-से पाई, वह पार्थिव नेताओंके लिए अगम्य थी। उन्हींके द्वारा प्रदर्शित ज्ञान-किरणको लेकर महात्मा गांधी अहिंसात्मक क्रान्ति द्वारा भारतको स्वतन्त्रता दिलानेमें जुट गये। लोकमान्य तिलक भी इनकी यशो-गाथा गाने लगे। इन-की अलौकिक सूझ-बूझका सिक्का देशी-विदेशी सभी विद्वानोंने माना है। धार्मिक, सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक विकास जो इन्होंने व्यामुग्ध भारतीयों का किया—उसका उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। इनके प्रखर-तर्कके कारण ही आज विधर्मी धर्मग्रन्थोंके नये नये अर्थ उनकोकरने पड़ रहे हैं। ऋषि दयानन्द दिव्य-नेत्र थे।

परन्तु खेद है कि इस महान् नेताके धार्मिक उपकारोंको ही आर्य-समाज अभी तक जनता तक पहुंचा सका है। आर्य समाजको तो पारस्परिक कलहोंसे ही अब समय निकालना कठिन हो रहा है। शोक है कि आर्य विद्वान् भी ऋषिको भुला रहे हैं। आर्य नेता अब लोकेषणामें रत हैं। उन्हें लोक-सभाके सदस्य बननेकी चिन्ता बढ़ रही है। पार्थिव ख्यातियोंका मूल्य उन्हें

अधिक लगता है। ज्ञानीजीका मैं आभार मानता हूं कि इन्होंने जबसे ऋषि-मन्दिरमें प्रवेश पाया है तभीसे वे ऋषिकी प्रतापी प्रतिभा, व्यापक ज्ञान-गरिमा, एवं अलौकिक सर्वतोमुखी कार्य-कलापका मूल्यांकन करनेमें व्यस्त हैं। जितनी विभूति उनके पास है उससे वे ऋषिका आराधन कर रहे हैं।

१९६३ में मैं पटियाला आर्य समाजका प्रधान एवं सभी शिक्षण संस्थाओंका प्रमुख अधिष्ठाता था। ऋषिके राष्ट्रीय-पक्षके सम्बन्धमें इन शिक्षण संस्थाओंमें हमने सैमिनार रखे। उनमेंसे एकके प्रधान थे— गवर्नमैण्ट महेन्द्रा कालेज पटियालाके प्रिंसिपल श्री एम. एल. खोसला जो माने हुए इतिहासके वरिष्ठ पण्डित हैं। मैंने अपने वक्तृत्वमें जब वहाँ १८५७ के ऋषिके चमत्कारोंका चित्र खींचा तो प्रधान मुग्ध हो उठे। उन्होंने कहा कि ऋषिका यह राष्ट्रीय पहलू तो कभी हमारे सामने नहीं लाया गया। यह सम्मति एक प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ताकी है।

अतः मेरी धारणा है कि इस पुस्तकका प्रसार एवं प्रचार आबाल-वृद्ध होना चाहिये। केवल आर्य समाज तक ही इसका क्षेत्र नहीं। विश्वमें जहां भी स्वातन्त्र्य-सेनानियों की गणना होगी, उस मालामें दयानन्दका नाम "मेरु" (MERU) के समान होगा। देश-भक्ति, विश्व-बन्धुत्व, जन-कल्याण-भावना, आदर्शोंकी स्वच्छता और सत्यताकी जहां भी चर्चा होगी; ऋषि दयानन्दका तेजस्वी नाम वहीं भुवन-दीपक भास्करके समान चमकेगा। विश्वके स्वातन्त्र्य-संग्रामोंके इतिहास तब तक अधूरे रहेंगे जब तक कि ऋषि दयानन्दकी ध्रुव एवं अटल मातृ-भूमिकी उपासना का चित्र उसमें नहीं संजोया जायगा।

अपने पूज्य भाई ज्ञानी पिण्डीदासके गहन अध्ययन, अनथक परिश्रम, श्रद्धा-भरित-वर्णन-शैली एवं माधुर्य्यपूर्ण सुललित भाषा पर मैं मुग्ध हूं। ज्ञानीजी शोध परायण हैं। इनकी प्रतिभाका चमत्कार मैंने इनकी लघु-काय पुस्तिका "इस्लाम कैसे फैला" में बीसियों वर्ष पहले देखा था।

मेरी प्रार्थना है कि परमपिता परमात्मा ज्ञानीजी को दीर्घआयु दें जिससे कि वे आर्यसमाजकी और भी अधिक सेवा कर सकें। यह ग्रन्थ सभी दृष्टियोंसे उपादेय है।

परमानन्द एम. ए., पी एच.-डी.
प्रिन्सिपल नेहरू कालिज, फरीदाबाद (हरियाणा)

राष्ट्रोद्धारक दयानन्द

"अगर देशहितैषी हमें न जगाता ।
तो देशोन्नतिका किसे ध्यान आता ॥"

उपर्युक्त पंक्तियोंमें किसी कविने महर्षि दयानन्द सरस्वतीके सार्वजनिक जीवनके वास्तविक स्वरूपको बड़े ही सुन्दर शब्दोंमें चित्रण किया है। राष्ट्रीय-नव-जागरणके देवता दिव्य दयानन्दकी बहुमुखी प्रतिभा जहां समाज सुधार, धर्मोद्धार, वेद-प्रचार एवं शिक्षा-प्रसारके क्षेत्रोंमें बहुत ही प्रभावी ढंगसे मुखरित हुई, वहां सन् १८५७ में भारतीय स्वातन्त्र्य संग्रामके उत्तरकालमें वह प्रतिभा राष्ट्रीय उद्‌बोधन एवं स्वातन्त्र्य भावनाके सर्वप्रथम मन्त्रदाताके रूपमें भी प्रकट हुई। कुछ एक कारणोंसे उनके जीवनका राष्ट्रीय पक्ष सर्वसाधारणकी दृष्टिसे ओझल रहा, पर अब धीरे-धीरे अनेक ऐसे ऐतिहासिक तथ्य प्रकाशमें आ रहेहैं, जिनसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि भारतीय स्वतन्त्रताके वह एक क्रान्तदर्शी अग्रदूत एवं राष्ट्रीय-चेतनाके अद्वितीय उद्‌बोधक थे।

दयानन्दके अमर ग्रन्थों और उनके महत्त्वपूर्ण लेखोंमें उनकी राष्ट्रीय-भावना अपने ओजस्वी रूपमें मुखरित हुई है। अपने यजुर्वेद भाष्यमें एक स्थानपर "क्षत्राय पिन्वस्व" मन्त्र-खंडकी व्याख्या करते हुए दयानन्द भगवान् से प्रार्थना करते हुए लिखते हैं — " हे महाराजाधिराज परब्रह्म, अखंड चक्रवर्ती राज्यके लिये शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तमगुणयुक्त कृपासे हम लोगोंको यथावत् पुष्ट कर। अन्य देशवासी राजा हमारेदेशमें कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों।" स्वतन्त्रता-प्राप्तिकी जो तड़प इन पंक्तियोंमें प्रस्फुटित हुई है, उससे स्वनाम धन्य लेखकके मनगत् भावोंको कोई भी सहृदय सज्जन सरलतासे समझ सकता है। इसके अतिरिक्त उनके प्रार्थना-परक अमूल्य-ग्रन्थ "आर्याभिविनय" का तो एक एक शब्द उनकी राष्ट्रभक्ति और स्वराज्य-प्रेमका परिचय देता है। "आर्याभिविनय" में एक स्थानपर परमपिता परमात्मासे प्रार्थना करते हुए महर्षि लिखते हैं—"हमको भी सत्यविद्या से युक्त सुनीति दे के साम्राज्याधिकारी सद्यः कीजिये। हम पर सहायता करो जिससे सुनीतियुक्त होके हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े।" वस्तुतः वर्तमान युगमें स्वराज्य-शब्दके सर्वप्रथम घोषक देव दयानन्द ही थे और उनके अनुकरणमें ही पीछे श्री दादा भाई

नौरोजी, लोकमान्य तिलक एवं महात्मा गांधीने स्वराज्य-शब्दको अपने सार्वजनिक जीवनमें अपनाया)। अपनी समस्त राजनैतिक प्रवृत्तियोंके लिये महात्मा गान्धी मूलरूपमें महर्षिके ही ऋणी हैं। यह एक तथ्य है कि यदि दयानन्दने अपनी मौलिक सूझबूझके आधारपर भूमि तैयार न की होती, तो गांधीजीका सार्वजनिक जीवन इतना महत्वपूर्ण और प्रेरक न हो पाता। यह भी एक सच्चाई है कि जिन प्रवृत्तियोंको गांधीजीने दयानन्दसे प्राप्त किया, उन्हींमें वे सफल सिद्ध हुए और जो इतर प्रवृत्तियें गांधीजीके अपने चिन्तनका फल थीं, उन्हींमें वे पूर्णतया असफल रहे। उदाहरणार्थ नमक-कर का विरोध, स्वदेशीवस्त्र प्रयोग, दलितोद्धार आन्दोलन, सरकारी अदालतों का बायकाट, हिन्दीप्रचार, जातीयगौरव एवं देश भक्तिकी प्रेरणा, स्टैम्प ड्यूटी (Stamp Duty) का विरोध इत्यादि समस्त प्रवृत्तियें दयानन्दकी ही मौलिक देन थीं, जिन्हें गांधीजीने पीछेसे अपनाया और वे भारतके राजनैतिक गगन-मण्डल में चमके। अहिंसाका अत्यधिक आग्रह और मुसलिम-परितोषकी प्रवृत्तियें गांधीजीके अपने चिन्तनका फल थीं और इतिहास साक्षी है कि इन्हीं प्रवृत्तियोंके कार्यान्वियनमें गांधीजी असफल रहे।

इसी सम्बन्धमें दयानन्दके जीवनकी एक घटना अति महत्वपूर्ण है, जिससे पता चलता है कि स्वामी दयानन्द वास्तवमें क्या थे। जनवरी सन् १८७३ में दयानन्दकी भेंट तत्कालीन वायसराय लार्ड नार्थब्रूक (Lord North Book) से कलकत्तामें हुई। इस भेंटका विवरण India House, London में गवर्नर जनरल की प्राइवेट डायरीसे प्राप्त हुआ है। इस भेंट में दोनों ओरसे सामान्य शिष्टाचारके बाद वायसरायने स्वामीजीसे कहा :—

"Pandit Dayanand, I am informed your iconalastic criticism of other religions wounds and irritates the cherished sentiments of (and stimulates hostility against you among) Musalman and Christian audiences. Do you apprehend any danger to your person from your enemies? In particular, do you need any special protection of your self by our government."

अर्थात् :—पंडित दयानन्द ! मुझे सूचना मिली है कि आप द्वारा दूसरे मतमतान्तरों व धर्मोंकी कड़ी आलोचना मुसलमान और ईसाई जनता में क्षोभ उत्पन्न करती है और उनके हृदयमें आपके प्रति शत्रुता उमड़ती

है। क्या आपको अपने शत्रुओं से किसी प्रकार का खतरा अनुभव होता है। विशेषतया क्या आप अपनी सुरक्षाके लिये सरकार से कोई विशेष प्रबन्ध चाहते हैं ?"

स्वामी दयानन्द ने उत्तर दिया :—"मुझे अपने विचारोंके प्रचार करनेकी अंग्रेज़ी राज्यमें पूरी स्वतन्त्रता है। मुझे व्यक्तिगत रूपमें किसी प्रकारका ख़तरा नहीं है।"

वायसराय :—"If it is so, would you mind expressing your appreciation for the blessings conferred by British Rule on your country ? And in the prayers to God that usually precede your discourses, would you pray for the perpetual continuance of British sovereignty in India ?"

अर्थात् :—"यदि ऐसा ही है तो क्या आप अपने देशमें अंग्रेज़ी शासन द्वारा उपलब्ध उपकारोंका भी वर्णन किया करेंगे - और अपने व्याख्यानोंके आरम्भमें जो ईश्वर-प्रार्थना आप किया करते हैं उसमें भारत-में ब्रिटिश साम्राज्य के निरन्तर स्थिर रहनेकी प्रार्थना भी किया करेंगे ?"

दयानन्द :—"मैं ऐसी किसी बातको माननेमें असमर्थ हूं, क्योंकि मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मेरे देशवासियोंको अबाध राजनैतिक विकास और संसारके राज्योंमें समानताका दर्जा पानेके लिए शीघ्र पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिये। श्रीमान् जी, मैं तो नित्यप्रति प्रातः और सायं सर्वशक्तिमान् परमात्मासे अपनी प्रार्थनाओंमें यही मांगता हूं कि उसकी दिव्य-दयासे मेरा देश विदेशियोंकी दासतासे मुक्त हो जाए।"

डायरी में आगे लिखा है :—"Such unexpected enunciation of Dayanand's political aspirations alarmed the viceroy and abruptly cut short the conversation."

अर्थात् :—दयानन्द की राजनैतिक आकांक्षाओंके इस प्रकारके अप्रत्याशित प्रदर्शनसे वायसराय चौंक उठे और तुरन्त वार्तालाप बन्द कर दिया गया।"

लार्ड नार्थब्रुक ने यह घटना अपनी एक साप्ताहिक डायरी द्वारा इंडिया आफिस लंडनको भेजी और मलिका (विक्टोरिया) सरकारके सैक्रेटरी आफ स्टेटको सूचित किया कि उसने इस "बाग़ी फ़कीर" पर कड़ी निगरानी रखनेके लिये अपनी सरकारको आदेश दे दिया है।

यह है ब्रिटिश साम्राज्यकी गुप्त फायलोंका एक उद्धरण, जिस से दयानन्दकी वास्तविकता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इसी प्रकारकी और भी घटनायें एवं तथ्य ऐसे हैं जिनसे दयानन्दके राष्ट्रीय मनोभावों का दिग्दर्शन होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ "१८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राममें स्वराज्य प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्दका क्रियात्मक योगदान" के यशस्वीलेखक आदरणीय ज्ञानी पिण्डीदासजीने बड़ी विशदतासे इन तथ्योंका संकलन किया है। महर्षि दयानन्दके सार्वजनिक जीवनके राष्ट्रीय-पक्षपर कुछ साहित्य पहले भी प्रकाशित हुआ है, पर वह बहुत ही कम है। इस दृष्टिसे आदरणीय ज्ञानी जीका यह प्रयास बहुत ही स्तुत्य एवं प्रशंसनीय है। मैं उन्हें इस सफलतापर हार्दिक बधाई देता हूं और आकांक्षा करता हूं कि कोई घर, स्कूल, कालिज, पाठशाला, आर्यसमाज अथवा संस्थान इस ग्रन्थके संकलनसे वंचित न रहे।

विनीत
धर्मपाल बी. ए.
भूतपूर्व म्यूनिसिपल कमिश्नर,
तथा पूर्व प्रधान, केन्द्रीय आर्यसभा
अमृतसर

* ओ३म् *

१

१८५७

के

स्वातन्त्र्य संग्राम में

महर्षि दयानन्द सरस्वती

का क्रियात्मक योगदान

जैसा कि आप आगामी पृष्ठों में पढ़ेंगे, यह तथ्य अब उद्दीयमान् भुवन-भास्कर की भांति विश्व-भरमें व्याप्त हो चुका है कि भारतके स्वराज्य-यज्ञके 'ब्रह्मा', आर्य्यसमाजके प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ही थे। अपने-बेगाने, स्वदेशीय-विदेशीय राजनैतिक नेता तथा कार्यकर्त्ता—सब—इस बातपर सहमत हो गये हैं। अब विचारणीय विषय केवल यह शेष रहा है कि एक छोटे-से ग्राम (टंकारा) निवासी, समृद्ध परिवारके प्यार-दुलारमें पालित-पोषित एक व्यक्तिमें, जिसकी आरम्भिक शिक्षा-दीक्षा एक कट्टर रूढ़िवादी साम्प्रदायिक वातावरणमें हुई, जिसे देव-वाणी संस्कृतके अतिरिक्त किसी-भी अन्य भाषाके अध्ययन करनेका अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ, जिसे किसी प्रगतिशील महानगरके विद्या-विनोदी समाज-के साथ सम्पर्क स्थापित करने का सौभाग्य उपलब्ध नहीं हो सका, जो वर्षों 'सच्चे-शिव' की तलाश में बीहड़-बनों, कण्टकाकीर्ण मार्ग-विहीन पर्वत-प्रदेशों, हिंस्र पशुओंसे व्याप्त जंगलों और हिमाच्छादित-हिमालय-शिखरों-की खाक छानता फिरा, उसके मन-मस्तिष्कमें राष्ट्रोत्थानकी तीव्र-भावनाओं, स्वदेशके लिये पूर्ण स्वातन्त्र्य-प्राप्तिकी उत्कट इच्छाओं और देशोद्धारकी अविरल धाराओंका परम-पुनीत-प्रवाह कैसे प्रवाहित हो उठा? सर्व-साधारण साधु-संन्यासियोंकी भांति वह भी केवल अपने व्यक्तित्वको ऊँचा उठाने, विशेषतः अठारह घण्टेकी निर्विकल्प समाधि प्राप्त हो जाने पर भी केवल अपने ही आत्म-कल्याण एवं निर्वाणकी चिन्ता करनेके स्थानपर स्वदेश तथा स्वदेश-वासियोंकी दीन-हीन दशाको निहारकर नीर-निष्कासित

मीनकी तरह क्यों तड़पने लगा ? योगाभ्यास तथा तज्जन्य परमानन्द-प्राप्ति की कमनीय-कामनाका पूर्ण परित्याग करके क्यों नगर-नगर और डगर-डगर-में अलख जगाता मारा-मारा फिरने लगा ? स्नेह-सिक्त सहोदरा प्यारी भगिनी-के निधनपर प्रस्तर-प्रतिमावत् एक कोनेमें दुबककर खड़ा-खड़ा देखते रहने वाला यह 'मूल शंकर' (मानो कुछ हुआ ही न हो), और समस्त पारिवारिक जनोंकी ओरसे यह उपालम्भ कि 'इस पाषाण-हृदय भाईकी आँखोंमें परम-प्रिया बहनके शोकमें अश्रु-कणोंके रूपमें बहानेके लिये दो-बूँद पानी भी नहीं है,' सुनकर भी द्रवित न होने वाला यही व्यक्ति, दयानन्द बनने के उपरान्त किसी अज्ञात, अपरिचित, असहाय, अबलाके वैधव्य और तज्जन्य दारिद्र्य को देखते ही क्यों शिशुओंकी भाँति बिल-बिलाने लगा ? और अपने दोनों दिव्य दृगोंमें से गंगा-यमुनाके प्रवाह सदृश अश्रुधाराओंको प्रवाहित करता हुआ, अपने देव-तुल्य देदीप्यमान्, परन्तु वस्त्र-विहीन, विशाल-वक्षस्थलको क्यों आप्लावित करने लगा ? परोपकार, पतितोद्धार, देश-सुधार, स्वातन्त्र्य-प्रचार और स्वराज्य-विस्तारकी पतित-पावनी पुनीत विचार धाराओंसे ओत-प्रोत हृदयके साथ, अपनों-बेगानोंके विरुद्ध शृङ्खला-बद्ध संघर्ष-रत क्यों रहने लगा ? बड़े-बड़े सत्ताभिमानी, हैंकड़-बाज़ राज्याधिकारियोंके साथ निर्भीक होकर क्यों लोहा लेता फिरने लगा ? निर्भय-निडर होकर शत्रु-समूहों में क्यों दहाड़ता दृष्टिगोचर होने लगा ? अपनी दिव्य-देह, सुन्दर-सुडौल व्यक्तित्व और अमूल्य-अनुकरणीय जीवनकी सुरक्षाका रञ्चक-मात्र भी चिन्तन न करता हुआ, या यूं समझिये कि सिरको हथेलीपर रक्खे और बलिदानकी भव्य-भावनाओंको हृदयमें संजोये, देशके, राष्ट्रके और धर्म के घोरतम विद्वेषियों के साथ भिड़ जानेको प्रतिक्षण क्यों उद्यत रहने लगा ?

आख़िर, यह समस्त प्रेरणा, यह सम्पूर्ण उत्तेजना, यह समूची समुद्यता और सर्वस्व बलिदानकी यह तत्परता, अकारण तो स्वीकार नहीं की जा सकती ? इनका कोई स्रोत, कोई उद्गम-स्थान, कोई पृष्ठ-भूमि और कोई मूल कारण तो अवश्य होना चाहिये ।

ये ऐसे जटल प्रश्न हैं, ऐसी कठिन समस्याएँ हैं, जिनकी ओर स्वयं महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी ने कर्नल अल्कॉटको सुनाई (और थ्यासोफिस्ट में प्रकाशित) अपनी संक्षिप्त-सी जीवन-कथा और अपने पूना-व्याख्यानों में भी कोई संकेत तक नहां किया । इस लिये आज तक सब लोग एक प्रकारसे असमञ्जसमें ही रहे; क्योंकि इस सन्दर्भमें उन्हें कोई ज्ञान ही नहीं था । हाँ, इतनी-सी बात सोचकर कि सञ्चित शुभ संस्कारों से सुसज्जित आत्माएँ अपने अनेकपूर्व-जन्मोंकी उच्चतम वासनाओंको साथ लेकर ही मर्त्यलोकमें अवतरित होतीं

और उन्हीं के पुण्य-प्रताप से ऐहिक पार्थिव जीवनमें विविध प्रकार-की चमत्कार-पूर्ण लीलाओंका प्रदर्शन करती हुई प्रायः विश्व-जगत्-को चका-चौंधमें डालती रहती हैं, हम सब अपना मनस्तोष कर लिया करते थे। ये समस्त बातें अक्षरशः सत्य हैं। परन्तु उन सुन्दर-संस्कार-सम्पन्न आत्माओंके परोक्ष-प्राकृतिक ज्ञानकी यथार्थताको स्वीकार करते हुए भी, साक्षात्-प्रत्यक्ष-नैमित्तिक ज्ञानकी अनिवार्यताको विस्मृत नहीं किया जा सकता। इसी विचार-सरणीका अनुशीलन करते हुए हमारे अनेक विद्वद्वर निरन्तर अनुसन्धानमें संलग्न रहे कि उक्त समस्याओंका सुन्दर-समाधान होना ही चाहिये, इस विषयमें भी हमें यथार्थ ज्ञान उपलब्ध होना ही चाहिये।

यह सन्तोष तथा हर्षका विषय है कि कतिपय विद्या-विलासी, अन्वेषण-प्रिय सज्जनोंके अखण्ड अनुसन्धानोंके फल-स्वरूप उक्त उलझन का सुन्दर-सन्तोषप्रद रहस्योद्घाटन (कुछ अनुमान-जन्य-कुछ-तथ्य-आधारित चाहे आंशिक रूपमें ही क्यों न हो) हाल ही में हो पाया है। आइये,पहले महर्षि के प्रारम्भिक जीवनको विहग-दृष्टिसे, जैसा कि उन्होंने स्वयं कर्नल अल्कॉटको सुनाया था, देख लें।

महर्षिकी संक्षिप्त जीवनी

(उनके स्वरचित जीवन चरित के आधार पर)

गुजरात प्रान्त-स्थित धरङ्गधरा (दुर्गान्धिरा) राज्यमें मच्छुकाहटी नदीके तटपर मोरवी नाम नगरमें एक उदीच्य ब्राह्मण कुलमें, जिसका व्यवसाय ज़िमींदारी और साहुकारीका था, और परम्परासे उस कुलमें ज़िमींदारी भी चली आती थी, जो कि उस देशमें तहसीलदारीके बराबर थी और सरकारी कर संग्रह करना भी इनका काम था, अतः कई सरकारी सिपाही भी मिले हुए थे, सम्वत् १८८१ विक्रमीमें आपका जन्म हुआ। पाँच वर्षकी आयुमें आपको नागरी अक्षरोंका अभ्यास कराना आरम्भ किया गया। बहुत-से मन्त्र, श्लोक, स्तोत्र एवं टीकाएँ कण्ठस्थ कराई गईं। आठवें वर्षमें यज्ञोपवीत संस्कारके अनन्तर गायत्री-जाप तथा सन्ध्या-अनुष्ठानकी विधि सिखाई गई और शुक्ल यजुर्वेद संहिता भी पढ़ाई गई। दसवें वर्षमें कुलरीत्यनुसार पार्थिव पूजा-पद्धतिसे परिचित कराया गया। चौदहवें वर्ष तक आपने सम्पूर्ण यजुर्वेद संहिता कण्ठस्थ कर ली थी। आपके पिता परम शैव थे और उनकीअ भिलाषा थी कि उनका पुत्र भी शिव-भक्त बने। पिताजीके आग्रहसे फाल्गुण १३ को आपने उपवास किया, यद्यपि आपकी स्नेह-मयी माताजी इसपर प्रसन्न नहीं थीं। ग्रामके बाहर शिव-मन्दिरमें रातको शिवकी पूजा-अर्चा होती रही। पहले और दूसरे प्रहरका पूजन समाप्त हुआ कि शनैः शनैः व्रती लोग ऊँघने लगे

और यथा-स्थान लेटते गये। आपके पिताजी भी निद्राके वशीभूत हो गये। आपको जब नींद सताने लगती तो मुँह और आँखोंपर पानीकेछींटे डालकर उसे दूर कर देते। "इतनेमें मन्दिरके बिलमेंसे एक ऊँदर (चूहा) निकलकर पिण्डीके गिर्द घूमने और अक्षतादि ऊपर चढ़ कर भी खाने लगा।" इसपर आपके मनमें शंका उठी कि जिस शिवकी कथा सुनी थी यह तो वह नहीं हो सकता। "क्योंकि वह तो मनुष्यके समान एक देवता है, जिसके विकराल गुण हैं। पशुपतास्त्र, वृषभ-वाहन, त्रिशूल हाथ में, जो डमरू बजाता, वर और शाप देता, कैलाशका स्वामी है। इत्यादि प्रकारका महादेव जो कथामें सुना था क्या सम्भव है कि यही पारब्रह्म हो, जिसके सिरपर चूहे दौड़े-दौड़े फिरते हैं?" आपको शंका हुई कि "जो शिव अपने पशुपतास्त्र से बड़े-बड़े प्रचण्ड दैत्यों को मारता है, क्या उसमें एक निर्बल चूहेको भगा देने की भी शक्ति नहीं है।" आपने पिताजीको जगाकर अपनी शंका प्रस्तुत करके इसके यथार्थ समाधानकी प्रार्थना की। उनका उत्तर सन्तोष-प्रद नहीं था। तब बालकने मन-ही-मन संकल्प कर लिया कि शिवको प्रत्यक्ष देखकर ही पूजन करूँगा। बस पिताजीसे आज्ञा लेकर बालक घर चला गया। क्षुधार्त्त होने-के कारण उनकी माताजीने मिष्टान्न खिलाकर सुला दिया। प्रातः उपवास-भंगकी बात सुनकर आपके पिताजी ने मां-बेटा दोनों पर बहुत क्रोध किया।

१८९६—आपकी चौदह वर्षीया भगिनि हैजेसे मर गई। घरके सब लोग रोने-चिल्लाने लगे; परन्तु आप दीवारके सहारे प्रस्तर-प्रतिमा बने खड़े रहे। घर वालोंने उपालम्भ भी दिया कि यह कैसा पत्थर-हृदय है कि प्यारी बहिनकी अकाल मृत्युपर इसके नयनोंमें दो आँसू भी नहीं हैं। परन्तु बालक-ने अपने जीवनमें पहली ही मृत्यु देखी थी और सोचने लगा था कि क्या सारे मनुष्य इसी तरह मरते हैं और क्या मुझेभी मरना होगा? इस मृत्यु के भयसे छूटनेका उपाय ढूँढना चाहिये, इत्यादि।

१८९९—अब आप १९ वर्ष के हो गये थे। आपके चाचा आपसे बहुत प्रेम करते थे। वे भी विशूचिका-ग्रस्त हो मरणासन्न हो गये। तब उनकी मृत्यु पर आप बहुत रोये। यह दूसरी मृत्यु देखकर आपका वैराग्य दृढ़ हो गया। यह समस्त संसार नश्वर प्रतीत होने लगा। आपके मित्रोंने आपकी मन-स्थिति पिताजी को कह सुनाई। वे बहुत खिन्न हुए और पुत्रको विवाह-पाशमें शीघ्रातिशीघ्र फंसानेकी बात सोचने लगे।

१९००—बीस वर्ष पूरे होते ही आपने पिताजीसे काशीमें जाकर विद्याध्ययनकी अनुमति मांगा; परन्तु यह नहीं मिल सकी। फिर तीन कोसपर

जाकर एक पण्डित से पढ़नेकी याचना की, जो स्वीकृत हुई। परन्तु विवाह करानेमें आपकी रुचि बिल्कुल भी नहीं थी। अतः इस झञ्झटसे बचनेके लिये चुप-चाप घरसे निकल जाने और वापिस कदापि न लौटनेका आपने दृढ़ निश्चय कर लिया।

१९०३—अब आपकी आयु बाईसवें वर्ष में पहुँच गई थी। एक दिन आप चुपके-से घरसे निकल गये। पहली रात घरसे आठ मीलकी दूरीपर एक ग्रामके निकट बिताई। प्रातः एक प्रहर रात रहते उठे और तीस मील सफ़र करके एक ग्रामके हनुमान्-मन्दिर में अगली रात व्यतीत की। आगे मार्गमें एक वैरागीने मूर्त्ति जमा रखी थी। इन मांगने वालोंने "चिढ़ा कर मुझे कहा तुमको पूरा वैराग्य तब होगा, जब तुम अपने पासका सब कुछ पुण्य कर दोगे।" उनके ऐसा कहनेपर आपने कुछ रुपये, कुछ कपड़े और तीन अंगूठियाँ उनको दे दीं।

आगे आपको एक ब्रह्मचारी मिला। उसने ब्रह्मचर्यकी दीक्षा देकर आपका नाम 'शुद्ध चैतन्य' रख दिया। तत्पश्चात् आपको पता चला कि सिद्धपुर-के मेले में बहुत योगी-महात्मा आते हैं। यह सुनकर आप वहाँ चले गये। मार्ग-में आपको एक परिचित वैरागी मिला, जिसने आपके पितातक आपके ब्रह्म-चारी बनकर सिद्धपुरके मेलेको जानेका समाचार पहुंचा दिया। वे सिपाही साथ लेकर आपको ढूंढने सिद्धपुरके मेलेमें आन पहुंचे, उन्हें अपने घेरेमें ले लिया और बहुत धिक्कारा, कुर्त्ता फाड़ डाला, तूम्बा छीनकर दूर भूमिपर पटक दिया और सैंकड़ों प्रकार के दुर्वचन कहे। नवीन वस्त्र पहनाकर अपने स्थानपर ले गये। रात पड़नेपर आपपर पहरा बिठा दिया। तीसरी रात्रिके तीन बजे पीछे पहरेवाला बैठा-बैठा सो गया और शुद्धचैतन्य ब्रह्मचारी भाग खड़ा हुआ। आध कोसपर एक उद्यानके मन्दिरके शिखरमें एक वट वृक्षके आश्रयसे चढ़कर, जलका लोटा साथ ले छिपकर बैठ गया। सिपाही ढूंढ-ढाँढ कर चले गये और ब्रह्मचारी शुद्धचैतन्य वहांसे निकल अहमदाबाद और वहाँसे बड़ौदा पहुंच गया।

१९०५—२४ वर्ष की आयुमें नर्मदा-तट निवासी श्री स्वामी पूर्णानन्द सरस्वतीसे आग्रह पूर्वक संन्यासकी दीक्षा ले, आप स्वामी दयानन्द सरस्वती कहलाने लगे।

१९०६—यह सुनकर कि व्यासाश्रममें योगक्रिया निपुण स्वामी योगानन्द रहते हैं। स्वामी दयानन्द वहां पहुंचे और व्याकरणादिका अभ्यास करते रहे। वहांसे चाणोद-कन्याली आश्रममें स्वामी ज्वालानन्दपुरी और स्वामी शिवानन्द गिरिसे योग-विद्या के गुप्त रहस्य सीखे। "उन्हीं महात्मा-योगियों-

के प्रभावसे स्वामीजी को पूर्ण योग-विद्या और उसकी साधन क्रिया अच्छे प्रकारसे विदित हो गई। फिर वे दोनों योगी अहमदाबाद चले गये और एक मास बाद वहां पहुंचनेका आदेश स्वामी दयानन्दजी को दे गये। साथ ही कह गये—"हम तुमको उस स्थानपर योग-साधनके पूर्ण गूढ़ तत्व और उनकी सब विद्या अच्छे प्रकार समझा देवेंगे।" एक मास व्यतीत होने-पर स्वामीजी उनके पास नदीके ऊपर दुधेश्वर महादेवके मन्दिरमें पहुंचे और योग-साधन सीखते रहे। इसपर स्वामीजी ने कहा—"वहां उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और अपने वचनानुसार मुझे निहाल कर दिया। ...इसलिये मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूं।"

तत्पश्चात् यह ज्ञात होनेपर कि आबू पर्वत शिखरोंपर बहुत योगी रहते हैं, स्वामी जी वहां पहुंचे और "उनसे और भी विशेष योग-साधनके रहस्य प्राप्त किये।"

१९११—"इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानोंमें फिरकर और महात्मा-विद्वानों और योगी-जनोंसे मिलकर आत्मिक-उन्नति और मानसिक-शांतिके उपाय और साधन प्राप्त करता रहा।"

१९१२–११ अप्रैल १८५५ ईस्वी को ३० वर्ष की आयुमें स्वामी दयानन्दजी कुम्भ के मेले पर हरिद्वार पहुंचे। वहां अनेक तपस्वियों से मिले और उनसे अनेक विद्याएँ सीखीं। जब तक मेला रहा तब तक आप चण्डी-पर्वत के जंगल में तपश्चर्या करते रहे। तत्पश्चात् ऋषिकेशमें सन्त-समागम करते रहे। यहांसे उन्हें एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधु मिले। उनके साथ रियासत टीहरी (गढ़वाल) में पहुंचे। वहांके एक पण्डितने भोजनका निमन्त्रण दिया और समयपर बुलानेको अपना आदमी भी भेजा, जिसके साथ स्वामी जी और उनका साथी ब्रह्मचारी दोनों पहुंचे।

इस घटनाके सम्बन्ध में स्वामी जी ने बताया—"परन्तु मुझको वहां एक पण्डितको मांस काटते और बनाते देख अत्यन्त घृणा हुई : आगे जाकर बहुत-से पण्डितोंको मांस और अस्थियोंके ढेर और जानवरोंके भुने हुए सिरोंपर काम करते देखा। इतनेमें गृह-स्वामीने प्रसन्नतापूर्वक हमें कहा कि भीतर चले आइये। मैंने कहा कि आप अपना काम करते जाइये। मेरे लिये कुछ कष्ट न कीजिये। यह कह झट वहां से निकल उलटे पांव अपने स्थान-का मार्ग लिया। कुछ काल पीछे वही मांस-भक्षी पण्डित मेरे पास आया और मुझसे निमन्त्रणपर चलनेको कहा और साथ ही यह भी कहा कि यह मांसादि उत्तम भोजन केवल आपके ही लिये बनाये गये हैं। मैंने उससे स्पष्ट कह दिया कि यह सब वृथा और निष्फल है क्योंकि वे मांस-

भक्षी हैं। मेरे योग्य तो केवल फल आदि हैं। मांस खाना तो दूर रहा, मुझे तो उसके देखनेसे ही रोग हो जाता है। यदि आपको मेरा न्योता करना ही है तो कुछ अन्न और फल आदि भिजवा दीजिये। मेरा ब्रह्मचारी यहांपर भोजन बना लेगा। इन सब बातोंको उक्त पण्डित स्वीकार कर लज्जित हो अपने घर लौट गया।" कुछ काल टीहरीमें ठहरकर स्वामीजीने तन्त्र-ग्रन्थ पढ़े और उनकी घृणित शिक्षा मालूम कर लेनेपर आपको उनसे अत्यन्त घृणा हो गई। वहांसे आप श्रीनगर, केदारघाट और रुद्रप्रयागसे होते हुए अगस्त्य मुनिकी समाधिपर पहुंचे। लौटते हुए अकेले ही केदारघाटसे उत्तरकाशी, गौरी कुण्ड, भीमगुफा और त्रियुगी-नारायणसे होते हुए वापस केदारघाट आ गये। वहांसे हिमाच्छादित पर्वत कक्षोंपर योगियोंकी तलाशमें चले गये। परन्तु परिश्रम विफल गया और योगियोंके न मिलनेसे आपको निराशा हुई।

तत्पश्चात् भयानक मार्गोंका अवगाहन करते हुए आपने ऊखी-मठमें रात्रिभर विश्राम किया; परन्तु वहां तो पाखण्डी और आडम्बर युक्त साधु मिले। स्वामीजीने लिखा—"वहांके बड़े महन्तने मुझे अपना चेला करनेका मनोगत किया। उसने इस बातकी दृढ़ताके लिये भी मुझे प्रलोभन दिखाया कि हमारी गद्दीके तुम स्वामी होगे और लाखों रुपयोंकी पूँजी तुम्हारे पास होगी। "मैंने उनको निस्पृह उत्तर दिया कि यदि मुझे धनकी लालसा होती तो मैं अपने पिताकी सम्पत्तिको, जो तुम्हारे इस स्थल, धन, धान्य से कहीं बढ़कर थी, न छोड़ता। किंच मैंने यह भी कहा कि जिस उद्देश्यसे मैंने घर छोड़ा और सांसारिक ऐश्वर्यसे मुख मोड़ा न तो मैं तुम्हें उसके लिये यत्न करते देखता हूं और न तुम्हें उसका ज्ञान ही प्रतीत होता है। पुनः तुम्हारे पास मेरा रहना कैसे सम्भव हो सकता है?"

वहांसे चलकर स्वामीजी अलखनन्दा नदीको पार करने लगे। उसके अत्यन्त शीतल जल, तीव्र वेग और उसमें बहने वाले नोकीले बर्फके टुकड़ोंसे आपके पाँव क्षत हो गये, उनमेंसे खून बहने लग गया। इस कष्टके कारण आप चलनेमें अशक्त हो गये। दो पहाड़ी सज्जन आपको अपने गृहपर ले जाना चाहते थे; परन्तु चलनेमें अशक्तताके कारण उनके साथ नहीं जा सके।

तदुपरान्त आपने वसुधारा नामक स्थानपर विश्राम किया और रात्रि के होते-होते बद्रीनारायण जा पहुंचे। वापसीपर क ाशीपुर, द्रोणसागर, मुरादाबाद, सम्भल, गढ़मुक्तेश्वरपर पुनः गंगा-तटपर आ गये। फिर फ़र्रुखाबाद, शृँगीरामपुरसे होते हुए कानपुर पधारे, पांच मासतक वहां

ठहरे और कई स्थान देखे । भाद्रपदके आरम्भमें मिर्जापुर, असूजके आरम्भ में काशी आ गये और उस गुफामें ठहरे जो 'वरुणा' और 'गंगा' के संगम पर है ।

श्री स्वामीजी वहांसे दुर्गाकुण्डके मन्दिर पर जो चण्डालगढ़में है, पहुंचे । वहां दस दिन व्यतीत किये । "दौर्भाग्यवश वहां मुझे एक बड़ा दोष लग गया, अर्थात् भंग पीनेका स्वभाव हो गया ।...एक दिन मन्दिरसे निकलकर चण्डालगढ़के निकटस्थ, मार्गमें जो एक ग्रामको जाता था एक पुराना साथी मिला । ग्रामके दूसरी ओर कुछ ही दूर एक शिवालय था, वहीं जाकर मैंने रात काटी । ...उस समय धारासार वर्षा हो रही थी । मैंने उस बरामदे में, जो मन्दिरके मुख्यद्वारके सम्मुख था, विश्राम किया । वहां नन्दी-वृष देवताकी एक विशाल मूर्ति खड़ी थी । अपने वस्त्र और पुस्तकादि उसकी पीठपर रखकर मैं उसके पीछे बैठ गया......सहसा नन्दी मूर्तिके भीतर दृष्टिपात करनेपर मुझे विदित हुआ कि एक मनुष्य उसमें छिपा हुआ है । मैंने अपना हाथ उसकी ओर फैलाया । इससे वह अतिभयभीत हुआ, क्योंकि मैंने देखा कि वह तत्काल छलांग मारते ही वेगसे ग्रामकी ओर भागा । तब उसके जानेपर मैं उस मूर्त्तिके भीतर बैठ गया और अवशिष्ट रात्रि-भर वहीं सो रहा । प्रातःकाल एक वृद्धा वहां आई । उसने वृष देवताकी पूजा की, जिस अवस्थामें कि मैं भी उसके अंदर ही बैठा हुआ था । कुछ देर पीछे वह गुड़ और दही लेकर लौटी । मेरी पूजा करके और भक्तिसे मुझे ही देवता समझकर उसने कहा—" आप इसे ग्रहण कीजिये और इसमेंसे कुछ खाइये ।" मैंने क्षुधार्त्त होनेके कारण वह सब खा लिया । दही क्योंकि बहुत खट्टा था, अतः भांगकी मादकता दूर करनेमें अच्छा निदान हो गया । उससे मादकता जाती रही और मुझे बहुत आराम प्रतीत हुआ ।"

१९१४—वहां से स्वामी जी नर्मदा-स्रोतकी ओर अग्रसर हुए । जंगल बहुत घना था और बेरियोंके कांटेदार वृक्षोंका बाहुल्य था, लम्बे घासके कारण मार्ग स्पष्ट प्रतीत नहीं होता था । "वहां मेरा सामना एक बड़े काले रीछसे हुआ । वह पशु बड़े वेग और उच्च स्वरसे चीखा । चिंघाड़कर अपनी पिछली टांगोंपर खड़ा हो मुझे खानेके लिये उसने अपना मुंह खोला । कुछ कालतक मैं निष्क्रिय स्तब्धवत् खड़ा रहा । पश्चात् शनैः शनैः मैंने अपने सोटेको उसकी ओर उठाया । उससे भयभीत हो वह उलटे पांव लौट गया । उसकी चिंघाड़ और गर्ज ऐसी बलपूर्ण थी कि ग्राम वाले जो मुझे मिले थे, दूरसे उसका शोर सुनकर लट्ठ ले शिकारी कुत्तों सहित मेरी रक्षार्थ वहां आये । उन्होंने मुझे यह समझानेका परिश्रम किया कि मैं उनकेसाथ चलूँ ।

वे बोले —"इस जंगलमें यदि तुम कुछ भी आगे बढ़ोगे तो तुम्हें बहुत-से संकटों का सामना करना पड़ेगा। पर्वत व वन में बहुत-से भयानक, क्रूर और हिंसक जंगली पशु, अर्थात् रीछ, हाथी, शेर आदि तुम को मिलेंगे।" "मैंने उनसे निवेदन किया कि मेरे कुशलता, मंगलका कुछ भय न करें क्योंकि मैं कुशल, मंगल और रक्षित हूं।"

तब आप घने जंगलों और कण्टकाकीर्ण मार्गोंसे होते हुए एक ऐसे स्थान पर पहुंचे, जहां निकट रहने वाले कुछ लोगोंने स्वामीजीको अपनी झोंपड़ियोंमें ले जाना चाहा, परन्तु आपने स्वीकार नहीं किया 'क्योंकि वे सब मूर्त्ति पूजक थे'। उन भद्रपुरुषोंने स्वामीजीके समीप अग्नि जलवाई और दो मनुष्योंको पहरेपर छोड़ गये। उन्होंने आपका तूम्बा भरकर अपनी बकरियोंका दूध दिया, जिसे पीकर स्वामीजी रात-भर वहां ही घोर निद्रा में सोये और सूर्योदय तक सोते रहे। स्वामीजीने कथन किया— "तत्पश्चात् अपने सन्ध्यादिसे अवकाश प्राप्त करके मैं उठा और यात्राके लिये चला।"

"ऐसे ही नर्मदा तटपर तीन वर्षतक फिरता और अनेक महात्माओंसे सत्संग करता रहा। फलतः नर्मदा-स्रोतसे लौटकर मैं विशेष विद्या-प्राप्तिके अर्थ मथुरा आया।"

१९१७-१९—मथुरा में एक संन्यासी सत्पुरुष मुझे गुरु मिले। उनका नाम विरजानन्द स्वामी हैं।"

(म० दयानन्दजी-स्वरचित जीवन चरित, पृष्ट २३)

थोड़े दिन पूर्वतक हमें केवल इतना ही पता था कि मूलशंकर से नैष्ठिक ब्रह्मचारी शुद्ध-चैतन्य बननेके बाद चौबीस वर्षकी आयुमें आप नर्मदा-तटवासी सुविख्यात विद्वान् स्वामी पूर्णानन्द सरस्वतीजी से संन्यासकी दीक्षा लेकर स्वामी दयानन्द सरस्वती कहलाने लगे और देशाटन, पर्वत यात्रा एवं तपश्चर्याके लिये चल निकले।

हमें इतना भी ज्ञात था कि सम्वत् १९१२ विक्रमी (१८५५ ईस्वी) के कुम्भ मेलेपर भी आप हरिद्वार गये थे और बस।

उन दिनों की कुछ एक महत्वपूर्ण घटनाएँ अब हाल ही में प्रकाशमें आई हैं, जिन्होंने समस्त भ्रमोच्छेदन कर दिये हैं और ऊपर लिखे तीन साल तक आप कहाँ रहे, क्या करते रहे इस रहस्यका स्पष्टतः उद्घाटन हो गया है।

वे घटनाएँ इस प्रकार हैं: —

कुम्भमें सम्मिलित होनेसे पूर्व महर्षि दयानन्द सरस्वती जयपुरसे आबू, अजमेर, मारवाड़ और अलवर आदि स्थानोंसे होते हुए दिल्ली पधारे। सारे मार्गमें, सब स्थानोंपर जन-साधारणके मुखसे आपको क्रान्तिकारी-विचार सुननेमें आते रहे। देहली पहुंचनेपर यमुना-तटपर हरिद्वार जाने वाले कई साधुओंसे आपकी भेंट हुई। निकट खड़े एक छोटे-से बालकने इस साधु-मण्डलीकी ओर संकेत करके घृणा-सी प्रकट करते हुए अपनी मातासे कहा— "माताजी! हमारा देश और धर्म ईसाई-अंग्रेज शासकों एवं ईसाई पादरियों के अत्याचारों और शैतानी कुकृत्योंके कारण डूब रहे हैं और ऐसे लाखों साधु-बाबा केवल पेट-पूजामें ही मस्त हैं। देश और धर्मके बारेमें कुछभी चिन्ता नहीं करते। इनके लिये पेट ही भगवान् है, पेट ही सब कुछ है।" लड़के की बात सुनकर साधु विचलित होकर शाप आदि देने लगे, जिससे वे माँ-बेटा भय-भीत-से हो गये; परन्तु स्वामी दयानन्दजी ने सान्त्वना देते हुए उन्हें कहा—

"बच्चे! तेरी सब बातें यथार्थ हैं। इनसे मेरी तो आँखें खुल गई हैं।"

अधिक पूछ-ताछ करने पर स्वामीजीको पता चला कि इस लड़केके पितामह अलीगढ़के ज़िमींदार साहसी योद्धा दयाराम थे, जो कि १८१६ ईस्वी में अपने हाथरस स्थित दुर्गकी रक्षा करते हुए लार्ड हेस्टिंग्ज़ द्वारा अविराम बम्ब-वर्षणके सम्मुख युद्ध करते-करते वीर-गतिको प्राप्त हुए थे।

हरिद्वार के कुम्भपर जाने-वाली यह साधु-मण्डली लाल किलेके सम्मुख बैठी थी कि अकस्मात् एक महाराष्ट्र-निवासी साधुने आकर कहा—"जाइये, आप हरिद्वारके कुम्भपर स्नान करके पवित्र हो आइये; परन्तु जब तक हमारे देश और धर्मको विदेशी राहुने ग्रस रक्खा है और धीरे-धीरे हमारे सुख, शान्ति, शिक्षा, सभ्यता, संस्कृति, सम्पद, ऐश्वर्य को हज़म किये जा रहा है, जब तक विदेशी ईसाई पादरी हमारे भाई-बहिनोंको धर्म-च्युत करके उन्हें देश-द्रोही बनाये जा रहे हैं और जबतक राहु-केतु-रूप विदेशी सत्ता और विधर्मियों के पञ्जेसे देश और धर्मको पूर्णतः विमुक्त नहीं करा लिया जाता, तब तक हम गंगा-स्नानसे शुद्ध होनेमें विश्वास नहीं रखते।" तत्पश्चात् इस महात्मा की बहुत-सी बातें स्वामी दयानन्दजीके साथ एकान्तमें होती रहीं। महात्मा ने स्वामीजीको यह भी बताया कि "मेरी ही तरह के एक सौ दिग्गज पण्डित, साधु-वेश में साधु-मण्डलियों में देशकी स्वतन्त्रता का प्रचार करते फिर रहे हैं।"

उन दिनों हरिद्वार कुम्भपर जाने वाले यात्री सैंकड़ोंकी संख्यामें इकट्ठे चला करते थे। अंग्रेज़ सरकारके अनेकों गुप्त-चर और यात्रियोंकी रक्षाके बहाने गोरे घुड़-सवार भी साथ-साथ चलते थे। ये गुप्त-चर कभी-कभी यात्रियों के समूहमें भोले-भाले लोगोंके समक्ष अंग्रेज़ोंके अत्याचारोंकी बातें भी चलाया करते थे। सरकारी कर्मचारियोंमेंसे एक व्यक्ति ऐसी बातें सुनते पकड़ा गया। उसकी स्त्री जिसकी गोदमें एक नन्हा-सा बच्चा था, अंग्रेज़ अफ़सरके चरणोंमें गिर कर क्षमा मांगने लगी। उक्त श्वेताङ्ग कर्मचारीने बच्चेको छीनकर गंगाकी उत्ताल तरंगोंमें फेंक दिया। मामताकी-मारी माँ-ने भी पीछे ही छलांग लगा दी और दोनों-माँ-बेटा नदीके तीव्र बहावमें अदृश्य हो गये। यह अमानुषिक कुकृत्य अपनी आँखोंके समक्ष देखकर यात्री-वर्ग बहुत उद्विग्न हुआ और साधु-मण्डलीके मन-मस्तिष्क पर इस दानवी लीलाके पश्चात् ये भाव दढ़ता पूर्वक अङ्कित हो गये कि—

"दुःखिनी, पराधीना भारतमाताकी सेवामें हमको आयुष्कालमें और शक्तिके अनुसार कुछ-न-कुछ अंश ज़रूर समर्पित कर देना चाहिये।"

मार्ग में कहीं-कहीं किसी निरापद स्थानपर जहाँ पर गुप्तचरोंका भय नहीं होता था, यह साधु-मण्डली विचार किया करती थी कि—

"देशकी परिस्थितियोंको देखते हुए गेरुवे कपड़े पहनकर अपनी-अपनी मुक्ति और पारमार्थिक कल्याणके लिये देश-भर घूमना बहुत ही लज्जाकर और ग्लानिकर प्रतीत हो रहा है। परन्तु देश-वासी जन-समुदायको कैसे सचेत और दल-बद्ध किया जाय, यही विचार उनके दिलमें आने लगे।"

इसी यात्राके मध्यमें कुछ साधुओंसे 'भेलोर,* (दक्षिण) और बारिक पुर (बंगाल) के सैनिक विद्रोहोंकी कथाएँ और उन्हें बर्बरता-पूर्ण ढंगसे दमन करनेके समाचार भी स्वामीजीने सुने थे।

---

*भेलोर (दक्षिण) का विद्रोह

देसी सिपाहियोंपर अंग्रेजोंद्वारा किये गये अमानुषिक अत्याचारोंकी करुण-कथाः

गवर्नर जनरल कार्निवालसके बाद अस्थायी रूपसे जार्ज बर्लेने कार्य-भार सम्भाला। उन दिनों लार्ड बैंटिक मद्रासके गवर्नर थे। उनकी अनुमतिसे फ्रैड्रिक नामके सेनापतिने देसी फ़ौजी सिपाहियोंके लिये निम्न सैनिक-आदेश प्रसारित किये— (१) सब फौजियोंको कम्पनी द्वारा दी हुई टोपी पहनना होगी। (इसके ऊपरके भागमें गौका चमड़ा और नीचेके भाग में सूअरका चमड़ा लगा हुआ था) (२) सभीको डाढ़ी, मूंछ और चोटी सफा

(शेष अगले पृष्ठ पर)

श्री स्वामीजी कुम्भकी तिथिसे बहुत दिन पहले ही हरिद्वारमें पहुंच गये थे। अन्य तीर्थ-यात्री भी हज़ारों-लाखोंकी संख्यामें पहुंचने लगे। नगरके प्रत्येक मठ, मन्दिर, अखाड़े और धर्मशालामें बहुत भीड़ हो गई। अतः स्वामीजीने मानव-जमघटसे दूर (नील पर्वत) चण्डी-मन्दिरको अपनी योग-साधनाकेलिये एकान्त अतः उपयोगी स्थान समझकर वहाँ निवास करना अधिक श्रेयस्कर माना; क्योंकि वहाँ सिद्ध-योगी-साधकोंके सत्संग सम्पर्ककी भी अधिक सम्भावना थी। इस उत्तम वातावरणमें स्वामीजी अधिकांश समय साधनामें ही व्यतीत करते थे। चण्डी-स्थानके संन्यासी स्वामी रुद्रानन्दजीने आपको बताया कि भारत-व्यापी प्रजा-जागरण और विप्लव-प्रचेष्टाके नायक-नेता वहाँ (चण्डी पर्वत पर) आने वाले हैं। स्वामी दयानन्दजी बड़ी उत्सुकतासे उन महानुभावोंके शुभागमनकी प्रतीक्षा करने लगे।

तीन दिनके पश्चात् ही पाँच अज्ञात सज्जन वहाँ पधारे और पूछने लगे- "आबू-शैलसे आने वाले महात्मा स्वामी दयानन्दजी कहाँ हैं? हमें उनके दर्शन करना अभीष्ट है।"

साक्षात् होने पर स्वामीजीने उनका हार्दिक स्वागत करते हुए नवागन्तुक महानुभावोंका परिचय पूछा। इसपर उन्हें बताया गया कि वे थे— (१) द्वितीय बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र धुन्धुपन्थ (नाना साहिब) (२) श्री

करा देना होगी। (३) मस्तकपर तिलक लगाना, कन्धेपर जनेऊ धारण करना या गलेमें माला अथवा तस्बीह पहिनना निषिद्ध होगा। (४)विश्राम के समयके आगे-पीछे कोई हिन्दु सिपाही सन्ध्या और मुसलमान नमाज़ नहीं पढ़ सकेगा, यहाँ तक कि परमात्माका या खुदाका नाम भी उच्चारण नहीं करस केगा।

सब देसी सिपाहियोंने इन आदेशोंको अपने धर्म, ईमान, जाति और सभ्यतापर भारी आघात समझा। सबसे पहले भेलोरके सिपाहियोंने विद्रोहकी घोषणा करनेके साथ ही ११३ गोरे सिपाहियों और दो अन्य फौजी कर्मचारियोंकी हत्या कर डाली। इस विद्रोहका दमन करनेके लिये अर्काटसे विशाल-वाहिनी बुलाना पड़ी। विप्लवी वीरोंको हथ-कड़ियाँ लगाकर दो दिन तक भूखे-नंगे रक्खा गया। तीसरे दिन विद्रोहियोंके नेताओंके जीवित शरीरोंपरसे खाल खींचली गई और चर्म-हीन मृत-देहोंको ठेलेमें डालकर छावनीभरमें उनका जलूस निकाला गया। शेष विद्रोहियों को मारशल-लॉ अधिनियमोंके अधीन दोषी घोषित करके गोलियोंसे भून डाला गया। इस प्रकारके अमानुषिक अत्याचारोंद्वारा भेलोरके विद्रोहको दबाया गया।

(शेष पृष्ट अगले पर)

बाला साहिब श्री नानासाहिबके सम्बन्धी (३) श्री अज़ीमुल्ला खाँ, (४) श्री तात्या टोपे, और (५) जगदीशपुर के ज़िमींदार श्री बाबू कुंवर सिंह।

शिष्टाचार और कुशल-प्रश्नानन्तर स्वामी दयानन्दजी तथा उक्त महानुभावोंका परस्पर निम्न-लिखित वार्त्तालाप हुआ—

(१) श्री नाना-साहिब—"महात्माजी! विदेशी और विधर्मी अंग्रेज़ आकर हमारे देश और धर्म को ग्रास कर रहे हैं। इन्हें कैसे रोका जाय? आपकी इस विषयमें क्या सम्मति है?"

स्वामी जी—"किसी विदेशी राजाको किसी भी विदेशपर हकूमत चलानेका हक नहीं है। अंग्रेजों की समृद्धि भारतके शोषणपर ही निर्भर है। भारतीय जन-समूह असभ्य नहीं है और इंगलैंड-वासी अधिक सभ्य नहीं हैं। वे तो हिंस्र-पशुओंकी भांति हमपर ज़बरदस्ती शासन चला रहे हैं। भारतको पद-दलित करना उनके लिए पाप है और उस अत्याचारको सहन करते चले जाना हमारे लिये घोर अपराध है, वज्र पाप है।"

(२) श्री बालासाहिब—"महाराज! हममें क्या दोष है, जिसके कारण हमारी यह दुर्दशा हो रही है?

बारिकपुर (बंगाल) का सिपाही विद्रोह

लगभग सन् १८२१-२२ में देसी सिपाहियोंको समुद्र-पार ब्रह्मामें जाकर लड़नेका आदेश दिया गया। इससे धर्म-भीरु उन सिपाहियों-के हृदयोंमें विक्षोभ उत्पन्न होना स्वाभीविकही था। समुद्र-यात्रासे उन्हें धर्म-भ्रष्ट होने और जाति-बहिष्कृत किये जानेका भय होने लगा। दो सौ सिपाहियोंने अपने अफ़सरोंकी सेवा में प्रार्थना की कि "अपनी धर्म रक्षा, जाति-रक्षा एवं आचार-रक्षाके लिये हम समुद्र-यात्रा करनेमें असमर्थ हैं, अतः उक्त आदेशको वापस लेने की कृपा की जाय।" परन्तु सामरिक-आदेशानुसार उन सभी प्रार्थियों को हथ-कड़ियाँ लगाकर खड़ा किया गया और गोरे फ़ौजियोंने उन सबको गोलियोंसे उड़ा दिया। मृत-देहोंको पूरे सप्ताहके लिये प्रदर्शिनीके रूपमें गंगा-तटपर रक्खे रक्खा। मृतकोंके इष्ट-मित्र, जो लाशोंको पहचानकर ले जानेके विचारसे वहाँ आते थे, ज़रा-सी विलम्ब करने-पर उनपर भी गोली-वर्षण होने लगता था, जिससे उनमेंसे भी कई व्यक्ति क्षत-विक्षत और हताहत होते थे। लाशें खुले आकाशमें डाल रक्खी थीं, अतः वन्य-हिंस्र-पशु और मांसाहारी पक्षियोंने सारा मांस तो नोच डाला था, केवल नर-कंकाल ही शेष पडे रह गये थे। इन्हें भी बादमें गंगामें फिकवा दिया गया था।

स्वामी जी—"भाईसे भाईका विरोध ही सर्वनाशका कारण होता है–यथा युधिष्ठिर-दुर्योधन, पृथ्वीराज-जयचन्द, प्रतापसिंह-मानसिंह, आदि। इसी प्रकार मुग़लों और मराठोंकी परस्पर कलहका लाभ उठाकर अंग्रेज़ यहां जम गया है। यह अनैकता और परस्पर विरोध ही हमारा सबसे बड़ा दोष है।"

(३) श्री अज़ीमुल्ला खां—"स्वामी जी! भारतके व्यापक प्रजा-विद्रोह-के सम्बन्धमें आपकी क्या सम्मति है?"

स्वामी जी—"इस विद्रोहमें धनी-निर्धन, राजा-रंक, कृषक-प्रजा, शिक्षित-अशिक्षित—सबकोई—सम्मिलित हो रहे हैं। धर्मकी भित्तीपर यह आन्दोलन जब तक रहेगा, जब तक स्त्रियों और बच्चोंपर आघात नहीं होगा, तब तक इसे सफलता मिलती रहेगी। यदि पेशवा या दिल्लीके बादशाहको ही भारतका सम्राट बनानेकी इच्छा होगी तो यह जन-जागरण व्यर्थ हो जायेगा।

"मेरा विचार है कि **पंजाबका सिक्ख सम्प्रदाय इस पेशवा परिचालित आन्दोलन में बाधा डालेगा, क्योंकि अंग्रेज-अफ़ग़ान युद्ध में पेशवाने अंग्रेज़-को पांच लाख रुपये ऋण और अंग्रेज़-सिक्ख युद्धमें अंग्रेज़के पक्षको दृढ़ करनेके लिए एक हज़ार पैदल और एक हज़ार घुड़-सवार सैनिक दिये थे। नेपाल-अंग्रेज़ युद्ध में भारतने नेपालको कोई सहायता नहीं दी थी। हमारे इस व्यवहारको इतनी जल्दी न सिक्ख भूल सकेंगे और न नेपाली (गोरखे)।** तथापि इस जन-जागरणके परिणाम शुभ ही होंगे। प्लासी युद्ध (१७५७ ई०) के एक सौ वर्ष बाद यह गण-युद्ध होने जा रहा है। फिर **भविष्यमें एक सौ वर्ष तक यह युद्ध निरन्तर चालू रहेगा।** यद्यपि अगणित आहुतियां इस स्वातन्त्र्य-युद्धमें देनी होंगी; परन्तु **अन्तमें अवश्य हमें पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति हो जायेगी और हम विश्वभरमें अपने गौरव को स्थापित कर सकेंगे।**"

(४) श्री तात्या टोपे—"पूजार्ह महात्मन्! जिस गण-युद्धका आभास आपको अपनी दूर-दर्शिता से हो पाया है, उसके कारणोंके सम्बन्धमें आपकी क्या धारणा है?"

स्वामी जी—"इस गण-युद्ध के निम्न कारण हैं—

(१) "**धर्म-नीतिक**—गौराङ्ग पादरी अनपढ़ हिन्दु-मुसलमानोंको नरक-से बचानेका प्रलोभन देकर, निर्धनोंको आर्थिक जाल में फांसकर, किन्हींको पद-लोलुप बनाकर, अथवा हिन्दु-मुसलमान धर्मोंकी कटु आलोचना करके

तथा निन्दा करके भोले-भाले भारतीयोंको ईसाई बनाये जा रहे हैं, **जिससे धर्मच्युत लोग देश-द्रोही बन जाते हैं।**

(२) "**समाज नीतिक**—लगभग एक सौ वर्षोंसे अंग्रेज़ोंका व्यवसायियों, राज-कमचारियों और धर्म प्रचारकोंके रूपमें हमारे साथ सम्पर्क बनता चला आ रहा है। वे हमारे साथ घुलते-मिलते नहीं, प्रत्युत हमें शासित समझकर हमारी छायासे भी अलग रहनेका यत्न करते हैं। घृणा-के कारण हमें, 'नेटिव', 'नीग्रो', 'काले', 'ईडियट', 'ब्लडी-फूल', 'बैस्टर्ड', 'बिच्च' आदि शब्दों से सम्बोधित करते हैं। इनकी दृष्टिमें बड़ौदाके गायकवाड़ और हैदराबादके निज़ाम भी "नेटिव-प्रिंस" हैं। उनके लिये भारत-के सब कोई, सब कुछ घृणाका पात्र है और घृणा की वस्तु है। भारतीय जन-साधारणके अन्दर प्रबल-विद्रोहका भाव इस परस्पर व्यवधान के कारण ही हुआ है।

(३) "**राजनीतिक**—अंग्रेजोंने राज्य-विस्तार नीतिका अवलम्बन करके पंजाब और ब्रह्म-देशपर कब्ज़ा कर लिया है। सितारा, सम्बलपुर, झांसी, उदयपुर, नागपुर और करौली आदि राज्योंपर स्वत्व-विलोप नीति-से अधिकार जमा लिया है। कई राज-परिवारोंको भत्ता देनेका आश्वासन देकर उसे बन्द कर दिया है। इस प्रकारकी दस्यु-वृत्तियों, प्रतिश्रुत भंगों एवं अत्याचारोंके कारण जन-साधारणका मन विषाक्त तथा हिंसा परायण हो गया है।

(४) "**अर्थनीतिक**—गत् एक सौ वर्षोंमें देशकी अपार धन-सम्पत्ति इंगलैंड भेज दी गई है, यन्त्र-उद्योगको आरम्भ करके कुटीर-शिल्पका ध्वंस कर दिया गया है, इस आर्थिक लूटके फलस्वरूप अन्नाभाव और दुर्भिक्ष आदि बार-बार आने लगे हैं, विविध प्रकारके उचित-अनुचित ढंगों से लोगोंका नाकमें दम कर रक्खा है, अन्न तथा वस्त्राभावके कारण प्रजा-का विद्रोह निकट आ गया है।

(५) "**युद्धनीतिक**—अनपढ़ जन-साधारणको शिक्षा-दीक्षासे वंचित रखकर वेतनके प्रलोभनसे फ़ौजमें भर्त्ती करके जहां चाहे लड़ने-मरनेको भेज दिया जाता है। अंग्रेज़ अफ़सरोंका व्यवहार इन भारतीय रंगरूटोंके-साथ अमानुषिक ही कहा जा सकता है। अंग्रेज़ सिपाही भारतीय योद्धाकी अपेक्षा कई गुणा अधिक वेतन-भत्ता प्राप्त करता है। ज़रा-ज़रासी बातपर देसी सिपाहियोंको कोर्ट-मार्शल द्वारा दण्डित करके गोलियोंसे भून दिया जाता है।

(६) "**प्रत्यक्ष**—भारतीय जातिके साथ जो अमानुषिक व्यवहार किया जाता है वह एकदम असह्य हो उठा है। यह भी भावी विप्लवका एक कारण प्रतीत होता है।"

(५) श्री बाबू कुंवर सिंहजी—"स्वामिन् ! युद्धोंमें जय और पराजय अनिश्चित होती है। कृपया यह बताइये कि हमारा यह जन-जागरण अथवा गण-युद्ध सफल होगा अथवा विफल ?"

स्वामी जी—"**स्वतन्त्रता युद्ध कभी विफल नहीं होता**। भारत धीरे-धीरे एक सौ वर्षके अन्दर पूरा परतन्त्र बन गया है। इसे स्वतन्त्र बनाने में और सौ वर्ष बीत जायेगा। भारत पूर्ण स्वतन्त्र बनकर फिर जगत्पर अपने गौरवको प्रकाशित करेगा। इस स्वतन्त्रता प्राप्तिमें बहुत-से अमूल्य जीवनोंकी आहुतियां डाली जायेंगी।"

स्वामी जी ने पुनः कहा—"यहां कुम्भके मेले पर हरिद्वार आनेका मुख्य उद्देश्य तो योग-सिद्ध साधकोंका संधान करना है। अखाड़ों और भेषोंके लाखों-लाखों साधुओंको जो निर्जन वनों, हिमाच्छादित पर्वत-शिखरों और गहरी गुफाओं में तपस्या-रत जीवन व्यतीत कर रहे हैं, उनके साथ सम्पर्क स्थापित करके, उनका संगठन करना है। इसी उद्देश्यसे मैं अब हरिद्वारसे मानसरोवर, कैलाश और तिब्बत आदिकी ओर जाऊँगा, ताकि उन महात्माओंको देश-सेवाके लिये सुझाव-सम्मति-प्रेरणा दे सकूं। यदि इस लक्ष्यको छोड़ दूं तो **आज सीधा ही आपके साथ प्रजा-विद्रोहमें सहर्ष सम्मिलित हो सकता हूं**।"

जन-विद्रोहके उपरिलिखित पांचों करण-धारों ने स्वामीजीके ओजस्वी भाषण और दूर-दर्शिता-पूर्ण सुझावोंको सुना और उन्हें अपने साधुसंगठनके आवश्यक कार्यमें संलग्न रहनेका अनुरोध किया, साथ ही कहा—"महाराज ! प्रजा-विद्रोहके कार्यमें पेशावरसे कलकत्ता और मेरठसे कर्णाटकतक सहस्रों भारतीय लोग नियुक्त हो चुके हैं। परन्तु साधु-संगठनका कार्य अभीतक अछूता ही पड़ा है। आप कृपया इसे पूर्णतः सफल कीजिये।

श्री अज़ीमुल्ला खांके पूछनेपर 'कि यह हमारे प्रजा विद्रोहकीवाणी, सामरिक तथा असामरिक, जनतामें द्रुत-गतिसे कैसे पहुंच सकती है ? स्वामी जीने इस सम्बन्धमें बहुत प्राचीन सनातन पद्धतिका उल्लेख करते हुए कहा–"सामरिक जनतामें प्रचारके लिये "कमल-पुष्प" और असामरिक जनताके लिये "चपाती" का व्यवहार किया जाता रहा हैं। उदाहरणतः– एक सिपाही-के हाथमें कमल-पुष्प देनेके साथ विप्लवकी निश्चित तिथि बोल दी जाय तो निःशब्द रूपसे प्रचार भी होता चला जाता है और पुष्प भी चलता-चलता

अन्तिम सैनिकतक पहुंच जाता है। इसी प्रकार असामरिक जनतामें कार्य करनेके लिए किसी ग्राममें प्रविष्ट होकर 'चपाती' किसी व्यक्तिको देते समय विप्लवकी निश्चित तिथि बोल दी जाती है। वह व्यक्ति उस 'चपाती'-का थोड़ा-सा टुकड़ा तोड़कर आगे चलता रहता है। जब वह 'चपाती' टुकड़े-टुकड़े होकर समाप्त हो जाय तो दूसरी 'चपाती' व्यवहारमें लाई जाती है। इसी प्रकार 'चपाती' के टुकड़े आगेसे आगे बांटते जानेसे और साथ ही साथ विप्लवकी तारीख बताते जानेसे कुछ ही समयमें देश-भरमें यह विप्लव-सन्देश पहुंचाया जा सकेगा और किसीको खबर भी नहीं होने पायेगी।"

तत्पश्चात् इसी पद्धतिका अनुसरण करके क्रान्तिके नेताओं द्वारा समस्त देशमें गुप्त रूपसे क्रान्तिका समाचार पहुंचाया गया था।

पांचों नेताओंने स्वामीजीको प्रणाम किया और चलते समय श्रीमन्त नाना साहिबने स्वामीजीको हिमालय-यात्राके अनन्तर कानपुर (बिठूर) में आनेका अनुरोध किया, जिसे स्वामीजीने सहर्ष स्वीकार किया।

"सन् १८५६ मई मासमें वह (स्वामी दयानन्द सरस्वती) नाना साहब-के घर कानपुर गये और पांच मासतक कानपुर, इलाहाबादके बीच ही चक्कर काटते रहे······।" (१८५७ और स्वामी दयानन्द, पृष्ठ १४)

इसी कुम्भके अवसरपर श्री स्वामीजीने बद्रीनारायण स्थित ज्योतिर्मठ, दक्षिण-भारत (कन्या कुमारी) स्थित शृङ्गेरीमठ, पश्चिम में द्वारावती स्थित शारदामठ और पूर्व भारतके पुरुषोत्तम-क्षेत्र (जगन्नाथ पुरी) स्थित गोवर्द्धनमठके चारों शंकराचार्योंसे भेंट करके उन्हें कम-से-कम एक हज़ार संन्यासियोंके संगठनका सुझाव दिया, ताकि वेद-धर्मका प्रचार उच्च सामाजिक उद्देश्योंका विस्तार तथा स्वदेशका विदेशियोंसे निस्तार एवं उद्धार किया जा सके। परन्तु खेद कि उन महानुभावोंने नकार करते हुए कहा—"हम ब्रह्मवादी संन्यासी हैं, अद्वैतवादी हैं, हमारे लिये ब्रह्म ही एक-मात्र सत्य है। राष्ट्र, समाज, परिवार, जीवन, जगत् और यह सब स्वतन्त्रता, परतन्त्रता, धर्माधर्म, हम-तुम-भाव सब कुछ झूठ है। झूठके लिए हम कुछ करना व्यर्थ समझते हैं।"

स्वामी जी ने उन्हें कहा—"दुःखकी बात है कि आपके भोजनके लिये अन्न, पीनेके लिये पानी, रहनेके लिये स्थान, सरदीके लिये कम्बल, हवा-

के लिये पंखा, सेवाके लिये शिष्य ही एक-मात्र सत्य देखे जाते हैं, बादमें सब कुछ मिथ्या मालूम पड़ते हैं।"

स्वामीजीका प्रचार अभियान—

महर्षि दयानन्द निरन्तर प्रातः तथा मध्याह्न कालमें व्याख्यान देते थे। विरोधी आपके विरुद्ध ज़ोर-ज़ोर से प्रचार करने लगे। परिणामतः स्वामीजीके श्रोताओंकी संख्या-वृद्धि होने लगी। हर प्रकारके अच्छे-बुरे, पठित-अपठित, साधु-संन्यासी-गृहस्थी उनके व्याख्यानोंमें भारी-संख्यामें आने लगे। स्वामीजी स्वदेश और स्वधर्म-रक्षा सम्बन्धी उपदेश दिया करते थे। श्रद्धालु जनता नत-मस्तक हो प्रणाम करती और भेंटमें पैसे भी चढ़ाने लगी। स्वामी जी बहुतेरा इन्कार करते, परन्तु लोग नहीं मानते थे।

राजा गोविन्दनाथ रायका आगमन—

उत्तरीय बंगालमें नाटौरकी प्रसिद्ध रानी भवानी हो गुज़री है। नवाब सिराजुद्दौला के समय तक भी वह देवी आधे बंगालकी शासनकर्त्री थी। राजा गोविन्दनाथ राय उनके वंशज थे। अंग्रेज़ोंने धीरे-धीरे उनका सारा-राज्य हड़प लिया था। अब राजा साहब एक साधारण ज़िमींदार रह गये थे। आप भी इस कुम्भपर स्नानार्थ पधारे थे। आपने चण्डीपर्वतपर श्री स्वामी जी से योग सम्बन्धी उपदेश प्राप्त करनेकी अभिलाषा व्यक्त की थी। स्वामीजीने उपयोगी बातें बता दी थीं। चलते समय राजा साहबने ११०१ रुपये श्री चरणोंमें भेंट रूपमें प्रस्तुत किये। स्वामीजीने बहुतेरा कहा कि "मुझे इस धनकी आवश्यकता ही नहीं", परन्तु वह नहीं माने और सादर नमस्कार करके स्वस्थानको चले गये।

झांसीकी रानी लक्ष्मीबाईका आगमन—

दो-ही-तीन दिन बाद झांसीकी रानी लक्ष्मीबाई अपनी सपत्नी राणी गंगाबाई और तीन कर्मचारियों समेत स्वामीजीके पास आईं और नमस्कार करके बैठ गईं। स्वामीजीने उनका परिचय पूछा। इस पर अश्रु-पूर्ण नयनोंसे रानीजीने ओजपूर्ण भाषामें कहा—

"महाराज! मैं एक निस्सन्ताना विधवा हूं। इसी बहानेसे अंग्रेज़ोंने मेरे झांसीके राज्यपर अधिकार जमा लेनेकी घोषणा कर दी है। सुननेमें आया है कि एक विशाल-वाहिनी लेकर अंग्रेज़ मेरी झांसीपर चढ़ाई करने वाला है। परन्तु महात्मन्! मैं जीवित रहती हुई अपने श्वसुर-कुलका

राज्य उन्हें हड़पने नहीं दूंगी। स्वदेशके लिये लड़कर मर जाना ही मैं अपने लिये श्रेयस्कर समझती हूं। मेरे लिये यही कल्याणकारी मार्ग है। आप आशीर्वाद दें कि मैं वीराङ्गनाओंकी भांति लड़ती-लड़ती स्वदेशपर बलिदान हो जाऊँ।"

लगभग बीस वर्षकी इस वीर रमणीके मुखसे ऐसे उद्‌गार सुनकर स्वामीजीने प्रसन्न होकर कहा—"देवी! यह शरीर क्षण-भंगुर है और नाशवान् है। यह सदैव नहीं रह सकता। धन्य हैं वे व्यक्ति जो धर्मपर इसे न्यौछावर कर देते हैं। वे वास्तवमें मरते नहीं, अमर हो जाते हैं।"

उक्त रानीने भी एक हज़ार एक रुपये स्वामीजीकी भेंट किये। स्वामीजीने इन्हें भी समझाया कि 'हमें रुपयों की आवश्यकता नहीं'। परन्तु वे भी नहीं मानीं और नमस्कार करके चली गईं।

नाना साहब आदि क्रान्ति-दूतों का पुनरागमन—

रानी झांसी लक्ष्मीबाईके सात-आठ दिन बाद नानासाहब तीन अन्य अपरिचित व्यक्तियों सहित पुनः स्वामीजीके दर्शनार्थ पधारे और कहने लगे—"स्वामी जी! हम लोग सारे भारतवर्षमें फैल जायेंगे और शीघ्र ही निर्दिष्ट तिथिपर, चुने हुए स्थानोंपर विद्रोह आरम्भ कर देंगे। आजकल संगठनके कामोंमें पूर्ण रूपेण व्यस्त हैं। आपका आशीर्वाद प्राप्त करनेके उद्‌देश्यसे श्री सेवामें उपस्थित हुए हैं। हम आपको यथा साध्य समाचारोंकी सूचना देते रहेंगे।"

आशीर्वाद प्रदान करनेके साथ स्वामीजीने राजा गोबिन्दनाथ राय वाले ११०१ रुपये, राणी झांसी वाले १००१ रुपये तथा जन-साधारणसे भेंट रूपमें प्राप्त ५३३ रुपये, कुल २६३५ रुपये स्वदेश रक्षार्थ नानासाहब के हाथमें थमा दिये और साथ ही कहा—"जन-साधारणका नेतृत्व करना और आग लेकर खेलना—दोनों ही—खतरनाक हैं। मामूली-सी भूलसे भी सत्यानाश ही हो जाता है। मेरे पास जो भी रुपया आयेगा, स्वदेश रक्षार्थ आपकी भेंट कर दिया करूंगा।"

साधु-सन्तों में क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार—

नानासाहब, राणी झांसी और नाना साहबके साथियोंके चले जानेके बाद साधु-समाजके सैंकड़ों व्यक्ति स्वामीजीके आवास चण्डीपर्वतपर आने और शंका समाधान करने लगे। स्वामीजीने उन्हें उपदेश दिया—"आप लोग अपने-अपने सम्प्रदायके अन्तर्गत रहते हुए जन-साधारणको

स्वधर्म तथा स्वदेश-रक्षाके लिये तैयार कीजिये। अहिन्दु नर-नारियों तथा कतिपय विदेशी ईसाई पादरियोंकी धोखा-बाजी से और मौलवियोंके हथ-कण्डोंके प्रभावसे धर्म और जातिको बचाइये। इन्हें समझाइये कि धर्मरक्षा और जाति-कल्याणके लिये जीवन दे देना परम पुण्यका काम है। जगह-जगह धर्म प्रचारार्थ दृढ़ केन्द्र स्थापित कीजिये और उनके आधीन ही संगठित हो जाइये। स्वदेश हमारी माता और स्वधर्म हमारे पिता हैं। दोनोंकी रक्षार्थ तत्पर रहिये और स्वेच्छापूर्वक जो साधु लोग इस व्रतको धारण करें, उनकी तालिका बनाते रहिये।"

साधु बोले—"भगवन् ! आपसे प्रेरणा पाते ही हमने अढ़ाईसौ साधुओं-की तालिका बना रखी है। आपके आदेशानुसार स्वदेश रक्षाके लिये वे सब तैयार रहेंगे।"

स्वामी जी आनन्द विभोर होकर कहने लगे—"महात्माओ ! आपके इस पुण्य-कार्यसे मेरा हृदय गद्-गद् प्रसन्न हो गया है। अतः पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण, देश-भरमें जितनी छावनियां हैं उनमें सुविधापूर्वक फैल जाइये और 'कमल-पुष्प' की पद्धतिसे सैनिकोंमें और 'चपाती' वितरणकी प्राचीन रीतिसे साधारण नागरिकोंमें स्वदेश और स्वधर्मकी रक्षाके लिये जागृति उत्पन्न कर दीजिये।"

स्वामी जी ने यह भी संकेत कर दिया था कि—"उत्तर भारतमें मेरठ-की ओर, पूर्व भारतमें बारिकपुरकी तर्फ और दक्षिण भारतमें भेलौर-की दिशामें अवश्य जाना चाहिये। यह अवश्य याद रखिये कि देहलीके योगमाया मन्दिरके महन्त त्रिशूल बाबाके साथ आप सदा सम्पर्क बनाये रखें। वहांसे आप लोगोंको विश्वस्त समाचार मिलते रहा करेंगे और उसी माध्यमसे आप लोगोंकी गति-विधियोंकी सूचना हमें प्राप्त होती रहेगी।" साधुओंने स्वामीजीकी सब बातें स्वीकार कर लीं और स्व-स्थानोंको चले गये।

कुम्भ स्नानार्थ यात्रा करने वाला साधु-समुदाय हरिद्वार पहुंच चुका हुआ था। कुम्भका मुहूर्त आनेपर उन्होंने ब्रह्मकुण्डमें प्रचलित रीत्यनुसार डुबकियां लगाकर अपने-आपको कृतकृत्य समझ लिया था।

महर्षि उच्च शिक्षा प्राप्ति के अभिलाषी—

कुम्भके समारोहसे निवृत्त होकर स्वामी दयानन्दजी सरस्वती उच्च-शिक्षा प्राप्तिकी अभिलाषा मनमें धारण करके 'कनखल' (हरिद्वार)

निवासी परम संस्कृतज्ञ महात्मा स्वामी सम्पूर्णानन्दजीकी सेवामें उपस्थित हुए। शिष्टाचार तथा परस्पर कुशल-प्रश्नानन्तर जब स्वामी दयानन्दजीने अपनी उपस्थितिका उद्‌देश्य वर्णन किया तो वयोवृद्ध आचार्य ने कहा—

"दयानन्द जी! मैं अब एक सौ आठ (१०८) वर्षका हो जानेके कारण अध्यापनका कार्य छोड़ बैठा हूँ। हमारे शिष्य प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द मथुरामें अध्यापनका कार्य करते हैं। वहां आपका अभीष्ट मनोरथ पूर्ण हो सकेगा। मेरे जीवनका लक्ष्य तो अब भारतको परतन्त्रताकी बेड़ियोंसे मुक्त करनेके प्रयत्नोंमें पूर्ण सहयोग देना है।"

तत्पश्चात् उक्त वृद्ध सन्तने अंग्रेजोंके भारतमें प्रवेशसे लेकर अन्ततककी सम्पूर्ण गाथा कह सुनाई। अंग्रेजोंके अत्याचारों और भारतीय दुर्दशाका चित्र परमहंस विद्वान् संन्यासीने कुछ इस ढंगसे खींचा कि स्वामी दयानन्दका मन द्रवित हो उठा। परन्तु आप तत्काल कोई निश्चय न कर सके।

स्वामी दयानन्द वहांसे विदा होकर उत्तराखण्डकी ओर चल दिये। सम्वत् १९१२ (ईस्वी १८५५) आपने काशीपुर होते हुए द्रोणसागरमें व्यतीत किया। वहांसे उतरते हुए उन्हें विदेशीय शासनसे भारतीय दुर्गतिके पारदर्शी *महात्मा सम्पूर्णानन्दजीका स्मरण हो आया जिनसे वे एक वर्ष पूर्व कुम्भके मेलेपर मिल चुके थे। वे सीधे उनके चरणोंमें कनखल पहुंचे। शिष्टाचार के उपरांत राष्ट्रोत्थान सम्बन्धी बातचीत आरम्भ हो गई। वृद्ध संन्यासी ने कहा—

"वत्स! भारत देशसे विदेशी शासनको उखाड़ फैंकनेके लिये नर्मदा तटपर सन्त-वर्ग एक रूप-रेखा तैयार कर रहा है। वह सर्वथा गुप्त है। समस्त देशमें निश्चित तिथिको उसका विस्फोटन होगा। विरजानन्द जी पहले ही मथुरामें ऐसे स्थानपर जा बैठे हैं, जो रजवाड़ोंके निकटवर्ती है। वे वहाँ इस दिशामें अपना रंग दिखानेके लिये राजाओंसे सम्पर्क स्थापित किए हुए हैं। मुरसान, हाथरसके भूमिपति, भरतपुर, अलवर, करौली, जयपुर और ग्वालियरके नरेन्द्र भी उनकी प्रेरणापर अवश्य सहयोग देंगे। पंजाब भी इस कार्यमें एक दशकसे प्रयत्नशील है। इस प्रकार अन्य भारतीय जन अपना बलिदान करनेके लिये तैयार हैं……।"

*"कनखलमें पूर्णाश्रम स्वामी नाम एक ज्ञानापन्न संन्यासी रहते थे। विरजानन्दने पूर्णाश्रमसे षड्‌लिंगादि पढ़ा……पूर्णाश्रम के पास पाठ समाप्त करके वह गया।" (देवेन्द्रबाबू लिखित दयानन्द चरित्र, पृष्ठ ११५)

महर्षि दयानन्दने इस आमूल-बद्ध सज्जाको भारतका सौभाग्य समझा और सहर्ष निवेदन किया था—

"भगवन् ! ऐसी स्थितिमें मेरा योगदान भी नर्मदा तट संगठनमें ही श्रेयान् रहेगा। इस क्रान्तिमें मेरा स्वामी विरजानन्दजीसे विद्याध्ययन दुष्कर है।"

तत्पश्चात् उक्त वरिष्ठ महात्मासे आशीर्वाद लेकर—

"स्वतन्त्रताकांक्षी स्वामी दयानन्दने अपना मुख नर्मदा नदीकी ओर कर दिया। इस समय इस क्रांतिमें डेढ़ वर्ष शेष था। अतः आप इसी कार्य-क्रमके अनुसार चलते हुए, मुरादाबाद, सम्भल, होकर गढ़मुक्तेश्वर पहुंचे।" (१८५७ और स्वामी दयानन्द, पृष्ठ १३)

अश्वारोही खड्गधारी स्वामी दयानन्द—

१. स्वामी दयानन्द १८५७ के स्वतन्त्रता संग्रामके अधिनायकही नहीं वरन् योद्धा भी थे। श्री स्वामीजी उन दिनों एक अपने जैसे बलिष्ठ ब्रह्मचारीके साथ श्वेत घोड़ेपर सवार रहते थे। और तलवार हाथमें रहती थी। यह बात हमें सर्वखाप पंचायतके प्रधानके भ्राताजीसे विदित हुई। घुड़-सवार स्वामीजीने बताया था कि "पीछे अंग्रेज़ सिपाही आ रहे हैं, कहीं छुप जावो वरना मार दिये जाओगे।"

२. "पुनः मिलनेपर उस व्यक्तिने ग़दरकी बात पूछी; पर ऋषिने बताया, हम सब बातें बता नहीं सकते, नहीं तो फांसीके तख्तेपर लटका दिये जायेंगे।"

(सार्वदेशिक ३१-१-७१ में श्री स्वामी दर्शनानन्द जी एलम निवासी)

३. "......कुछ दूर पहुंचनेपर श्वेत वस्त्रोंमें दो मानव, जिनके विशाल शरीर थे, और जिन दोनोंमेंसे एकका गोल मुख और बलिष्ठ देह थी, श्वेत घोड़ोंपर सवार मिले। कहने लगे—

"तुम समय पाकर गाड़ियां छोड़कर भाग जाओ। आगे बचनेकी आशा नहीं है।"

यह कहानी भलौठ जिला रोहतकके चौधरी शेरसिंहके दादा नान्हें राम-से सम्बन्ध रखती है, जो कि आर्य समाज भलौठके प्रधान उक्त चौधरी शेरसिंह ने बताई। पण्डित बस्तीरामने महर्षि दयानन्दको कई बार देखा था। उनका कथन है कि दो अश्वारोहियोंमेंसे गोल मुख वाले **महर्षि दयानन्द थे।"** (१८५७ और स्वामी दयानन्द, पृष्ठ १५-१६)

विप्लव का अन्तिम चरण—

स्वामी दयानन्द सरस्वती स्वातन्त्र्य-संग्रामकी गति-विधियोंको निहारते, समय-समयपर सबको यथोचित परामर्श देते, सारे देशकी पद-यात्रा करते धनुषकोटि से कन्याकुमारीतक जा पहुंचे ; यहां रामेश्वरके विशाल मन्दिर-में ठहरे । इस रमणीक स्थानपर पूर्वका बंग-उपसागर, पश्चिमका अरब सागर और दक्षिणका हिन्द महासागर—तीनों—मिलते हैं । बहुत दिनों से स्वामीजीको योगमाया मन्दिरके महन्त श्री त्रिशूल बाबाकी ओरसे विप्लव सम्बन्धी कोई विश्वस्त समाचार प्राप्त नहीं हो पा रहा था। यद्यपि आपको यह पता चल गया था कि पूरा संगठन न होनेके कारण और अचानक तथा विच्छृङ्खल युद्ध आरम्भ होजानेकी वजहसे, जोकि प्रायः बरहामपुर, बैरिकपुर तथा मेरठ आदि स्थानोंमें फैल गया था, इसमें पराजय आ गया है । युद्ध विरामके कारण पचास-साठ सहस्र विद्रोही नेपालकी सीमापर अपने प्राण बचानेके लिये इकट्ठे हो गये थे। मगर नेपाल राज श्री जंगबहादुर राणाने कड़ी भाषाका प्रयोग करते हुए आश्रय देने-से साफ़ इन्कार कर दिया था ।* नाना साहिब, तांत्या टोपे आदि कई नेता भी विद्रोहियों के साथ थे । नेपालसे निराश लोग जंगली फल-फूल खाकर अपनी प्राण-रक्षा करनेपर विवश हो गये थे । बहुत-से लोग भूखे मर गये थे; कई हिंस्र पशुओंका शिकार हुए थे । जो पकड़े गये, वे अत्याचारपूर्वक मार दिये गये थे । कुछ भूमिगत होकर बच भी गये । ये सब समाचार किसी-न-किसी प्रकार कन्याकुमारीतक पहुंच गये थे; परन्तु योग माया-मन्दिरके महन्त श्री त्रिशूल बाबाकी ओरसे विश्वस्त समाचारकी प्रतीक्षामें स्वामीजी वहां ही ठहरे रहे ।

नाना साहिब कन्या कुमारी में—

एक दिन स्वामी दयानन्द सरस्वती भारत महासागरकी ओर मुँह किये, आंखें मीचे, ध्यानावस्थित होकर भारतके धर्म और स्वतन्त्रताकी समस्या पर चिन्तन कर रहे थे कि अचानक पीछेकी ओर से किसी ने कहा—

"**हम लोग योग-माया मन्दिरसे आये हैं ।**" स्वामीजीने पीछेकी ओर मुंह फेरकर देखा तो मुण्डित मस्तक, गैरिक परिधान धारे और हाथ-

---

* मौ० अजीमुल्लाखां के प्रश्नके उत्तरमें स्वामीजीने कहा था— "नेपाल-अंग्रेज युद्धमें भारतने नेपालकी कोई सहायता नहीं की थी । हमारे उस व्यवहारको वे (नेपाली) इतनी जल्दी भूल नहीं सकेंगे ? यह बात अक्षरशः ठीक सिद्ध हुई ।

में कमण्डलु थामे, तीन महात्माओंको समक्ष खड़े देखा। इनमेंसे एक तो छत्रपति शिवाजीके सितारा सिंहासनके उत्तराधिकारी नानासाहिब थे। शेष दोनों संन्यासी अपरिचित प्रतीत हुए। परस्पर अभिवादन आदि शिष्टाचारके उपरान्त स्वामीजीने देखा कि तीनों आगन्तुक महानुभाव निरन्तर अश्रु-धारा बहाये जा रहे हैं; परन्तु मुंहसे कुछ भी बोलते नहीं हैं। स्वामीजीने कहा—"महात्माओ! विप्लवकी विफलता और नेपालमें जनता के प्रवेशतक समस्त वृत्तांत मुझे ज्ञात हैं। इसमें हताश अथवा निराश होनेका कोई कारण नहीं है। **स्वतन्त्रता-प्राप्तिकेलिये युद्धमें जय अथवा पराजय दोनों ही लाभदायक हैं। आप लोगोंको भविष्यत्के लिये स्वतन्त्रताका सोपान त्याग, साहस, शूरता और निर्भीकता, स्वतन्त्र भारत की रक्षा के लिये प्रेरणा देंगे।**"

इस पर नाना साहिबने अपने साथी दोनों साधुओंका परिचय देते हुए कहा—"यह हैं तांतिया टोपे और यह दूसरे हैं मेरे साथी दुर्जय राव जी। हम लोग इसी गुप्त वेषमें योग-माया-मन्दिरके महन्त श्री त्रिशूल बाबाके आदेशानुसार, आपको ढूंढते यहां पहुंच गये हैं। ब्रिटिश गुप्तचर हमारे पीछे लगे हुए हैं। न मालूम हम कब धर लिये जायें। आप हमें आशीर्वाद दीजिये कि हम सहर्ष मृत्युका वरण कर सकें और पुनः जन्म धारण करके पराधीन भारतकी दासताकी दृढ़ सांकुलोंको तोड़कर इसे स्वतन्त्र करानेके लिये इह-लोक में दोबारा शीघ्र आ सकें।"

कानपुर की दुर्घटना— नाना साहिबने स्वामीजीको बताया कि 'कानपुर-में एक हज़ार नर-नारियां विपत्तिमें थे' मैं (नाना साहिब) ने उन्हें आश्वासन दे रखा था कि वे स्वेच्छा पूर्वक इलाहाबाद जा सकते हैं। इस समूहमें सैंकड़ों अंग्रेज़ सिपाही ऐसे भी थे, जिन्होंने उससे पिछले ही सप्ताह काशी और प्रयागमें देसी सिपाहियोंके स्त्री-बालकोंपर अमानुषिक अत्याचार किये थे। 'नील' साहिबके दानवी दुष्कृत्योंकी स्मृति ने भी देशी सिपाहियोंको उत्तेजित कर दिया था, जिसके कारण उन्होंने गोलियोंके द्वारा उनमेंसे अधिकांशको मार दिया था। जो लोग बच गये थे उनको भी बन्दी बनवा दिया। विद्रोही प्रजा और सैन्योंपर विजय लाभ करके जब विजयी गोरे सिपाही कानपुरके समीप पहुंच गये तब विद्रोही प्रजाओंने दो सौसे भी अधिक बन्दी महिलाओं और शिशुओं का वध करके निकटस्थ कुओंमें उनके मृत देहोंको फैंक दिया था। जनताके इस प्रकारके हत्या-काण्डके साथ मेरा बिल्कुल सम्बन्ध नहीं था। तथापि आनुसंगिक कारणोंसे मेरा सम्बन्ध था। इस महापाप के प्रायश्चित्त

के लिये मैं अपने देहको प्रज्वलित अग्नि-कुण्डमें आहुतिके रूपमें डाल दूंगा। मैंने ऐसा ही संकल्प कर लिया है।" (सार्वदेशिक ९ नवम्बर १९७०)*

स्वामीजीने नानासाहिबको कहा—"आत्महत्या महापाप है। यह वीरोंका भूषण नहीं, प्रत्युत कायरोंका कुकृत्य है। आपने गुप्त रहनेके लिये गेरुआ वस्त्र धारण किया है। अब सच्चे संन्यासी बन जाइये और भारत-की पश्चिम सीमापर किसी मठ-मन्दिरमें निवास कीजिये। वृक्षोंके मूल, पत्ते, जड़ी-बूटी-वनस्पतियोंसे औषधि निर्माण कीजिये और रोगियोंमें बिना मूल्य बांटिये और साथ ही जनतामें धर्म-प्रचार कीजिये और शांति-पूर्वक शेष जीवन व्यतीत कीजिये। आत्म हत्याका विचार हृदयसे निकल बाहिर कीजिये।"

---

*हरिद्वार के कुम्भ पर मौ० अज़ीमुल्लाने व्यापक प्रजा विद्रोहके सम्बन्धमें स्वामीजीकी सम्मति पूछी थी, तो आपने दैवी भविष्य-वाणी की थी कि 'इस प्रजा-विद्रोहमें धनी-निर्धन, पठित-अपठित, राजा-रङ्क, कृषक-प्रजा, सब कोई सम्मिलित हैं। धर्मकी भित्ती पर जब तक यह आन्दोलन रहेगा तब तक इसका भविष्यत् उज्ज्वल रहेगा। **जब तक स्त्रियों और बच्चों पर आघात नहीं होगा तब तक इसे सफलता मिलती रहेगी**······।' कानपुर में स्त्रीबच्चों पर आघात हुआ और यह महाक्रान्ति-समर विफल हो गया।

नोट—जब स्वातन्त्र्य वीर विनायक दामोदर सावरकर अन्देमनकी जेल-में दो जन्म-कारावासोंका दण्ड भुगत रहे थे, तो एक दिन वहांके सुपरिण्टैंडैंट श्री बारी साहिब अन्य कुछ अंग्रेज़ स्त्री-पुरुषोंको साथ लेकर उन्हें देखने और वार्त्तालाप करनेके उद्देश्यसे उनको कोठरीके फाटकपर आये। बारी साहिब ने कहा—"···आपने १८५७ के इस दुष्ट ग़दरका इतिहास लिखा है···ऐसे दुष्ट लोगोंसे आपके मनमें घृणा क्यों नहीं हुई? कितना उनका पैशाचिक कार्य!···मेरे पिताजी उस बलवेमें थे। वे कहा करते थे **उस अधम नानासाहिबने कानपुरमें खुद अंग्रेजी स्त्रियोंकी बड़ी बुरी हालत की थी। स्त्रियों के मुख में······ऐसे थे वे (नर राक्षस)।"** सावरकरजीने पूछा—"क्या आपके पिताजीने यह कृत्य देखा?" बारी साहिब बोले—"लखनऊमें, जिस कर्नलने यह कृत्य देखा था, उसने मेरे पिताजीको कहा था।" सावरकरजीने उत्तर दिया—"**तो वह झूठा है। कारण, नाना लखनऊमें थे ही नहीं। जब अंग्रेजी स्त्री-पुरुषोंको बन्दीखानेमें डाल दिया गया था, तब नाना थे कानपुर में।**" (सावरकरजीकी पुस्तक 'आजन्म कारावास? पृष्ठ १०६)

(शेष अगले पृष्ठ पर)

स्वामी जी की सब बातें नाना साहिबने स्वीकार कर लीं। चलनेसे पूर्व स्वामीजीने उन्हें संन्यासाश्रममें दीक्षित करके, उनका नाम दिव्यानन्द रख दिया।

शेष दोनों साधुओंने संन्यास लेना स्वीकार नहीं किया। तत्पश्चात् वे दोनों स्वामीजीको प्रणाम करके चले गये।

नर्मदा-तट-निवासी स्वामी पूर्णानन्द सरस्वतीसे संन्यासमें दीक्षित, कनखल (हरिद्वार) में रहनेवाले श्री स्वामी सम्पूर्णानन्द द्वारा क्रांतिके लिये प्रेरित, स्वामी दयानन्दजी सरस्वती तीन वर्षके अदृश्य जीवनके बाद, भारतके प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्रामके नेताओं (१) द्वितीय पेशवा बाजीरावके दत्तक-पुत्र धुन्धुपन्त (नाना साहिब), (२) श्री बाला साहिब, (३) श्री मौलवी अज़ीमुल्ला खां, (४) श्री तांत्या टोपे और (५) जगदीशपुरके बाबू कुंवर सिंह, जो श्री स्वामीजीको कुम्भके अवसर पर चण्डी पर्वतपर एकान्त-में मिलकर गुप्त-गोष्ठिमें रहस्यमय मन्त्रणा करते रहे थे (जैसा कि पूर्वमेव वर्णन किया जा चुका है) के साथ सम्पर्क-सहयोग करने, क्रान्तिकी सम्पूर्ण गतिविधियोंको देखने, अंग्रेज़ों द्वारा किये गये वे दानवी-दुष्कृत्योंका अपनी आंखोंसे निरीक्षण करने और विशाल-विप्लवकी विफलता अनुभव करनेके अनन्तर, कनखल निवासी वयोवृद्ध विद्वान् श्री स्वामी सम्पूर्णानन्दजीने जिन स्वामी विरजानन्दजीके पास मथुरामें अध्ययनार्थ जानेका परामर्श दिया था, उनकी श्री सेवा में पहुंचे।

अंग्रेज स्त्री पुरुषों को किसने क्यों मारा ?—

"......परन्तु जब अंग्रेज़ी सेना कानपुरपर चढ़ आई तब इलाहाबादके इर्द-गिर्दके **सभी देहात आग लगाकर जलाये गये। उनमें जो राष्ट्रीय बलवेमें सम्मिलित थे, उनके बाल बच्चों तथा स्त्रियोंकी होली जलाई गई। एक दो नहीं सैंकड़ों जलकर भस्म हुए।** उन खबरोंके कारण कानपुरके क्रान्तिकारियोंकी सेनामें भयङ्कर क्षोभ जल उठा। इतनेमें जो अंग्रेज़ स्त्रियां युद्ध-बन्दीवान्के नाते कारागारमें थीं, उन्होंने अंग्रेज़ी सेनाको लुक-छिपकर पत्र भेजे थे, जिनमें, क्रान्तिकारियोंकी सेनाकी खबरें थीं। उन पत्र-वाहकों-को पकड़वा दिया गया और चिढ़कर स्त्रियोंको मार डाला गया।"

श्री (जनरल) नील के अत्याचार—

"......नाना की आज्ञाके बिना उनकी सेनाके क्रोधके शिकार बनी प्रत्येक अंग्रेज़ी स्त्री वधके पूर्व ही केवल बन्दवालों में आतङ्क पैदा करने-

(शेष अगले पृष्ठ पर)

यह स्वामी विरजानन्दजी केवल **वेद-शास्त्रमर्मज्ञ और व्याकरणके सूर्य्य ही नहीं थे,** प्रत्युत **प्रचण्ड स्वातन्त्र्य आन्दोलनके जाज्वल्यमान् जागृत ज्वालामुखी भी थे,** देश-वैभवके अद्वितीय प्रचारक थे, राष्ट्रोत्थानके अग्रणीय नेता थे; 'हिन्दुस्तान हिन्दुस्तानियोंकेलिये' मन्त्रके प्रथम द्रष्टा थे। यह तथ्य आगामी पंक्तियोंसे स्पष्ट हो जायगा। रुचि पूर्वक पढ़िये—

स्वामी विरजानन्द द्वारा क्रांतिका उपदेश—

अक्तूबर १९६९ में स्वामी विरजानन्दजीका निर्वाण शताब्दि समारोह, उनके जन्म स्थान कर्त्तारपुर (ज़िला जालन्धर—पञ्जाब) में सोत्साह मनाया गया था। इस अवसरपर दैनिक उर्दू 'प्रताप' जालन्धरने अपने १२ अक्तूबर-के संस्करणमें, हिन्दी साप्ताहिक 'आर्य्यमर्यादा देहलीके उद्धरणसे मीर मुश्ताक मीरइलाही मीरासीके पत्र प्रकाशित किये थे, जिन्हें पढ़नेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री स्वामी विरजानन्दजीका मन किस प्रकार देशके दुःखसे दुःखी था और १८५७ की क्रांतिके करणधारोंके हृदयमें उनका कितना मान-सम्मान था? पत्र यूं हैं—

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

सन् १८५६ बमुताबिक सम्वत् १९१३ को एक पंचायत मथुराके तीर्थगाह पर मुनक्क़िद हुई। उसमें हिन्दु मुसलमान और दूसरे मज़हबके लोगों ने शिर्कत की थी। इस पञ्चायतमें **'एक नाबीना हिन्दु दर्वेश'** को लाया गया था, एक पालकीमें बिठाकर उनके आने पर सब लोगों ने उनका अदब किया। जब यह एक चौकी पर बैठ गया, तब हिन्दु-मुसलमान फ़क़ीरोंने इसकी क़दम-बोसी की। इसके बाद सब पञ्चायतके लोगोंने इनका अदब किया। सबके अदबके बाद नाना साहब पेश हुआ। मौलवी अज़ीमुल्ला खान, रंगू बाबू, और शहनशाह बहादुरशाह का शाहज़ादा। इन सबने इनके अदबमें अशरफ़ियां पेश कीं। इसके बाद एक हिन्दु एक मुसलमान फ़क़ीर—ने कहा कि हमारा आक़ा की जुबाने मुबारिकसे जो तक़रीर होगी, इसे तसल्ली के साथ सब लोग सुनें। और वह इस मुलक के लिये बहुत मुफ़ीद साबित होगी और यह वली-उल्लाह साधु बहुत-बहुत ज़बानों का आलिम

के हेतुसे हिन्दुओंकी दस-दस स्त्रियां उन अंग्रेज़ी सेनानी—की आग की बली बनीं। उन सब सेनानियोंके पुतले इङ्गलैंडमें खड़े किये गये।"

"श्री नीलने अपनी दैनिन्दनी में लिखा है—**अंग्रेज राष्ट्रके कल्याणार्थ यही निर्दयता बरतना मेरा कर्त्तव्य था।"**

और हमारा और हमारे मुल्कका बुज़ुर्ग है। ख़ुदा की मेहरबानीसे ऐसे बुजुर्ग हमें मिले। यह ख़ुदाका हम पर बड़ा एहसान है।

दर्वेश की तक़रीरका आग़ाज़—

सबसे पहले उन्होंने ख़ुदाकी तारीफ़ की और फिर उर्दू में उसका तर्जुमा किया। इस बुजुर्ग ने यह कहा था कि **आज़ादी जन्नत और ग़ुलामी दोज़ख़ है। अपने मुल्ककी हकूमत ग़ैर मुल्की हकूमतके मुक़ाबिले में हज़ार दर्जा बेहतर है। दूसरोंकी ग़ुलामी हमेशा बेइज्ज़ती और बेशर्मीका बायस है।** हमें किसी क़ौमसे और किसी मुल्कसे कोई नफ़रत नहीं है। हम तो खल्के-ख़ुदाकी बहबूदीके लिये ख़ुदासे दुआ मांगते हैं। मगर हुकमराह (रान) क़ौम ख़ासकर फ़रंगी जिस मुल्कमें हकूमत करते हैं, उस मुल्कके बाशिन्दोंके साथ इन्सानियतका बर्ताओ नहीं करते और कितनी भी अपनी अच्छाईकी तारीफ़ करें मगर उस मुल्कके बाशिन्दोंके साथ मवेशियोंसे गिरा हुआ बर्ताओ करते हैं। ख़ुदाकी ख़लक़तमें सब इन्सान भाई-भाई हैं, मगर ग़ैर-मुल्की हुकमराह (हुक्मरान) क़ौम उन्हें भाई न समझकर, ग़ुलाम समझती हैं। किसी भी मज़हबी किताबमें ऐसा हुकम नहीं है कि अशरफ़ुलमख्लूक़ात-के साथ दग़ा की जाये तो अल्लाहके हुकमके खिलाफ़वर्जी की जाये। इस वास्ते **मातहत लोगोंका कोई ईमान है न उनकी शान है।** फ़रंगियोंमें बहुत-सी अच्छी भी बातें हैं। मगर सियासी मामलेमें आकर वह अपने क़ौल-फ़ेलको न समझकर फौरन् बदल जाते हैं और हमारी अच्छाई और नेक-सिलाको फ़ौरन् ठुकरा देते हैं। इसकी असल वजूहात यह हैं कि हमारे मुल्कको अपना वतन नहीं समझते हैं। हमारे मुल्कका बच्चा-बच्चा उनकी खैर-ख्वाहीका दम भरे फिर भी अपने वतनके कुत्तेको हमारे इन्सानोंसे अच्छा समझते हैं। यही सब कमीका बायस है। उन्हें अपने ही वतनसे मुहब्बत है। इसलिये हम सब बाशिन्दगाने हिन्दसे इल्तिजा करते हैं कि जितना वह अपने मज्हबसे मुहब्बत करते हैं, उतना ही इस मुल्कके हर इन्सानका फ़र्ज़ है कि वह वतन-परस्त बने और मुल्कके हर बाशिन्देको भाई-भाई जैसी मुहब्बत करे। जब तुम्हारे दिलोंके अन्दर वतन-परस्ती आ जायेगी। हिन्द-के रहने वाले सब आपसमें हिन्द-भाई हैं और बहादुर शाह शाहनशाह है। तस्दीक़ करदह मीर मुश्ताक़ मीर इलाही क़ासिद सर्वखाप पंचायत।

नोट—महात्मा संन्यासीका नाम मालूम किया तो उनका नाम स्वामी विरजानन्द था और बहुत अर्सासे मथुरामें रहते हैं और संस्कृतकी तालीम देते हैं और अल्ला तआलाके मोतक़िद हैं।

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

सम्वत् १६१३ विक्रमीमें यह पंचायत दूर-दराज़ जंगलमें की गई थी। और शुरू भादोंका माह था। यह पंचायत चार रोज़तक मुतवातर होती रही। पहले दिन आनेवाले सब मेहमानोंकी एक-दूसरेकेसाथ मुलाक़ात कराई गई थी। दूसरे दिन हज़रत आदमसे लेकर हज़रत मुहम्मदुर्रसूल-सल्लल्लाह अलह व सल्लम तक समाने (सवानेह) सुनाई गई। तीसरे दिन राम, कृष्ण, बुद्ध और शंकराचार्य, महावीर स्वामी अनेक ऋषि और मुनि और राजाओं महाराजाओंके ज़िन्दगीके दास्तानोंपर रोशनी डाली और ग़ैर-मुल्की वतन परस्तोंकी और ख़ुदा-परस्तोंकी याद दिलाई गई और चौथे दिन नाबीना संन्यासी महात्मा विरजानन्दजी और मुसलमान साईं मियां ममदून शाहने शुरूमें विरजानन्दजीकी तक़रीरसे पहले शुरूआत की। आजके दिन तक़रीरोंमें ख़ास-ख़ास लोगोंकी ही जमाअत थी न और ख़ुफ़िया सरकारी आदमी इसमें नहीं था। अल्बत्ता महात्माकी तक़रीर बहुत ही पुरज़ोर थी और हर मजहबी इल्मसे तअल्लुक रखती थी और डेढ़ घण्टे तक तक़रीर होती रही। मैंने उनकी तक़रीर के ख़ास-ख़ास अल्फ़ाज़ तहरीर किये हैं। बाक़ी उन्होंने हर पहलुओंपर रोशनी डाली थी। जब महात्मा विरज़ानन्दको पालकीमें बिठाकर लाया गया, उस वक्त हिन्दु-मुसलमान फ़क़ीरोंने उनकी ख़ुशीमें शंख, खड़ताल, नागफनी, नक्कारा, तुरही और नरसिंहे बजायें थे और ख़ुदा परस्ती और वतन परस्तीके गीत गाये थे। यह नाबीना साधु हर इल्मके समझनेकी ताक़त रखता था और ख़ुदा के जलवे-जलाल उसकी जबानसे जाहिर होता था। मैंने भी अपनी रूहके तक़ाज़ेके मुताबिक पांच फूल उनके सामने पेश किये और उनकी क़दम-बोसी की और ख़ुदासे दुआ मांगी कि ख़ुदा ऐसी नेक रूहोंको खल्क़तकी भलाईके लिये हमेशह पैदा कीजिये।"

पाठक वृन्द ! उपरिलिखित पंक्तियोंसे स्पष्ट हो गया कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जहां अपने पूर्व-जन्म-जन्मान्तरोंमें संचित शुभकर्मोंके पुण्य-प्रताप से एक सुसंस्कृत आत्माको लेकर इस संसारमें आये थे, वहां इस जन्ममें भी घोर तपस्या, नैष्ठिक ब्रह्मचर्यव्रत, उत्तरमें गंगा-स्रोत (गंगोत्री) से लेकर पूर्वमें गंगासागर और दक्षिणमें रामेश्वरम्तक समुच्चय देशमें पैदल यात्रा द्वारा प्राप्त देश एवम् देशवासियोंके सम्बन्धमें पूर्णज्ञान, नर्मदा-तट निवासी स्वामी पूर्णानन्द सरस्वतीजीसे संन्यास ग्रहण, योगीराज स्वामी ज्वालानन्दजी आदियोंसे क्रियात्मक अष्टांगयोगकी शिक्षा-दीक्षा, कनखल

(हरिद्वार) के तपस्वी महाविद्वान् स्वामी सम्पूर्णानन्दजीसे देशके स्वातन्त्र्य संग्राममें सहयोग देनेकी सत्प्रेरणा, नर्मदा-प्रवाहके साथ-साथ देश-हितैषी साधु-समाजके साथ सम्पर्क-सहयोग, क्रांतिकारी नेताओंसे घनिष्ट सम्बन्ध, विप्लवकी दुःख-प्रद विफलताके मध्यमें अंग्रेज़ी दमन-चक्रके कटु-अनुभव और अन्तमें हिन्दु-मुस्लिम नेताओंकी दूर निर्जन बनोंमें होने वाली गुप्त पंचायतोंमें उत्तेजना-प्रद भाषणों द्वारा देश-भक्त श्रोताओंके हृदयोंमें नव-स्फूर्ति एवम् देश-प्रेमकी धधकती ज्वालाओंको अधिक प्रचण्ड करनेवाले श्री स्वामी विरजानन्दजीका चरण-चुम्बन आदि ही नैमित्तिक ज्ञानके ऐसे साधन थे, जिन्होंने एक सुसंस्कृत आत्माकी पूर्णतः प्राप्तिमें 'सोने में सुगन्ध' का काम किया और पद-दलित, पादाक्रान्त, तिरस्कृत, अपमानित, दासताकी दृढ़ सांकुलोंमें जकड़े हुए भारतवर्षके घातक-रोगोंका पूर्ण निदान करके महर्षिदयानन्द सरस्वतीने इसे स्वराज्य प्राप्तिके ऐसे अद्भुत, अनोखे, विलक्षण तथा राम-बाण जैसे अचूक योग (नुस्खे) प्रदान किये जिनके व्यवहारसे प्रायः हज़ार-बारहसौ वर्षकी परतन्त्रताकी घुटनके पश्चात् हम स्वतन्त्रताकी सुखद-स्वस्थ समीर और सुधा-सम-सान्त्वना-प्रद स्वतन्त्र वातावरणमें श्वास लेनेके योग्य बन सके हैं। अतः एक स्वरसे बोलो—

स्वराज्य प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती की जय !

२

स्वराज्य-प्रवर्तक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षिके आगमन से पूर्व देशकी दशा

जिस समय—पौराणिक-अन्धकारके घन-घोर बादल भारतपर छा रहे थे;

जिस समय—पत्थरोंको, परमेश्वर मानकर, पूजा जा रहा था;

जिस समय—नदियोंमें स्नान करने मात्रसे मुक्ति मानी जा रही थी;

जिस समय—स्त्री और शूद्रको पशुवत् धिक्कारा जा रहा था;

जिस समय—बाल-विधवाओंको बलात् पुनर्विवाहसे वञ्चित किया जा रहा था;

जिस समय—वर्णाश्रमकी वैदिक मर्यादा लुप्त हो चुकी थी; (काला अक्षर भैंस बराबर समझने वाले व्यक्ति केवल ब्राह्मण-कुलमें जन्म लेनेके कारण ब्राह्मणवत् पूजे जा रहे थे);

जिस समय—(राजा राममोहन राय का) ब्राह्मसमाज ईसाइयतसे हिन्दुओं-को बचानेके अभिप्रायसे स्थापित होकर (बा० केशवचन्द्रसेन के समय में) स्वयं ईसाइयोंकी शाखाका रूप धारण कर चुका था;

जिस समय—मुसलमान और ईसाई वेद-शास्त्रोंकी निन्दा करते हुए हिन्दुओं को धर्मच्युत कर रहे थे;

उस समय—जगन्नियन्ताके नियमानुसार पाञ्च सहस्र वर्षोंके पीछे भारत देश में महर्षि दयानन्दने उत्पन्न होकर पृथिवि-वासियोंको फिरसे वैदिक ज्योति दिखाई थी (*)। और उस दिव्य-ज्योतिके आलोकमें शताब्दियोंसे पद-दलित, दीन-हीन-मलीन, पर-मुखापेक्षी, विदेशियों एवम् विधर्मियोंके पाओंकी ठोकरें खाती हुई आर्य (हिन्दु) सन्तानोंको आत्म-निर्भरता, आत्मावलम्बन, आत्म-गौरव

एवम् आत्माभिमानका पाठ पढ़ाकर सजग और सचेत कर दिया था, जिससे आर्य (हिन्दु) जातिने एक ऐसी ज़ोरदार अंगड़ाई ली, कि प्रायः हज़ार-बारहसौ वर्षकी दासताकी दृढ़ सांलेकु कमल-नालकी भांति टूक-टूक होकर दूर जा गिरीं और पुनः स्वदेश-स्वदेशी, स्वधर्म-स्वजाति, स्वाभिमान-स्वावलम्बन, स्वातन्त्र्य-स्वराज्य और सुराज्यका जीवन-प्रद उद्घोष करते हुए हम सावधान होकर खड़े हो गये और **'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत'** के महामन्त्रका जाप करते हुए विश्वभरको चकित करने लगे।

देश-वासियोंके हृदयोंमें देश प्रेमका अभाव—

जिस समय महर्षि दयानन्दका प्रादुर्भाव हुआ था, उस समय धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक अधःपतनकी पराकाष्ठा हो चुकी थी। धूर्त अंग्रेज जो व्योपारियोंके छद्म-वेषमें यहां आया था 'आग लेने आई और घर की मालिकन बन बैठी' की लोकोक्तिको अक्षरशः चरितार्थ कर रहा था। समूची आर्य (हिन्दु) जातिपर कुछ इस प्रकारका जादू-सा चल चुका था कि इसे सिवाय अंग्रेज़का स्तोत्र-पाठ करने और कुछ सूझता ही नहीं था। पुराने समयसे प्रचलित किंवदन्ती—'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा' अर्थात् शासक ही स्वयं परमात्मा है अतः उसकी आज्ञाओं का पालन करना धर्म और उनका उल्लंघन पाप है, अपराध है, अतः दण्ड्य है पर मनसा, वाचा, कर्मणा आचरण हो रहा था।

अपनी जातिकी इस दुर्दशाको अनुभव करके महर्षिका कोमल हृदय द्रवीभूत हो जाता था। जब वे अपने देश-बन्धुओंको, धर्म-बन्धुओंको गौराङ्ग महाप्रभुओं (अंग्रेज़ों) की चाटुकारिता करते, स्तवन गाते और उनकी अनन्य भक्तिको ही लौकिक एवम् पारलौकिक उन्नति अथवा अभ्युदय तथा निःश्रेयस सिद्धिका एक-मात्र साधन समझते हुए देखते, तो हृदय पकड़कर रह जाते और परब्रह्म परमात्मासे प्रार्थना करते कि हे—**"साम्राज्य प्रसारक ! राज्यविधायक ! दारिद्रय विनाशक ! कृपा निधे ! हमको शौर्य, धैर्य, बल, पराक्रम, चातुर्य, विविध धन, ऐश्वर्य, विनय, साम्राज्य, सम्मति, स्वदेश सुख सम्पादनार्थ गुणोंसे अधिक उत्तम करो।"** पिता ! मेरे देश-वासी बन्धुओंके हृदयोंके, जो देश-भक्तिकी दैवी भावनाओंसे रिक्त हो चुके हैं, जिनमें विधर्मी-विदेशियोंको उत्कृष्ट और स्वधर्मी-स्वदेशियोंको निकृष्ट समझनेकी हीन-भावना घर कर चुकी है, फिरसे स्वदेश-प्रेमके दिव्य

आलोकसे आलोकित कर दीजिये ताकि यह पथ-भ्रष्ट जन-समुदाय सन्मार्गका अवलम्बन करके अपने लोक और परलोकको सुधार सके ।[1]

समष्टि जीवन का ह्रास—

बौद्ध तथा जैन सम्प्रदायोंके प्रादुर्भावके पश्चात् दो-अढ़ाई सहस्र वर्षके दीर्घ कालमें, उनके व्यक्तिवादके प्रचारके कारण देशमेंसे समष्टि-जीवनकी प्रायः इतिश्री हो गई थी—प्रत्येकको व्यक्तिगत मुक्ति अथवा निर्वाणकी धुन समा गई थी। फलतः आर्य (हिन्दु) जातिके हृदय-पटलपरसे संगठनकी स्वास्थ्य-प्रद भावना और प्रतिकारकी वीरोचित चेतना भी नष्ट होचुकी थी। परिणाम यह हुआ कि हिन्दुस्थानके बाहर भी जिस-जिस देशमें बौद्ध-धर्मावलम्बी लोगोंकी बहुलता थी, वहां-वहां आक्रामिक मुहम्मदी-मतका बोल-बाला होते समय नहीं लगा। अफ़ग़ानिस्तान, बलोचिस्तान, मध्य-एशिया तथा पश्चिमी चीन और तातार आदि देशोंका पुराना इतिहास इस बातका प्रबल प्रमाण है।

बौद्धों का मन्तव्य—(विवेक-विलास ग्रन्थानुसार)

बौद्धानां सुगतो देवो विश्वं च क्षणभंगुरम् ।
आर्य्यसत्त्वाख्ययादत्त्व चतुष्टयमिदं क्रमात् ॥[1]

अर्थात्—बौद्धों का (१) सुगतदेव भगवान् बुद्ध पूजनीय देव और (२) जगत् क्षणभंगुर (३) आर्यपुरुष और आर्या स्त्री तथा (४) तत्त्वोंकी आख्या-संज्ञादि प्रसिद्धि ये चार तत्व मन्तव्य पदार्थ हैं।

दुःखमायतनं चैव तथा समुदयो मतः ।
मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः ॥[2]

अर्थात्—इस विश्वको दुःखका घर जाने तदनन्तर समुदय अर्थात् उन्नति होती है और उनकी व्याख्या क्रमसे सुनो।

दुःखं संसारिणस्कन्धास्ते च पंचप्रकीर्तिताः ।
विज्ञानं वेदनासंज्ञा संस्कारो रूपमेव च ॥[3]

अर्थात्—संसारमें दुःख ही है। जो पंचस्कन्ध पूर्व कह आये हैं, उनको जानना।

क्षणिकाः सर्व संस्कारा इति या वासना स्थिरा ।
स मार्ग इति विज्ञेयः स च मोक्षोऽभिधीयते ॥६॥[2]

अर्थात्—सब संस्कार क्षणिक हैं, जो यह वासना स्थिर होना है, वह बौद्धों का मार्ग है और वही शून्य तत्व शून्य रूप हो जाना मोक्ष है ॥

स्त्रियों की दुर्गति—

(क) गोस्वामी तुलसीदास जी, जो अकबरके समकालीन थे, ने अपने 'रामचरित मानस' में लिखा—

१. ढोल गंवार शूद्र पशु नारी ।
ये सब ताड़न के अधिकारी ॥[3]

२. अवगुण अष्ट नारि उर रहईं ।[3]

३. विधि हु न नारि हृदय गति जानी ।
सकल कपट अघ अवगुण खानी ॥[3]

४. अधम ते अधम अधम अति नारी ।[3]

५. सहज अपावन नारि ।[3]

(ख) श्री आद्य शंकराचार्यजीने स्त्रियोंके सम्बन्धमें लिखा—

१. द्वारं किमेकं नरकस्य—नारी ॥३॥[4]

प्रश्न—नरकका एक मात्र द्वार कौनसा है ?
उत्तर—नारी

२. सम्मोहत्येव सुरेव का—नारी ॥६॥[4]

प्रश्न—कौनसी चीज़ मदिराकी तरह मोहित करती है ?
उत्तर—नारी

३. किमत्र हेयम् —कनकं च कान्ता ॥८॥[4]

प्रश्न—इस संसार में त्याज्य क्या है ?
उत्तर—कांचन और कामिनी ।

४. प्राज्ञोऽथ धीरश्च समस्तु को वा ?
प्राप्तो न मोहं ललना कटाक्षैः ॥११॥[4]

प्रश्न—बुद्धिमान्, धीर और समदर्शी पुरुष कौन है ?
उत्तर—जो स्त्रियों के कटाक्षोंसे मोहको प्राप्त न हो ।

५. विज्ञानमहाविज्ञतमोऽस्ति को वा ।
नार्या पिशाच्या न च वञ्चितो यः ॥[4]

प्रश्न—समझदारों में सबसे अच्छा समझदार कौन है ?
उत्तर—जो स्त्री-रूपा पिशाचिनी से नहीं ठगा गया ।

६. का श्रृंखला प्राणभृता हि—नारी।[4]

प्रश्न—प्राणियों के लिये सांकुल कौनसे हैं ?
उत्तर—नारी ही।

७. ज्ञातु न शक्यं न किमस्ति सर्वैः॥
योषिन्मनो यच्चरितं तदीयम्॥१६॥[4]

प्रश्न—सब किसीकेलिये क्या जानना सम्भव नहीं है ?
उत्तर—स्त्रीका मन और उसका चरित्र।

८. विश्वासपात्रं न किमस्ति—नारी[4]

प्रश्न—विश्वासके योग्य कौन नहीं है ?
उत्तर—नारी।

९. त्याज्यं सुखं किं—स्त्रियमेव सम्यग्॥[4]

प्रश्न—कौनसा सुख तज देना चाहिये ?
उत्तर—सब प्रकारसे स्त्रीका सुख ही।

१०. किं तद्विषं भाति सुधोपमं—नारी[4]

प्रश्न—वह कौनसा विष है, जो अमृत-सा जान पड़ता है ?
उत्तर—नारी।

इस्लाम में स्त्री का दर्जा—

मुहम्मदीमत (इस्लाम) ने तो मातृ-शक्तिका अपमान करनेमें पराकाष्टा ही कर रक्खी थी—

१. निस्साउकुम् हर्स सुल्लकुं फ़ातू हर्सकुम् उन्नाशियतुम्[5]

अर्थात्—तुम्हारी औरतें तुम्हारी खेतियां हैं। अपनी खेतीमें जिस प्रकार चाहो (जाओ अपनी खेती में जहांसे चाहो)

(हिन्दी क़ुरआन ख़्वाजा हसन निज़ामी द्वारा प्रकाशित)

नोट—सही बुख़ारी इसको वतीफ़िद्दुबर (गुदा मैथुन) पर भी लगाता है।

२. अर्रिजालो कव्वा मूना अलन्निसात्॥[6]

अर्थात्—मर्दलोग कारगुज़ार हैं तसल्लत पाकर ऊपर औरतोंके और क़ायम हैं उनकी माअ़शीअ़त (रोज़ी) के अमूरपर। इस आयतका मतलब औरतों पर मर्दोंकी तफ़सील (महत्तता) है। (तफ़सीर क़ादिरी, पृष्ठ १६३)

३. फन् कहूमा तावा लकुम्मिन्ननिसात् मसना
वा सुलसा वा रबाअ्रा वा इन् खिफ़तुन्
अ्ल्लाह् ता दिलू फ़वाहिदतन्[7]

अर्थात्—निकाह कर लो जो ख़ुश आये तुम्हें औरतोंसे दो-दो, तीन-तीन, चार-चार। निकाह करने वालोंको इख़्त्यार है कि इन हद्दोंमेंसे जितने चाहें निकाह कर लें; फिर अगर डरो और जानो कि अ़दल न कर सकोगे इन औरतोंमें तो एक ही इख़्त्यार करो। (तफ़सीर क़ादिरी, पृष्ठ १५०)।

नोट—इस निकाहकी हद्दके ज़िम्न (संदर्भ) में तारीख़ुलख़ुलफ़ामें अ़ल्लामा जलालुद्दीन स्यूतीने ख़िलाफ़ते हसनके ज़िक्रमें लिखा है कि इब्ने साअ़दने अली-बिन-हसनसे रवायत की है कि आप औरतोंको तलाक़ बहुत दिया करते थे, सिवाय उनके जिनसे आपको मुहब्बत हो जाती। आपने नव्वे (९०) औरतोंसे निकाह किया था और इब्ने-साअ़दने रवायत की है कि आप आ़मतौर पर निकाह करके तलाक़ दे दिया करते थे।

(तारीख़ुलख़ुलफ़ा तर्जुमा मौलवी मौलाना मुहम्मद ख़लीलुर्रहमान, मतबा सिद्दीक़ी, लाहौर, पृष्ठ १३१) अर्थात्-चारकी हद्द रखकर भी तलाक़की तलवारसे जिसको चाहा अलगकर दिया और उसकी जगह नई बीवी करली।

४. इन्ना कैदा कुन्ना अ्ज़ीम।[8]

अर्थात्—यक़ीनन तुम औरतों का मकर बड़ा है। औरतोंका ज़ाहिर तो कमज़ोर नज़र आता है, जिससे मालूम होता है कि ये सच्ची हैं। [भोली-भाली सूरतपर कौन झूठा होने का एहतमाल (सन्देह) कर सकता है?] लेकिन उनका बातन टेढ़ा और गन्दा है। इनकी तख़्लीक़ (पैदाइश) आदमकी टेढ़ी पसली से हुई है। इनकी अ़क्लोंमें कमज़ोरी और दीनदारीमें नुक़सान है। इनके साथ शैतान होता है, जो मकर का जाल लेकर मर्दोंके सामने आता है और शैतान तो फिर छुपकर चोरीसे दिलमें वस्वसा (सन्देह) डालता है। रसूलिल्लाह ने फ़र्माया—"औरतें शैतानका जाल हैं।" यह भी हज़रतने फ़र्माया—"तुम औरतोंसे किसी एकसे भी ज़्यादा कोई नाक़िसुलअ़क़्लवद्दीन शख़्स दानिशमन्द मर्दकी अ़क़्लको—दानिशको ज़ायल (नष्ट) करनेवाला मैंने नहीं देखा।" बाअ़ज़ उलमाका क़ौल है "शैतानसे ज़्यादा मुझे औरतोंसे डर लगता है। अल्लाहने शैतानके मकरको (ज़ईफ़) कमज़ोर फ़र्माया है (**इन्ना कैदश्शैतानो काना ज़ईफ़ा**) कि शैतानका मकर तो कमज़ोर है और औरतोंके मुतअ़ल्लक फ़र्माया (**इन्ना कैदा कुन्ना**

अज़ीम—औरतका मकर बड़ा है। (तफ़सीर मज़हरी तालीफ़ हज़रत अल्लामा ए-फ़ाज़ल मुहम्मद सना-उल्ला उस्मानी-मुजद्दी पानीपती, पृष्ठ १४३)।

तलाक़का इस्लामी तरीक़ा—

लण्डन (इंग्लैंड) में रहने वाली एक मुसलमान ललना आयशाक़ुरैशीने (तलाक़के मुकद्दमोंका फ़ैसला करनेवाली अदालत, जिसके सदर सरसाईमन हैं) अपनी याचिकामें लिखा है कि "उस (आयशा) ने कुछ मास पूर्व एक मुसलमान नौजवान मुहम्मद अब्दुलहयी क़ुरैशीसे इस्लामी तरीक़ासे शादी की थी। मगर अब उसने मुझे एक ख़त लिखा है कि वह मेरे साथ ज़िन्दगी बसर नहीं करना चाहता। उसने **तीन बार लिखा है कि मैं तुम्हें तलाक़ देता हूं**। उसने (अब्दुलहयी) ने बर्तानियामें की गई एक शादीको ग़ैर बर्तानवी क़ानूनके ज़रियासे फ़सख़ करनेकी कोशिश की है।"

सर साईमनने कहा कि उनके सामने तलाकका ऐसा पेचीदा मसला कभी नहीं आया, गोया कि किसी **मुसलमान मर्दको इतना इख़्त्यार है कि वह वजह अथवा बिला वजह अपनी मर्ज़ीसे सिर्फ तीन बार तलाक़ कह दे और औरतसे छुटकारा हासिल करले।** इस धींगा-मुश्तीके तलाक़से लण्डन की यह अदालत मख़्मसामें (असमञ्जसमें) पड़गई है और इस सम्बन्धमें अधिक विचार करनेके लिये इस मुकदमा को (pending) स्थगित कर दिया है।[9]

ईसाइयत और नारी समाज—

१. कालान्तरमें ईसाके अनुयायियोंमेंसे कई ऐसे सम्प्रदाय पैदा हो गये थे, जो स्त्रीमें रूह (आत्मा) के अस्तित्वसे भी इन्कार करने लगे थे।

2. "Motherhood is sinful especially if the child is a girl."[10]

अर्थात्—"मातृ-योनि पाप-योनि ही है विशेषतः यदि शिशु बालिका हो।"

3. Unto the woman, He said "I will greatly multiply thy sorrow and thy conception, in sorrow thou shalt bring forth children, and thy desire shall be to thy husband and he shall rule over thee."[11]

अर्थात्—उस (खुदा) ने स्त्रीको कहा—"मैं गर्भधारण समय तेरी उद्विग्नताको बहुत बढ़ाऊँगा। तू प्रसूति समय पीड़ासे ही बच्चे जनेगी। तेरी उत्कट इच्छा तेरे पतिके लिये होगी और वह तुझपर शासन करेगा।"

Note—When a Christian hears a woman screaming in child births, he reflects that God is getting even with Eve for eating an apple.

अर्थात्—जब एक ईसाई सन्तानोत्पत्तिके समय किसी स्त्रीको प्रसव-पीड़ाके कारण चिल्लाते सुनता है तो वह विचारने लगता है कि ख़ुदा इस स्त्रीसे हव्वाका बदला ले रहा है, जिसने कि (ख़ुदाके रोकनेपर भी शैतानकी बहकावटमें आकर निषिद्ध नेक-ओ-बदकी पहचानके वृक्षका फल) सेब खा लिया था।

4. "Woman may be captured, violated and then turned out of doors."[12]

अर्थात्—स्त्रीको पकड़कर बलात्कार करनेके पश्चात् दर्वाजेसे बाहर धकेला जा सकता है।

5. "Woman should be subjugated because Eve was deceived,"[13]

अर्थात्—स्त्री सदा पुरुषके अधीन रहे; क्योंकि हव्वा धोका खा गई थी।

6. "For the man is not of the woman; but the woman of the man. Neither was the man created for the woman but the woman for the man."[14]

अर्थात्—क्योंकि पुरुषकी उत्पत्ति नारीसे नहीं हुई, अपितु नारीकी उत्पत्ति पुरुषसे हुई थी। पुरुषकी उत्पत्ति नारीके हेतु नहीं, प्रत्युत नारीकी उत्पत्ति पुरुषके हेतु हुई थी।

7. "Let your women keep silence in the Churches; for it is not permitted unto them to speak......for it is a shame for women to speak in the Churches."[15]

अर्थात्—तुम्हारी नारियोंको गिरजाघरोंमें अपनी ज़बान बन्द रखनी चाहिये; क्योंकि उन्हें बोलनेकी आज्ञा नहीं है···क्योंकि गिरिजाघरोंमें बोलना नारीके लिये लज्जास्पद है।

8 "And seeast among the captives a beautiful woman, and hast a desire unto her, that thou wouldst have her to be thy wife......Then thou shalt bring her home to thy house... and after that thou shalt go in unto her, and be her husband and she shall be thy wife. And it shall be, if thou have no delight in her, then thou shalt let her go whither she will......[16]

अर्थात्—और बन्दियोंमें तुझे कोई सुन्दर स्त्री दृष्टिगोचर हो, और तुम्हें उसे अपनी पत्नी बनानेकी कामना हो जाये···तो तुम उसे अपने गृहमें ले आओ···और तत्पश्चात् तुम उसके साथ सम्भोग करो और वह तुम्हारी पत्नी होगी। और यदि तुम्हें उसमें रुचि न रहे, तो उसे जाने दो जिधर वह चाहे······।

9. Let the woman learn in silence with all subjection. But I suffer not a woman to teach, not to usurp authority over man but to be in silence. For Adam was first formed, then Eve. And Adam was not deceived but the woman being deceived was in the transgression.[17]

अर्थात्—नारीको पूरी तरह आधीनतामें चुप रहकर शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये। मैं यह सहन नहीं कर सकता कि नारी शिक्षा देने और पुरुषपर बलात् अधिकार जमाने लगे। प्रत्युत् वह मुँह बन्द रक्खे; क्योंकि आदमका निर्माण पहले हुआ था और हव्वा बाद में बनी थी। और आदम नहीं बल्कि हव्वा (शैतान द्वारा) ठगी गई थी और उसीने (हव्वाने) ही सीमोल्लंघन किया था।

शूद्रों के साथ घृणित व्यवहार —

आद्य श्री शङ्कराचार्यने वेदान्तसूत्रका भाष्य करते समय उपदेश दिया—

१. अथास्य वेदमुपश्रृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्र परिपूर्णमिति।[18]

अर्थात्—यदि यह (शूद्र) वेदमन्त्र सुनले तो सीसे और लाखसे कानभरकर बन्दकर दिये जायँ।

२. भवति च वेदोच्चारणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीर भेद इति।[19]

अर्थात्—यदि वह (शूद्र) वेदोच्चारणकरे तो ज़बान काट दी जाय; यदि वेदको धारण करले, तो शरीर नष्ट कर दिया जाय।

३. स्त्री शूद्रो न धीयाताम् इति श्रुतौ.........

अर्थात्—स्त्री और शूद्रको पढ़ना नहीं चाहिये।

नोट—इस प्रकारके बीभत्स प्रचारका फल यह हुआ कि आर्यों (हिन्दुओं) की आधी संख्या (नारी समाज) एवम् करोड़ों तथा-कथित शूद्रोंको एक-दम वेद-विद्यासे वञ्चित कर दिया गया।

नवीन वेदान्तियोंके मायावाद और जगन्मिथ्यावादने आर्यों (हिन्दुओं) के मन-मन्दिरोंमेंसे स्वदेश-भक्तिकी विमल-छटाका लोप करके

घटा-टोप अन्धकार व्याप्त कर दिया था—इन 'महात्माओं' ने वेदके जीवन-प्रद, आह्लादोत्पादक—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविच्छेत्छत ँ् समाः ।
एवम् त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥[20]

अर्थात्—इस संसारमें कर्म करते हुए ही सैंकड़ों वर्षोंतक जीवित रहनेकी अभिलाषा करो। ऐसा करने वाले मनुष्यको कर्म लिपायमान् नहीं करते—उपदेशको विस्मृत करके

कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते ।
तस्मात् कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः ॥

अर्थात्—जीव कर्म करनेसे बंध जाता है और विद्या द्वारा मुक्ति प्राप्त कर लेता है। इसीलिये पारदर्शी यतिवर कर्म नहीं करते—का अहर्निश जापकर देशभरको निकम्मा, निठल्ला, आलसी, प्रमादी और दीर्घ-सूत्री बनाकर रख दिया था। इन महानुभावोंने **जगन्मिथ्यावादका** भी बहुत प्रचार किया, यथा—

अहर्निशं किं परिचिंतनीयं ?
संसार मिथ्यात्व शिवात्मतत्त्वं ?[21]

अर्थात्—प्रश्न—दिन-रात विशेषतः क्या चिंतन करना चाहिये ?
उत्तर—**संसारका मिथ्यात्व** और कल्याण स्वरूप परमात्म तत्व।
स्मरणीय है कि श्रुति भगवतीने उपदेश दिया था—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।
ब्रह्मराजन्या भ्या ँ् शूद्राय चारणाय च स्वाय चारणाय ॥[22]

अर्थात्—जिस प्रकार मैं इस कल्याण करनेवाली वेद-वाणीका उपदेश करता हूं, उसी प्रकार तुम भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अपने भृत्य अथवा स्त्रियादि और अति शूद्रादिके लिये भी वेदोंका उपदेश करो। वहां स्त्रियोंको पढ़ाना पाप और वेद-मंत्र सुननेपर शूद्रोंके कानोंमें सिक्का और लाख पिघलाकर डालनेकी मर्यादा स्थिर की गई थी; शूद्रद्वारा वेद-मन्त्र पाठपर जिह्वा-छेद और वेद-धारण करनेपर शरीर विध्वंसकी आज्ञाएँ प्रसारितकी गई थीं।

जहां आर्योंने मनुमहाराजके आदेश कि—

यत्र नार्यस्तुपूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैस्तास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥[23]

अर्थात्—जिस कुलमें नारियोंकी पूजा (सत्कार) होती है, उस कुलमें दिव्य-गुण, दिव्य-भोग और उत्तम सन्तान होते हैं। जहाँ इनकी पूजा नहीं होती, वहाँ जानो उनकी सब क्रियायें निष्फल हैं और

शोचन्ति जामयो यत्र विनशत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा॥[23]

अर्थात्—जिस कुलमें स्त्री लोग शोकातुर रहती हैं, वह कुल शीघ्र नाशको प्राप्त हो जाता है और जहां स्त्रीजन प्रसन्न रहती हैं, वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है। और

उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते॥[23]

अर्थात्—एक आचार्य गौरवमें दस उपाध्यायोंसे बढ़कर है; एक पिता सौ आचार्योंसे उत्तम है और एक माता एक हज़ार पिताओं से श्रेष्ठ है। अर्थात् माता १×१०×१००×१०००=१०,००,००० दस लाख उपाध्यायों से अथवा १० हज़ार आचार्योंसे गौरवमें बढ़कर है—अपना आचरण बना रक्खा था, वहां विविध-सम्प्रदाय-वादिओंने बहुविध अनर्गल वातावरण निर्मित करके उक्त भावनाओंका प्रचार करनेवाले अबोध आचार्य-नामधारी व्यक्तियोंने आर्योंके सर्वनाशका मार्ग तैयारकर रक्खा था; **परिणामतः** हिन्दु-विधवाओं और अनाथोंका अपहरण एवम् धर्मान्तरण ज़ोरोंसे चलने लगा था।

ऊपरकी पंक्तियोंमें वर्णित वीभत्स दुर्व्यवहारके प्रचारके कारण स्त्री वर्गकी यहाँ तक दुर्गति हो गई थी कि जहां एक पुरुष अपनी इच्छानुसार अपनी स्त्रीके जीवन-कालमें भी चाहे जितने विवाह कर लेता था, साठ वर्षकी आयुमें भी आठ वर्षकी कन्याके साथ विवाह-शादी रचा लेता था, वहां बाल्य-कालमें बूढ़े-खोसट तथा-कथित पतिकी मृत्यु हो जानेपर, यहां तक कि अक्षतयोनि अबोध-बालिकाओंको भी पुनर्विवाहकी आज्ञा नहीं दी जाती थी और फिर यदि रूढ़ि-वादी परम्पराके अनुसार किसी विधवाने भावावेशमें सती होनेका शब्द भूल-चूकसे अथवा इसके वास्तविक स्वरूपसे नितान्त अनभिज्ञ होनेके कारण मुँहसे निकाल ही दिया तो परिवारके बड़े-बूढ़े उस निस्सहाया अबलाके पीछे हाथ धोकर पड़ जाते थे और तबतक उन्हें चैन न आता था, जबतक कि उस विधवाके हाथ-पाँव और सारा शरीर बांसों तथा रस्सोंसे जकड़कर ज़बरदस्ती उसके मृत पतिकी धधकती चितापर

फेंककर उसे भस्मीभूत नहीं कर लेते थे। अन्धेर! अत्याचार! घोर अन्याय! महापाप!

यदि वह बाल-विधवा जीवित भी छोड़ दी जाती तो उसे आयुभरकेलिये मलिन-वस्त्रा, शृङ्गार-वर्जिता, मङ्गलकार्य-बहिष्कृता और हरप्रकारकी सुख-सामग्रीसे वञ्चिता रहनेके लिये बाध्य किया जाता था।

इस प्रकारके अमानुषिक अत्याचारोंके महाभयङ्कर परिणाम भी प्रायः अनिवार्यरूपसे निकलते ही रहते थे। सहस्रों भाग्यहीन विधवाएँ देवदासीके रूपमें मन्दिरों-मठों आदिमें तिरस्कृत, अपमानित, भिक्षा-वृत्ति अथवा नर्तकी किंवा वार-वधूके घृणित व्यवसाय द्वारा जीवन-यापन करनेपर विवश कर दी जातीं थीं।

इसी प्रकार सूखा-ग्रस्त और अकाल-पीड़ित प्रदेशोंमें जहां अन्नाभावके कारण निर्धन-निस्सहाय माता-पिता अन्नके एक-एक ग्रासके लिये अपनी सन्तानोंसे वियुक्त होनेपर विवश हो जाते थे, सेवा-सहायता-मानवताका छद्मवेष धारणकरके ईसाई और मुसलमान प्रचारक उन्हें ले उड़ते और उनका धर्म परिवर्तन करके हिन्दुओंकी शत्रु-संख्या-वृद्धि करते रहते थे।

उद्धरण स्रोत

(*) मास्टर आत्माराम अमृतसरीका लेख।
(१) आर्याभिविनय—महर्षि दयानन्द
(२) सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ११ पृष्ठ ४३२-४३३—म० दयानन्द
(३) रामचरित मानस—गोस्वामी तुलसीदास
(४) प्रश्नोत्तरी—आद्य श्री शंकराचार्य ३, ६, ८, ११, —, —, १६
(५) क़ुरआन—सूरा बक़र, रुकूअ २८, आयत २२३—, २०, —
(६) ,, —पारा ५, रूकूअ़ ६, आयत ३१
सूरः निसाए
(७) पारः — ,, ४ ,, १, ,, १२
सूरः युसुफ
(८) सूरः — ,, १२
(९) आर्य गज़ट जालन्धर—१-६-१९६९
(British and Foreign Society) द्वारा प्रकाशित बाइबल
(१०) बाइबल— १२: १—५
(११) " —Geuesis ३: १६ पृष्ठ ३
(१२) " —Deut २१: १०.४
(१३) " —Tim २: ११-४
(१४) " —Corithians ११: ८, ९ pp११७५
(१५) " — ,, १४ : ३४ पृष्ठ ११७९
(१६) " —Deuteronomy २१: ११-१४ पृष्ठ २३०
(१७) " —Timothy २: ११.१४ पृष्ठ १२१६
(१८) वेदान्त सूत्र शाँकरभाष्य—१. ३. ३५
(१९) ,, ,, ,, ,,
(२०) यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र २
(२१) प्रश्नोत्तरी—आद्य श्री शंकराचार्य-३१
(२२) सत्यार्थप्रकाश—समु० ३ यजुर्वेद २६-२
(२३) मनुस्मृति—२-५६, ५७. २-१४५

३

विदेशी-विद्वानोंका घृणित भ्रमजाल

विदेशी ईसाई विद्वानोंने अपने ग्रन्थों, स्मृति-पत्रों, तथा शिक्षा-पद्धति द्वारा हिन्दुओंके हृदयोंमेंसे स्वाभिमान, स्वदेश-गौरव एवम् स्व-संस्कृति-सम्मानकी उत्कृष्ट भावनाओंको नष्ट-भ्रष्ट करके योरुपीय सभ्यताकी अमिट छाप अङ्कित करते हुए 'एतद्देश-प्रसूत' जन-समूहके मस्तिष्कोंमें हीन-भावनाओं-का सृजन कर दिया था।

१. वेदोंके भाष्यकार प्राध्यापक मैक्समूलर (मोक्षमूलर) ने १८६६ ईस्वीमें लिखा—

> "I shall finish the work and I feel convinced though I shall not live to see it, yet this edition of mine and the translation of Rigveda, will here after tell to a great extent on the fate of India and in the growth of millions of souls in that country. It is the root of their religion and to show what the root is, I feel sure, is the only way of uprooting all that has sprung up from it during the last three thousand years......"[1]

अर्थात्—मैं इस कार्यको समाप्त कर दूंगा और मुझे पूर्ण विश्वास है, यद्यपि इसे देखनेके लिये मैं जीवित नहीं रहूंगा, कि मेरा यह संस्करण और ऋग्वेदका यह अनुवाद एक बड़ी सीमातक हिन्दुस्थानके भाग्यके निर्णय और लाखों लोगों के उत्थानको प्रभावित करेगा। यह (ऋग्वेद) उनके धर्मका मूल है और यह बतला देना कि वह मूल कैसा (भद्दा, त्रुटिपूर्ण) है, मेरी यह दृढ़ धारणा है कि यह उस सब कुछको जोकि विगत तीन सहस्र वर्षोंमें उससे उद्भूत हुआ है, निर्मूल करदेनेका एकही मार्ग है। (मैक्समूलर का जीवन और उसके पत्र)

2. "For many years the conversion of the enlightened classes in India has interested the Professor. During the

last few months, since his illness, it seems to be absorbing more and more of his thought."[2]

अर्थात्—बहुत वर्षोंसे हिन्दुस्थान के प्रबुद्ध-वर्गके धर्मान्तरणमें प्राध्यापक (मैक्समूलर) अत्यन्त अधिक रुचि ले रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी रुग्णावस्थाके विगत कतिपय मासोंसे तो यही विचार उनके मनमें और मस्तिष्कमें बद्ध-मूल होता चला जा रहा है।

3. "Your work will form a new era in the efforts for the conversion of India and Oxford will have reason to be thankful that by giving you a home it will have facilitated a work of such primary and lasting importance for the conversion of India, and which by enabling us to compare that early false religion with the true, illustrated, the more than blessedness of what we enjoy."[3]

अर्थात्—आपका कार्य हिन्दुस्थानमें धर्मान्तरणके प्रयासोंमें नव-युगका सृजन करेगा और ऑक्सफ़ोर्ड उचित रूपसे ही आभारी होना अनुभव करेगा कि उसने आपको एक गृह (स्थान) देकर मूलतः एक चिरस्थायी महत्वके कार्यको प्रश्रय दिया है, और वह है हिन्दुस्थानका धर्मान्तरण, जिससे कि हमको पुराने प्रत्युत मिथ्या धर्मके साथ वास्तविक सन्दर्भकी तुलना करनेका अवसर उपलब्ध हो सकेगा जो इस शुभाशीषसे भी बड़ा वरदान सिद्ध होगा जो स्वयं हमें प्राप्त है।

4. The Will dated 15th August, 1814 of Mr. Bolden, the founder of Bolden Chair states most emphatically the "SPECIAL OBJECT" of his munificent donation to promote the translation of Sanskrit Scriptures, was to enable his countrymen to proceed in conversion of the natives of India to the Christian Religion..."[4]

अर्थात्—बोल्डन पीठके संस्थापक श्री बोल्डन द्वारा १५ अगस्त, सन् १८१४ ईस्वीको जो स्वीकार-पत्र (वसीयत) लिखा गया, उसमें स्पष्ट रूपसे यह उल्लेख है कि संस्कृतके धार्मिक ग्रन्थोंके अनुवादको प्रोत्साहन प्रदान करनेके लिये इतनी विपुल धन-राशि उपलब्ध करानेका उद्देश्य यही है कि उनके (बोल्डन महोदयके) देश-वासी (अंग्रेज़) हिन्दुस्थानकी जनताको ईसाई मतमें दीक्षित करनेकी दिशामें प्रवृत्त होसकें। (सर विलियम जोन्स द्वारा सँकलित अंग्रेज़ी-संस्कृत शब्द-कोषकी प्रस्तावना)

5. "I must draw attention to the fact that I am only the second occupant of the Bolden Chair and that its founder Colonel Bolden, stated most emphatically in his will dated August 15, 1814 to promote the translation of the Sanskrit Scriptures to enable his country men to proceed in the conversion of the natives of India to Christian Religion."[5]

अर्थात्—मुझे इस ओर ध्यान आकर्षित करना है कि मैं बोल्डन पीठासीन दूसरा व्यक्ति हूं और यह कि उक्त पीठके संस्थापक कर्नल बोल्डनने अपने स्वीकार-पत्र (वसीयत) में, जोकि १५ अगस्त १८१४ ईस्वीको लिखा गया था, अत्यन्त स्पष्टतासे वर्णित कर दिया था कि संस्कृतके धार्मिक ग्रन्थोंके अनुवादको इस उद्देश्यसे प्रोत्साहन दिया जाय कि उनके (बोल्डन महोदयके) देशवासी (अंग्रेज़ लोग) हिन्दुस्थान-निवासी जन-समुदायको ईसाइयतमें दीक्षित कर सकें।

(सर मॉनियर विलियमकी संस्कृत-अंग्रेज़ी डिक्शनरीकी भूमिका पृष्ठ ९-१८९९)

6. Lord T.B. Macaulay wrote to his father from Calcutta on 12th October, 1836 as follows :—

"My dear father !

Our English schools are flourishing wonderfully. The effect of this education on the Hindus is prodigious. No Hindoo, who has received English education ever remains sincerely attached to his religion. Some continue to profess it as a matter of policy, but many profess themselves pure deists and some embrace Christianity. It is my firm belief that if our plans of education are followed up, *there will not be single idolator among the respectable classes in Bengal thirty years hence.* And this will be affected without any efforts to proselytise, without the smallest interference with religions liberty, merely by the natural operation of knowledge and reflection. I heartily rejoice in the prospect."[6]

अर्थात्—लार्ड टी० बी मैकालेने कलकत्तासे १२ अक्टूबर, १८३६ ईस्वीको अपने पिताको निम्न पत्र लिखा—

मेरे प्यारे पिताजी ! हमारे अंग्रेजी स्कूल अद्भुत उन्नति कर रहे हैं इस शिक्षाका हिन्दुओंपर विलक्षण प्रभाव पड़ रहा है। कोई भी हिन्दु, जिसने अंग्रेज़ी शिक्षा ग्रहण की है, वह अपने धर्मका निष्ठावान् अनुयायी कदापि नहीं रह सकता। कुछ लोग केवल नीतिमात्रके तौरपर उस [अपने धर्म] का दम भरते रहते हैं, बहुतसे लोग अपने-आपको विशुद्ध ईश्वरवादी कहने लग जाते हैं और फिर कुछ एक ईसाइयतको स्वीकार भी कर लेते है। मेरा यह सुनिश्चित मत है कि यदि हमारी शिक्षा सम्बन्धी नीति कार्यान्वित की जाती रही तो तीस वर्ष के अनन्तर बंगालके सम्भ्रान्त परिवारोंमें एक भी मूर्ति-पूजक शेष नहीं रह जायगा और मैं आनन्दविभोर चित्तसे प्रसन्नता व्यक्त करता हूं कि यह सम्पूर्ण परिवर्तनका कार्य धार्मिक स्वतन्त्रतामें किञ्चिन्मात्र भी हस्ताक्षेप किये बिना केवल स्वाभाविक रूपसे ज्ञानके प्रवाह एवं चिन्तन मात्रसे सम्पन्न हो जायगा। मुझे उज्ज्वल भविष्यका अनुभव करके असीम हार्दिक आह्लाद प्राप्त हो रहा है।"

(लार्ड मैकालेका जीवन-चरित्र तथा पत्र पृष्ठ ३२९-३३०)

7. On the 16th December, 1868, he (Maxmuller) wrote a letter to the Secretary of State for India, the Duke of Argyle as follows :—

"The ancient religion of India is doomed and if Christianity does not step in whose fault it will be ?........"[7]

अर्थात्—१६ दिसम्बर, १८६८ को उसने (मेक्समूलरने) लार्ड आरगाइल भारत सचिव को निम्न पत्र लिखा—

"हिन्दुस्थानके प्राचीन धर्मकी दशा दुर्भाग्य पूर्ण हो गई है और यदि ईसाइयत इसका स्थान लेनेको आगे पग न बढ़ाये, तो यह किसका दोष होगा ?

8. On the 29th January, 1882 he (Maxmuller) wrote to Byramjee Malabari thus :—

"As I told you on a former occasion my thought while writing the lectures (The Hibbert Lectures) were with the people of India. I wanted to reach there with few at least whom I might hope to reach in English. What the true historical value of this ancient religion is, as looked upon not from an exclusively European or Christian but from a historical view. I wished to warn against two

dangers, that of under valuing and dispising the ancient National Religion, as is often done by your half-Europeanised youths and over-valuing it as it was never meant to be interpreted, of which you may see *painful source is Dayanand Saraswati's labour on the Veda.* Accept the Vedas as an historical document containing thoughts in accordance with the character of an ancient and simple-minded race of men and you will be able to admire it, and to retain some of it, particularly the teachings of Upnishadas even in the modern days. But discover in it Steam engine and Electricity and European philosophy and Morality and you destroy its true value and you brake the Historical Continuity that aught to bind the present with the past. Accept the poet as a reality, study it, try to understand it and then you will have less difficulty in finding the right way towards the future..."[8]

अर्थात्—उसने (मेक्समूलरने) बायरमजी मालाबारीको २९ जनवरी, १८८२ को लिखा—

"जैसा कि मैंने आपको एक अवसरपर पहले भी कहा था, (हिब्बर्ट) व्याख्यानोंको लिखते समय मेरा ध्यान हिन्दुस्थानके निवासियोंकी ही ओर था। मैं चाहता था कि उन थोड़ेसे व्यक्तियों तक पहुंचूँ, जिन तक कि मैं अंग्रेज़ी भाषाके माध्यमसे पहुंच सकता हूं। इस प्राचीन हिन्दु धर्मका वास्तवमें क्या मूल्य है—यह केवल योरुपियन अथवा ईसाई दृष्टिकोणसे देखकर नहीं, अपितु ऐतिहासिक तथ्योंको समक्ष रखकर वर्णन करना चाहता था। मैं दो भयानक खतरोंके विरुद्ध चेतावनी देना चाहता था—

(१) कम मूल्यांकन तथा घृणाकी दृष्टिसे हिन्दुस्थानके राष्ट्रीय धर्मको देखने यथा अर्ध-योरुपियन बना आपका युवक-मण्डल देखता है और, (२) वास्तविकतासे अधिक मूल्यांकन करते हुए इसका इस प्रकार अर्थ लगाना, जैसा अर्थ लगाने के लिये यह बनाही नहीं था। **इस अधिक मूल्यांकनका दुःखद स्रोत दयानन्द सरस्वतीके वेद सम्बन्धी प्रयत्न कहे जा सकते हैं।** वेदोंको ऐतिहासिक इतिवृत्त स्वीकार करो, साथ ही यह भी कि वेदोंमें एक प्राचीन मानवजातिके सरल-हृदय लोगोंका चरित्र-चित्रण विद्यमान् है, इस दशामें आप इसकी प्रशंसा करेंगे। और उनका कुछ भाग विशेषतः उपनिषदोंकी शिक्षाओंको आधुनिक समयके लिये भी रख सकेंगे; परन्तु

इन (वेदों) में वाष्प-इञ्जन, विद्युत्-शक्ति, योरुपियन दर्शन-शास्त्र तथा आचार-संहिताका आविष्कार ढूँढ़ निकालोगे तो आप इसके वास्तविक महत्वका नाश करते हुए एक ऐतिहासिक परम्पराको भी, जोकि वर्तमान्को भूत्कालके साथ सम्बद्ध करती है, नष्ट-भ्रष्ट कर दोगे। वैदिक कविकी कविताको एक तथ्यके रूपमें स्वीकार करो, इसका अध्ययन करो और इसे समझनेका प्रयत्न करो, तब आप भविष्यकी ओर अग्रसर होनेमें कम कठिनाईका अनुभव करेंगे।"

9. He (Maxmuller) writes to his son as below :—

"Would you say that any one sacred book is superior to all others in the world ? It may sound prejudicial, but taking all in all, I say The New Testament. After that I should place The Koran which in its moral teachings is hardly more than a lucid translation of The New Testament. Then would follow the Old Testament, The Southern Buddhist Tri-Patika, The Toste Kings of Lastize, The King of Confucious, The Veda and The Avesta. There is no doubt, however, that the ethical teaching is far more prominent, in the Old and New Testaments than in any other sacred book. There-in lies the greatness of the Bible. Other sacred books are generally collections of what ever was remembered of ancient times......"[9]

अर्थात्—उस (मैक्समूलर) ने अपने पुत्रको निम्न पत्र लिखा—

"क्या तुम यह कहोगे कि संसार-भरकी पवित्र पुस्तकोंमें श्रेष्ठतम कौनसी है? चाहे यह पक्षपात-पूर्ण ही जंचे; परन्तु पूर्ण विवेचनके आधारपर मैं कहूंगा—'नया अहदनामा'। इसके बाद मैं क़ुरआन को रखूंगा जो कि अपनी नैतिक शिक्षाओंकी दृष्टिसे 'नये अहदनामेका' बादका संस्करण-मात्र है। उसके अनन्तर 'पुराने अहदनामे' की बारी आती है, फिर, दाक्षणात्य बौद्ध 'त्रिपटिका', 'लाओटाइज़का राज्यवंश', 'कान्फ़्यूशियसके राज्य-वर्ग', तब 'वेद' और 'अवस्था'; परन्तु इस बातमें रञ्चक-मात्र भी सन्देह नहीं है कि पुराने और नये अहदनामोंमें वर्णित आचार-सम्बन्धी शिक्षा दूसरी किसी भी पवित्र पुस्तकसे अधिक स्पष्ट और गौरवपूर्ण है। इसीमें बाइबलका महत्व निहित है। अन्य पवित्र पुस्तकोंमें तो साधारणतः अतीतकी कथाओंकी स्मृति-मात्र संग्रहीत है।"

10. In 1889, he (Maxmuller) wrote to Mr. M.N. Mazumdar, a Brahmo Samajist as below :—

"......You know for how many years I have watched your efforts to purify the popular religion of India, and thereby bring it nearer to the purity and perfection of other religions, particularly of Christianity. The first thing you have to do is to settle how much of your old religion you are willing to give up, if not as utterly false, still as antiquated; you have given up a great deal, polytheism, idolatory and your elaborate artificial worship.

"Take then The New Testament and read it for yourself and judge for yourselves whether the words of Christ as contained in it satisfy you or not. Christ comes to you as he comes to us in the only trust-worthy records preserved of him in the Gospels. We have not even the right to consider how differently we interpret them ourselves. If you accept his teachings as there recorded, you are a Christian.

"Tell me some of your chief difficulties that prevent you and your countrymen from openly following Christ, and when I write to you, I shall do my best to explain how I and many others who agree with me have met them, and solved them. From my point of view, India, at least the best part of it is already converted to Christianity. You need no persuation to become a follower of Christ, then make up your mind to work for yourselves. The bridge has been made for you by those who came before you. Step boldly forward, it will not break under you and you will find many friends to welcome you on the other shore and among them none more delighted than your old friend and fellow believer."

Sd. F. Maxmuller"[10]

अर्थात्—उस (मेक्समूलर) ने १८८९ में श्री एन० के० मोज़मदार को, जो कि ब्राह्मसमाजी थे, निम्नलिखित पत्र लिखा—

"......आप जानते हैं कि मैं हिन्दुस्थानके विख्यात धर्मके पवित्री-करणकी दिशामें आपके प्रयत्नोंको ध्यानपूर्वक कितने वर्षोंसे देखता चला आया हूं।

इसमें मेरा उद्देश्य इसे अन्य धर्मोंकी पवित्रता एवम् सम्पूर्णताके निकट ले-आना मात्र है, विशेषतः ईसाइयतके। सबसे प्रथम आपको यह निर्णय करना है कि अपने पुरातन धर्मके कितने भागका परित्याग आपको अभीष्ट है ? नितान्त असत्य न सही, पुराना एवम् जर-जरित होनेके कारण ही सही। आपने इसमेंसे बहुत कुछ छोड़ दिया है—बहु-देवता-वाद, मूर्ति-पूजा और उलझन-भरी अपनी लम्बी-चौड़ी पूजा-पद्धति।

"तो अब 'नया अहदनामा' लीजिये और अपने लिये इसका अध्ययन कीजिये और इस परिणामपर पहुंचिये कि मसीहके, जो शब्द इसमें अङ्कित हैं, वे आपकी सन्तुष्टि करते हैं अथवा नहीं। मसीह आपके पासभी वैसे ही आते हैं, जैसेकि हमारे पास। यही एक विश्वसनीय रीकार्ड है जो कि अन्जीलोंमें अङ्कित है। हमें यह विचार करनेका भी अधिकार नहीं है कि हम अपने लिये उनका तात्पर्य क्या लेते हैं। यदि आप मसीहके उपदेशोंको जैसा कि वे वहां उल्लिखित हैं, स्वीकार करते हैं, तो आप ईसाई हैं।

"कृपया अपनी कुछ एक बड़ी-बड़ी कठिनाइयां, जो आपको अथवा आपके देश-वासियोंको खुल्लम-खुल्ला मसीहका अनुकरण करनेमें बाधक हैं, मुझे बतलाइये। मैं भरसक प्रयत्न करूँगा कि आपको बताऊँ कि मैंने और प्रायः उन लोगोंने जो मेरे साथ सहमत हैं, उन कठिनाइयोंको कैसे समझा है और उन्हें कैसे सुलझाया है ? मेरे दृष्टिकोणके अनुसार हिन्दुस्थानका श्रेष्ठतम भाग ईसाइयत स्वीकार कर चुका है। मसीहका अनुयायी बननेके लिये आपको किसी प्रकारकी प्रेरणाकी आवश्यकता नहीं है। तो फिर अपने लिये इस सन्दर्भमें कार्य करनेका दृढ़ संकल्प कर लीजिये। आपसे पहले आनेवालोंने सेतुका निर्माणतो कर ही दिया है, निष्ठा एवं दृढ़ता पूर्वक पग बढ़ाइये और यह (सेतु) आपके बोझके नीचे टूट नहीं जायगा और आप (समुद्रके) दूसरे तट-पर बहुतसे मित्रोंको स्वागतके लिये आंखें बिछाये खड़ा पायेंगे और उनमें विद्यमान् अपने पुराने मित्र तथा सह-अनुयायी मुझसे अधिक प्रसन्नता किसीको नहीं होगी।"

हस्ताक्षर एफ० मैक्समूलर।

(११) १८५७ की क्रांतिके सबसे अधिक प्रामाणिक इतिहास-लेखक श्री जॉनने लिखा है—

"इसमें सन्देह नहीं कि इन कारतूसोंके बनानेमें जिस चिकने मसालेका प्रयोग होता था, उसमें गायकी चर्बी प्रयोगकी जाती थी।"

"दम-दमके कारख़ानेमें जिस ठेकेदारको कारतूसोंके लिये चर्बीका ठेका दिया गया था, उसके ठेकेके कागज़में यह साफ़ शब्दोंमें लिखा गया था कि "मैं गायकी चर्बी लाकर दिया करूंगा और चर्बीका भाव चार आने सेर नियत किया गया था..."[11]

नोट—यह भी लोगोंका धर्मभ्रष्ट करनेका एक ढङ्ग ही था।

(१२) ईस्ट-इण्डिया कम्पनीके अध्यक्ष मि० मैंगल्स (Mangles) ने १८५७ में पार्लियामेंट में भाषण करते हुए स्पष्ट कहा था—

"परमात्माने हिन्दुस्थानका विशाल साम्राज्य इङ्गलिस्तानको सौंपा है इस लिये कि हिन्दुस्थानके एक छोरसे दूसरे छोरतक ईसा मसीहका विजयी झण्डा फहराने लगे। हममेंसे हर एकको अपनी शक्ति इस काममें लगा देनी चाहिये ताकि सारे हिन्दुस्थानको ईसाई बनानेके महान् कार्यमें देशभरके अन्दर कहींपर भी किसी भी कारणसे ज़रा-सी भी ढील न आने पाए।"[12]

(१३) और फिर यही बात उस समयके एक दूसरे विद्वान् रेवरण्ड कैनेडी (Rev. Kennady) ने भी कही थी। उन्होंने लिखा था कि—"हम पर कुछ भी आपत्तियाँ आयें, जब तक हिन्दुस्थानमें हमारा साम्राज्य क़ायम है, तब तक हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि हमारा मुख्य कार्य इस देशमें ईसाई मत को फैलाना है। जब तक रास-कुमारीसे लेकर हिमालयतकका सारा हिन्दुस्थान ईसाके मतको ग्रहण न कर ले और हिन्दु तथा मुसलमानोंके धर्मकी निन्दा न करने लग जाय, तब तक हमें प्रयत्न करते रहना चाहिये। इस कार्यके लिये हम जितने भी प्रयत्न कर सकें, हमें करना चाहियें और हमारे हाथोंमें जितने भी अधिकार हैं और जितनी भी सत्ता है, उसका इसीके लिए उपयोग करना चाहिये।[12] (आर्योदय १९-३-६७)

13. Evidence of Sir Charles Trevelyon before the Select Committee of the House of Lords on 28-6-1853.

"**Conversion of Indians to Christianity** "I conceive that we have reached an advanced stage in the progress of education in India, namely that all schools in which a good general education is given, may be assisted, what may be the religion taught, and I believe that that plan may now safely be adopted, but far be it from me to say that the time may not come when direct Christian

instruction may be given in the Govt. Seminaries, I conceive that our ruling principle aught to be, to give the best education which our fellow subjects are willing to receive.

"There can be no doubt that *all education is imperfect which is not based on Christian instruction* and it follows that when the greater part of India has been brought to the level with those parts which are more advanced, it will be our duty to give *Christian Instruction.* But I am of opinion that the time has not arrived to attempt this forward and advanced step, which at this stage of our progress would only lead to a violent reaction. We aught never to lose sight of the possible effect upon our native army of any measure that may be urged upon us which would be likely to excite religious feelings of the Mohammadens and Hindus. The Rajputs were to our predecessors, the moghals, what the Sepoys are to us and the alienation of the Rajputs by religious intolerance was the step to the downfall of the Empire...

"Before I left Calcutta, I had a list made of all the converts to Christianity, from the educated class and I found that at that time, the majority of this class of converts, whose character and cultivation and strength of mind, offer the best assistance to the Christianity were from the Hindu College. I think many persons mistake, the way in which conversion of India will be brought about. *I believe it will take place at least wholesale, just as our own ancestors were converted.* The country will have Christian instruction infused into it in every way, by direct missionary instruction and indirectly through the public papers, through conversation with Europeans and in all conceivable ways in which knowledge is communicated; and then at last when society is completely saturated with Christian knowledge, public opinion has taken a decided turn, they will come ever in thousands.[13]

अर्थात्—सर चार्लस ट्रैविलियनकी वह साक्षी जो उन्होंने हाऊस ऑफ लार्डसकी सीलैक्ट कमेटीके समक्ष २८-६-१८५३ को (इङ्गलैंडमें) दी थी—

हिन्दुस्थानियोंका ईसाई मतमें धर्मान्तरण

"मेरा विचार है कि अब हम हिन्दुस्थान में शिक्षाके विषयमें एक उन्नत परिस्थितिमें पहुंच गये हैं अर्थात् कि समस्त ऐसी स्कूलों, जिनमें उन्नत शिक्षा प्रदानकी जाती है, की सहायता की जानी चाहिये। उनमें कैसी धर्म-शिक्षा दी जाय, मेरे विचारमें अब उस शिक्षा-पद्धतिपर सुविधापूर्वक आचरण किया जा सकता है। मुझसे यह आशा न रखिये कि मैं यह कहूंगा कि ऐसा समय कभी नहीं आयेगा जबकि सरकारी शिक्षणालयोंमें सीधे ढङ्गसे ईसायतकी शिक्षादी जासकेगी। मेरे विचारानुसार हमारा शासन-नियम यह होना चाहिये कि हम अपनी साथी प्रजाको ऐसी उच्चतम शिक्षा प्रदान करें, जिसे वह रज़ामन्दीसे स्वीकार करे।

"यह बात निर्विवाद है कि जिस शिक्षाके मूलमें ईसाइयतके सिद्धान्त नहीं हैं, वह अधूरी है। इससे हम इस निष्कर्षपर पहुंचते हैं कि जिस समय हम हिन्दुस्थानके बड़े भागको उन प्रदेशोंके सम-स्तरपर ले आयेंगे, जोकि शिक्षामें प्रचुर उन्नति कर चुके हैं, उस समय हमारा कर्तव्य हो जायगा कि हम ईसाइयतकी शिक्षा प्रदान करें। परन्तु मेरी यह सम्मति है कि अभी वह समय नहीं आया जबकि हम इतने प्रगति-प्राप्त पगको उठानेका प्रयास करें; जोकि हमारी उन्नतिकी वर्त्तमान् दशामें एक हिंसात्मक प्रतिक्रियाका कारण बन जाय। हमें इस बातको कभी अपनी दृष्टिसे ओझल नहीं करना चाहिये कि हमारे इस प्रकारके कृत्यसे हमारी देसी-सेनापर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। हमें इस प्रकारका कोई पग नहीं उठाना चाहिये जो कि हिन्दुओं अथवा मुसलमानोंकी धार्मिक भावनाओंपर आघात पहुंचानेका कारण बन सकता हो। हमारे पूर्वगामी मुग़लोंके लिये राजपूतोंकी वही परिस्थिति थी, जो हमारे लिये देसी सिपाहियोंकी है और मुग़लों द्वारा असहिष्णुता प्रदर्शनके कारण ही राजपूतोंमें पृथक्त्वकी भावना जाग्रत हुई और यही मुग़ल साम्राज्यके अधः पतनकीं ओर एक पग सिद्ध हुआ।

"कलकत्ता छोड़नेसे पूर्व मैंने धर्मान्तरित उन व्यक्तियोंकी एक सूची तैयार करवाई थी जोकि शिक्षित-वर्गमेंसे ईसाई बने थे और मुझे पता चला था कि ईसाई होने वाले लोगोंकी बहु-संख्या जिनकी चरित्र-शक्ति, सभ्यता एवम् मनोबल आदि ईसाइयतको महान् शक्ति प्रदान करते हैं, हिन्दु कॉलिजमेंसे थी। मेरा विचार है कि प्रायः लोग उस पद्धतिके समझनेमें भूल करते हैं जिससे कि हिन्दुस्थानको ईसाई बनाया जायगा। मेरी धारणा है कि अन्ततोगत्वा यह धर्म-परिवर्तन हज़ारोंकी संख्यामें होने वाला है,

बिल्कुल उसी तरह जिस तरह कि हमारे पूर्वज ईसाई बने थे। हिन्दुस्थानकी रग-रगमें ईसाइयतकी शिक्षा ओत-प्रोत करा दी जायेगी—सीधे मिशनरी प्रशिक्षण द्वारा और अस्पष्ट रूपसे विविध विषयोंकी पुस्तकोंके माध्यमसे, सार्वजनक पत्रोंकी मार्फत, योरुपियनोंके साथ विचार-गोष्ठियोंके मार्गसे और उन समस्त विधि-विधानों द्वारा जिनसे कि शिक्षा-प्रसार किया जा सकता है। और अन्तमें जब हिन्दुस्थानी-समाजके रोम-रोममें ईसाइयतकी शिक्षा समा जायेगी और जन-साधारणका सर्व-सम्मत विश्वास एक निर्णीत मार्गका अवलम्बन कर लेगा, उस समय वे लोग हज़ारोंकी संख्यामें ईसाइयतमें प्रवेश करेंगे।"

Sir Fredrick Holliday, in his evidence before the House of Commons on 25th July, 1853, said—

"I believe there is more knowledge of the Bible in the Hindu College of Calcutta than there is in any public school in England."[14]

अर्थात्—सर फ्रेडरिक हॉल्लिडेने हाउस ऑफ कामन्सके समक्ष २५ जुलाई, १८५३ को कहा—

"मेरा विश्वास है कि इङ्गलैंडकी किसी भी पब्लिक स्कूलकी अपेक्षा कलकत्तेके हिन्दु कॉलिजमें बाइबलका ज्ञान अधिक है।"

(१५) "जब तक हिन्दुओंका चार वेदोंमें विश्वास नष्ट नहीं किया जाता, तब तक वे लोग ईसाइयतकी ओर ध्यान नहीं देंगे। इसी हितार्थ ईसाई स्कूल खोले गये हैं।[15]

(१६) यदि विश्वमें कोई सच्चा धर्म है तो केवल ईसाई धर्म है और सब पाखण्ड हैं—(पोप)

17. "The natives of India are so terribly wicked that they can never be expected to embrace Christianity which is so repellent to them as they have not the patience to listen when we address them on the subject. In fact one might well invite them to allow themselves to be put to death as to become Christian."[17]

अर्थात्—हिन्दुस्थान-निवासी इतने सख़्त शरारती हैं कि यह कभी आशाही नहीं की जा सकती कि वे ईसाई बन जायेंगे। उनमें तो इतनी भी सहिष्णुता नहीं है कि जब हम उनके समक्ष ईसाईयतके विषयपर व्याख्यान

दें, तो उसे सुन भी सकें। वास्तविकता यह है कि वे ईसाई होनेकी अपेक्षा मृत्युको स्वीकार करनेको उद्यत हो जायेंगे।"[18] (सेंटज़ेवियरका पत्र रॉबिन्सनकी पुस्तकमें से)।

स्वामी विवेकानन्दजी अमरीकामें थे। एक बहुत बड़े गिरजेमें उनके व्याख्यानसे पूर्व उनका परिचय करानेवाले पादरी ने कहा—

"मैंने हिन्दुस्थान देखा है। असभ्यताकी पराकाष्ठा है वहाँ, अत्यन्त घटा-टोप अन्धेरा, पाषाण-पुजा तक ही धर्म सीमित है। अग्नि की पूजा, मेघों की पूजा; हुगली नदीमें कछुए बच्चोंको खाते हैं; विधवा-स्त्रियोंको पकड़कर बलात् जलती चिताओंमें फेंक दिया जाता है; सैंकड़ों भाषाएँ—कोईएक दूसरेकी बात नहीं समझता। अमरीका वालोंने जो ईसाई मिश्नरी वहाँ भेजे हैं उनकी कृपासे कुछ लोग अंग्रेजी पढ़ गये हैं। यह मिस्टर भी उनमेंसे एक हैं। ब्रह्म समाज आदि आन्दोलन ईसाइयतके प्रचारका परिणाम हैं। पादरी साहिबने अपना भाषण इस प्रार्थनासे समाप्त किया "खुदाया ! कृपा करो वह दिन शीघ्र आये, जब सारा हिन्दुस्थान ईसाई होगा और ईसा मसीह को अपना मुक्तिदाता स्वीकार करेगा।"[12]

19. With the advent of British rule in India and the introduction of Western education there was however a real danger to Indian life and out-look undergoing a steady process of denationalisation......

"At this Supreme Crisis in the history of Indian progress, some great men, of whom Maharshi Dayanand Saraswati was one of the foremost, appeared on the scene and gave a remarkable lead to their country. Dayanand Saraswati's mental and spiritual out look was orthodox but his was not a blind faith in empty ritual observances or a meaningless adherence to forms and superstitions often masquerading in the name of religious truths. He appeared before the public in India with the Vedas in his hands and gave a new message to the bewildered people torn between many sects and loyalties and offered to all an equal place in the social structure of the society...... The galaxy of martyrs, patriots and workers who have stead fastly proceeded along the line laid down by their master

(MaharshiDayanand) not only for social and spiritual but also for cultural and political uplift of India, have indeed lived dedicated lives.

The greatest service of the Arya Samaj is that it has roused among the people a profound sense of individual and national self respect, a virility of mind and a love of the country's culture and civilization, destroying the poisonous sense of inferiority complex which turns man into a coward."[19]

अर्थात् भारतमें अंग्रेज़के आगमन और पाश्चात्य शिक्षाके प्रवेशके कारण यह ख़तरा पैदा हो गया था कि एक दिन देशका जीवन और दृष्टिकोण राष्ट्रीयतासे शून्य हो जायगा।···

जातिके जीवनकी ऐसी नाजुक घड़ीमें अनेक महापुरुष कार्यक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए, जिन्होंने देशको आत्म-रक्षाका मार्ग दिखाया। महर्षि दयानन्द सरस्वतीका स्थान उन महापुरुषोंमें बहुत ऊँचा है। महर्षिका मानसिक एवम् आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्राचीन था; परन्तु इस प्राचीनतामें धर्मके रूपमें प्रच्छन्न रहनेवाले खोखले रूढ़िवाद अथवा कुसंस्कारोंके लिये कोई स्थान नहीं था। महर्षि देशवासियोंके सामने हाथमें वेदोंको लेकर प्रकट हुए और उन्होंने अनेक मत-मतान्तरोंमें बिखरे हुए जन-साधारणको मानवमात्रकी समानताके आधारपर निर्मित सामाजिक व्यवस्थाका मार्ग दिखलाया। ······देशभक्त महानुभावोंके जिस समूहने अपने महान् आचार्यकी परम्पराको अक्षुण्ण रखते हुए हिन्दुस्थानके सामाजिक, राजनैतिक, साँस्कृतिक और आध्यात्मिक अभ्युत्थानके लिये आत्म बलिदान किया उन्होंने निःस्सन्देह सर्वस्व समर्पणका जीवन-यापन किया।

आर्यसमाज द्वारा सम्पन्न सर्वश्रेष्ठ सेवा यह है कि उसने जनतामें वैयक्तिक एवम् राष्ट्रीय आत्म-सम्मानकी गम्भीर भावना, मनका चैतन्य और स्वदेशकी संस्कृति तथा सभ्यताके लिये प्रेम उत्पन्न करके हीनताकी उस विषैली मनोवृत्तिको विनष्ट कर दिया, जो कि मानवको भीरु बना देती है।
(डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जीका भाषण अ० भा० आर्य महा-सम्मेलन देहली, १९४४ में)

20. The systematic efforts were made by Christianity to uproot Hinduism, would be clear from what another

Christian Missionary W.J. Wilkins says in his book 'Daily life and work in India.' He said—

"......If this faith in the Divine origin of these books (the Vedas) could be destroyed, they could then reasonably hope that the people would listen with unprejudiced mind to their statements respecting Christianity."

..."With this object Christian schools were opened."[20]

अर्थात्—किस प्रकार ईसाइयतने हिन्दुधर्म को निर्मूल करनेके लिये नियमित रूपसे प्रयत्न किया, एक अन्य पादरी डब्ल्यू० जे० विल्किन्सकी पुस्तक "हिन्दुस्थानमें दैनिक कृत्य तथा जीवन" से स्पष्ट सिद्ध हो जायगा। उसने लिखा—

"......यदि उन पुस्तकों (वेदों) के अपौरुषेयत्व (दैवी प्रारम्भ) में विश्वासको विनष्ट किया जा सके, तब कहीं जाकर हम युक्तिपूर्वक आशा लगा सकेंगे कि हिन्दु लोग ईसाइयतके सम्बन्धमें हमारे कथनको निष्पक्षभावसे सुनने लगे।" ......बस इसी उद्देश्यसे ईसाई-स्कूल खोले गये थे।

21. Prejudicial Views of Westerners—

"He (rishi) still looks upon the working of nature with childish astonishment. One poet asks why the Sun does not fall from the Sky, another wonders where the stars go by day; while another wonders that the waters of all rivers constantly flow into it but never fill the Ocean."[21]

अर्थात्—यह (वैदिक ऋषि) प्रकृतिकी कार्य-पद्धतिको बच्चोंकी तरह हैरान होकर देखता है। एक कवि (वैदिक ऋषि) प्रश्न करता है कि सूर्य आकाशमेंसे गिर क्यों नहीं पड़ता? दूसरा चकित होकर पूछता है कि तारामण्डल दिनके समय कहाँ चला जाता है? एक तीसरा इस बातपर हैरान होता है कि समस्त नदियोंका जल बहकर सागरमें जाता है और फिर भी उसे भर क्यों नहीं पाता?

(प्रो० ए० ए० मैक्डानल्डका संस्कृत साहित्यका इतिहास)

22. "We have in the Rigveda incest, seduction, conjugal unfaithfulness, the procuring of abortion as also deception, theft and robbery."[22]

अर्थात्—ऋग्वेदमें हम, व्यभिचार, फुसलाहट, यौन अनिष्ठा, गर्भपातमें सफलता आदि पाते हैं; साथही धोखा-धड़ी, चोरी और डाका-ज़नी भी।

टिप्पणी—उल्लेखनीय है कि ऋग्वेदमें उक्त अनैतिक बातें उन्हें दीखती हैं, जिनकी धर्म-पुस्तक बाइबलमें लिखा है—

"He (God) gave orders to steal (Ex. 3 : 21-2) to kill."[23]

Commit adultry (Hosia 1 : 2)[24] and incited the jews to appropriate the property of their neighbours."[25]

अर्थात्—उस (ख़ुदा) ने चोरी करने, क़त्ल करने, व्यभिचार करनेकी आज्ञा दी और यहूदियोंको आदेश दिया कि अपने पड़ोसियोंकी सम्पत्तिको हड़प लें।

(ठीक है 'सावनके अन्धेको रहा ही दीखता है।)

उद्धरण स्रोत

(1) Life and letters of Maxmuller

(2) ,, ,, vol II pp 418

(3) ,, ,, ,, 400

(4) Preface-English-Sanskrit Dictionary by Sir William Jones

(5) Preface, Sanskrit-English Dictionary by Sir Monier Williams pp IX 1899

(6) Life and letters of Lord Macaulay pp 329-330

(7) Macaulay's letter to Duke of Argyle dated 16-12-1868

(8) ,, to Byramje Malabari dated 29-1-1889

(9) ,, to hisson

(10) ,, to M. N. Majumdar 1889

(11) भारतमें अंग्रेजी राज्य-१८५७ का इतिहास लेखक श्री जॉन

(12) मिस्टर मैंगल्स अध्यक्ष ईस्टइण्डिया कम्पनी--आर्योदय १९-३-६७

(13) Evidence of Sir Charles Trevelyon before the Select Committee of the House of Lords on 28-6-1853

(14) Evidence of Sir Fredrick Holliday before the House of Commons on 25-7-1853

(15) Rev. W. J. Wilkins Work and life in India PP 252

(16) Pope

(17) Robinson's book-Letters from St Xzavior

(18) स्वामी विवेकानन्द अमरीका में—प्रताप ८-११-१९६७

(19) Dr. S. P. Mukerji's Address—
at the All India, 5th Arya Maha Sammelan 1944, Delhi

(20) Daily life and work in India by W. J. Wilkinson

(21) Pro. A. A. Macdonald—
History of Sanskrit literature quoted in 'the Vedas' PP 55

(22) History of Indian Literature quoted in 'the Vedas' PP 55

(23) Bible—Ex. 32: 27, 3: 21-2 1:2

(24) Ibid—Hosia

(25) Ibid—Deut 20:10-7

४

विदेशी विद्वानोंके लेखोंका प्रभाव

ब्राह्म समाज तथा उसके नेताओं पर

(क) रोम्यो रोलाँने Prophets of New India के पृष्ठ ६७ पर लिखा—

"Keshab Chandra Sen ran counter to the rising tide of National Consciousness then feverishly awakening."[1]

अर्थात्—केशवचन्द्र सेन, राष्ट्रीय चेतनाकी लहर, जो कि उन दिनों प्रचण्ड वेगसे जागृत हो उठी थी, के विरुद्ध द्रुतगतिसे चलते थे।

(ख) ६ अप्रैल १८७६ को कलकत्तेके अपने व्याख्यानमें बाबू केशवचन्द्र सेन ने India asks who is Christ ? में कहा था—

"My Christ, My Sweet Christ, the brightest jewel of my heart, the necklace of my soul for twenty years, have I cherished him in my miserable heart."[2]

अर्थात्—मेरा मसीह, मेरा मधुर मसीह, मेरे हृदयका सबसे आभावान् हीरा, मेरे आत्माका कण्ठहार, गत् बीस वर्षोंसे मैंने उसे सन्तप्त हृदयमें धारणकर रक्खा है।

(ग) रोम्यो रोलाँने परमहंस रामकृष्णकी जीवनीमें लिखा—

"Christ had touched him (Keshab Chandra Sen) and it was to be his mission of life to introduce him to Brahm Samaj. Keshab not only accepted and adopted Christianity, but extolled it with greatness and was enlightened with it. He called it the loftiest expression of the World's religious consciousness."[3]

अर्थात्—ईसाने उस (केशवचन्द्र सेन) के अन्तस्तलको स्पर्श किया था और यह उसका जीवनोद्देश्य बन गया था कि वह उसे (ईसाको) ब्राह्मसमाज में प्रविष्ट करे। केशवने ईसाइयतको न केवल अंगीकार और धारण ही किया था, प्रत्युत इसे महत्वके उच्चासनपर आसीन् कर दिया था और स्वयं इससे आलोकित होता हुआ इसे विश्वभरकी धार्मिक चेतनाका उत्कृष्टतम विचार कहा करता था।

(घ) रोमन रोलांने आगे लिखा—

"Did anything still separate him (Keshabchandra Sen) from Christianity ?"[4]

अर्थात्—क्या अबभी कोई बात उसे ईसाइयतसे पृथक् रख रही थी?

(च) फ्रेंक लेल्लिगटन ने Brahmasamaj and Aryasamaj नामी पुस्तकमें लिखा—

"Let India accept Christ" were the words of Keshab Chandra Sen, one of the leaders of Brahm Samaj of India, when he preached to a large congregation at Calcutta in 1879. To Christian ears no words would be more welcome.[5]

अर्थात्—हिन्दुस्थानके ब्राह्मसमाजके एक नेता, केशवचन्द्र सेनने १८७९ में अपने कलकत्तेके व्याख्यानमें एक विशाल जन-समुदायको उपदेश देते हुए कहा—

"हिन्दुस्थानके लिये उचित है कि वह ईसा-मसीहको स्वीकार कर ले:" एक ईसाईके कानके लिये इन शब्दोंसे अधिक कौनसी ध्वनि श्रुति-मधुर हो सकती है?

(छ) मैक्समूलर Biographical Essays के पृष्ठ ८९ पर क्लार्क बोयेसका निम्न प्रमाण उद्धृत करता है—

"Believers in Keshab Chandra Sen have forfieted the name of theists because their leader has been more inclined to the doctrine of Christianity."[6]

अर्थात्—केशवचन्द्रसेनके श्रद्धालु अब 'ब्रह्म' नामके अधिकारसे वञ्चित हो गये हैं; क्योंकि उनका नेता दिन-प्रतिदिन ईसाइयतके सिद्धांतोंकी ओर झुकता चला जा रहा है।"

(छ) आदरणीय श्री स्वामी विवेकानन्दजीपर मेक्समूलर का अद्भुत जादू—

सायणचार्यका पुनर्जन्म

स्वामीजी (शिष्य के प्रति) : "क्या तुम जानते हो कि सम्भवत: सायणाचार्यने ही वेदोंपर अपने भाष्यका पुनरुद्धार करनेके हेतु मैक्समूलरके रूपमें पुनर्जन्म लिया है, यह मेरी धारणा है और वह दृढ़ हो गई है। अपने देशमें भी तुम्हें शायद कोई ऐसा विद्वान् न मिलेगा जिसका वेदोंमें और वेदान्तमें इतना प्रवेश हो और जो इतना अध्यवसाई हो। और, इस सबके ऊपर उनमें परमहंस श्री राम कृष्णके प्रति कितनी अगाध श्रद्धा है। क्या तुम्हें पता है कि वे उन्हें दैवी अवतार मानते हैं? और जब मैं उनका अतिथि था तो उन्होंने मेरे प्रति कितने अधिक स्नेहका परिचय दिया। उन वृद्ध पुरुष और उनकी पत्नीके दर्शन कर मुझे लगा मानो वे अपना जीवन वशिष्ठ और अरुन्धतीके समान बिता रहे हैं। मुझे विदा करते समय उस वृद्ध मनीषिकी आँखें अश्रुपूर्ण हो गई।"

शिष्य—किन्तु श्रीमन्! यदि सायण स्वयं मैक्समूलर बनकर आये हैं, तो उन्होंने इस पवित्र भारत भूमिपर जन्म न लेकर म्लेच्छ रूपमें जन्म लेना क्यों उचित समझा ?

स्वामीजी—"मैं आर्य हूं और दूसरे म्लेच्छ—यह भेदभाव अज्ञानवश उत्पन्न होता है; किन्तु जो ज्योतिपुंज वेदोंका भाष्यकर है, उसके निकट वर्णभेद और जाति-भेद कहाँ? उसके लिये यह सब अर्थ-हीन है। वह मानवताके कल्याणके लिये अपनी इच्छानुसार कहीं भी मानव-देह ग्रहण कर सकता है। विशेषकर यदि वह ऐसे देश में, जो वैभव और विद्वत्तताओं दोनोंमें सर्वोपरि है, जन्म लेना न चुनते, तो इन विशाल ग्रन्थोंके प्रकाशन हेतु उन्हें इतनी विशाल धन-राशि कहाँसे उपलब्ध होती? क्या तुमने नहीं सुना कि ईस्ट इण्डिया कंपनीने ऋग्वेद प्रकाशनके लिए नक़द नौ-लाख रुपये प्रदान किये थे? और यह धन-राशि भी पर्याप्त न निकली? इस देशमें सैंकड़ों पंडितों को मासिक वेतनके आधारपर इस कार्यके लिये जुटाया गया। क्या किसीने इस देशमें इस युगमें ज्ञानके लिये इतनी तड़पन देखी है? ज्ञान और सत्यके लिये धनका इतना उदार विनियोग देखा है? मैक्समूलरने

अपने प्राक्कथन में स्वयं लिखा है कि पच्चीस वर्ष उन्होंने केवल पाण्डुलिपि तय्यार करनेमें लगाये। साधारण मनुष्यके लिये यह सम्भव नहीं है कि वह एक प्रकाशनके हेतु जीवनके पैंतालिस वर्षों तक स्वयं को रगड़ता रहे।[7]

नोट—इसी मैक्समूलरकी विद्याके सम्बन्धमें महर्षिने सत्यार्थ प्रकाशके ११वें समुल्लास पृष्ठ २९२ पर लिखा—

"जो लोग कहते हैं कि जितना संस्कृत मोक्षमूलर साहब पढ़े हैं, उतना कोई नहीं पढ़ा। यह बात कहने मात्र है; क्योंकि 'निरस्त पादपे देशे एरण्डेऽपि द्रुमायते' अर्थात् जिस देशमें कोई वृक्ष नहीं होता उस देशमें एरण्ड हीको बड़ा वृक्ष मान लेते हैं वैसे ही योरुप देशमें संस्कृत विद्या का प्रचार न होनेसे जर्मन लोगों और, मोक्षमूलर साहबने थोड़ा-सा पढ़ा वही उस देश के लिए अधिक है······

महर्षिने सायणाचार्यके सम्बन्ध में लिखा—

"यत् सायणाचार्येण वेदानां परममर्थमविज्ञाय सर्वे वेदाः क्रियाकाण्ड तत्पराः सन्तीत्युक्तं, तदन्यथास्ति कुतः तेषां सर्व विद्यान्वितात्······[9]

अर्थात्—···सायणाचार्यने वेदोंके श्रेष्ठ अर्थोंको नहीं जानकर कहा है कि सब वेद क्रियाकाण्डका ही प्रतिपादन करते हैं। यह उनकी बात मिथ्या है; क्योंकि वेदोंमें सब विद्याओंका वर्णन है।

उद्धरण स्रोत

(1) Prophets of New India by Roman Rolland pp 97

(2) Keshab Chandra Sen's Calcutta Lecture on 9-4-1879

(3) Life of Paramahans Rama Krishna by Roman Rolland.

(4) Ibid.

(5) Brahmasamaj and Aryasamaj by Frank Lallington. page 9.

(6) Biographical sketches by Maxmuller pp 89.

(7) उत्तिष्ठित जाग्रत पृष्ठ १४४—राष्ट्रधर्म प्रकाशन; लखनऊ।

(8) सत्यार्थ प्रकाश समु० ११ पृष्ठ २६२ ।

(9) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका शताब्दी संस्करण पृष्ठ, ६६० ।

५

क्या आर्य लोग कहीं बाहरसे आये ?

विदेशी जातियों तथा विधर्मी पाश्चात्य तथा-कथित विद्वानोंने सब प्रकारके हथकण्डे व्यवहृत करके—यथा मौखिक प्रचार, ग्रंथ प्रसार, विद्या विचार एवं विचार-गोष्ठियोंके माध्यमसे जन-जनके हृदयमें यह विकृत भावना अङ्कित करनेका प्रयास किया कि प्राचीन आर्यलोग इस देश–हिन्दुस्थान–के मूल निवासी नहीं थे; प्रत्युत ईरान, तुर्किस्तान आदि मध्य एशियाके विविध प्रदेशोंसे आजसे दो-तीन हज़ार वर्ष पूर्व आक्रामिकके रूपमें आये थे। इनके पास घातक शस्त्र और दूरमार अस्त्र थे। इनके शरीर सुडौल और स्वास्थ्य उत्तम था। इस प्रकार अपनी चतुर्मुखी उत्कृष्टताके बल-बूतेपर इन्होंने हिन्दुस्थानके आदिवासी—कोल, गौंड, भील और सन्थाल आदि—निर्बल, अशक्त, असभ्य और एक प्रकारसे निःशस्त्र जातियोंको अनायास ही परास्त कर लिया; उन्हें मार-मारकर निर्जन जङ्गलों, ऊँचे पर्वतों तथा ऊबड़-खाबड़ उपत्यकाओं में सिर छुपानेके लिये विवशकर दिया और स्वयं गङ्गा-सिंधुकी घाटियों, उर्वरा भूमियों, शस्य-श्यामला प्रान्तों तथा स्वास्थ्य-प्रद प्रदेशोंपर अपना प्रभुत्व जमाकर अपने गण-राज्य स्थापित कर लिये। उन आर्योंके अनन्तर शक, हूण, सीथियन, मंगोलियन, तातारियन, यूनानी, ईरानी, दुर्रानी, अफ़गान, पठान और मुग़ल, आदि क़बीलोंने इधर मुँह किया; मगर आर्योंके मुक़ाबिलेपर नहीं ठहर सके—कुछ परास्त होकर अपने-अपने देशोंको भाग गये और उनमेंसे बहुत-सी जातियां आर्योंकी सामाजिक व्यवस्थामें कुछ इसतरह लीन होगईं कि उनका पृथक् अस्तित्व ही लुप्त-सा हो गया है। शेष जातियोंके साथ आर्योंके निरन्तर घमासानके युद्ध होते रहे। आर्यों (हिन्दुओं) ने कभी किसी विदेशी सत्ताको अपने ऊपर सुखपूर्वक तो शासन नहीं करने दिया। मुग़लसाम्राज्यके विध्वंसके साथही योरुपकी कतिपय जातियों—फ्रेंच, डच, पुर्तगीज़ और अंग्रेज़ोंने यहाँ प्रवेश किया। उक्त परम्परागत विदेशीय-जातियोंके हिन्दुस्थानमें प्रवेशकी गाथाओंका गान करके इन योरुपियन षड्यन्त्रकारी विद्वानोंने यह सिद्ध करनेका

प्रयास किया कि हिन्दुस्थानपर किसी जाति विशेष (विशेषतः आर्यजाति) का कोई पैत्रिक स्वत्व नहीं है। समस्त जातियाँ—आर्योंसे अंग्रेज़ोंतक—समय-समयपर यहां यात्री, मुसाफिर, पर्यटक, शरणार्थी, विजेता, आक्रान्ता, लुटेरे या व्यापारी रूपमें इस देशमें आईं और जितनी कालावधि तक यहांपर अपना अधिकार स्थिर रख सकीं, यहां डटी रहीं; और जब इसे क़ायम न रख सकीं, यहाँसे चलती बनीं। यदि उन पाश्चात्य लेखकों एवम् विचारकोंकी मनोवृत्तिको एक वाक्यमें वर्णित करना हो तो यूँ कह सकते हैं कि—

हिन्दुस्थान एक विशाल धर्मशाला अथवा विस्तृत सार्वजनक विश्राम-गृह या सराय है, जिसपर सामान्यतः इसमें निवास करनेवाले सम्पूर्ण जन-समुदायोंका समान अधिकार है; परन्तु जिस प्रकार पैत्रिक सम्पत्ति—पर उत्तराधिकारियोंका विशेष स्वत्व अथवा दायित्व होता है, वैसा किसीका भी नहीं ; क्योंकि धर्मशाला, विश्राम-गृह अथवा सरायके साथ वहाँ रहने वालोंका अस्थायी-प्रेम और क्षणिक लगाव होता है, स्थायी अथवा शाश्वत नहीं। अतः जैसा अधिकार इस देश पर मुग़लों, पठानों, पारसियों या अंग्रेजों का है, हिन्दुओंका उससे रत्ती-भर भी अधिक* नहीं है।

---

* १. यह उल्लेखनीय तथ्य है कि अंग्रेज़ी राज्य-विस्तार तथा इसके दृढ़िकरणके दिनोंमें इङ्गलैंड निवासी इतिहास लेखकोंने आग्रह पूर्वक बारम्बार इस बातकी आवृत्तिकी कि आर्योंके विशाल-समूह बाढ़-ग्रस्त नदीकी उत्ताल तरङ्गोंकी भांति भारतकी पश्चिमोत्तर दिशामें स्थित पर्वतीय-दर्रों (मार्गों)—दर्रा खैबर, दर्रा बोलान और मारगल्ला आदि—में से निरन्तर आक्रामिक रूपमें आते रहे और शनैः शनैः भारत-भरपर छा गये। उन्होंने श्याम-वर्ण चपटी-नाकवाली असभ्य, निःशस्त्र एवम् दुर्बल द्रविड़ जातियों—कोल, भील, सन्थाल आदि—को, जिन्हें ये असुर, दस्यु, दास आदि नामोंसे पुकारा करते थे, परास्त करके पूर्व तथा दक्षिणके उत्तम प्रदेशोंपर अपना प्रभुत्व जमा लिया। (ब्रिटिश इतिहास लेखक जे० व्हीलर द्वारा लिखित 'हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया' प्रकाशित १८७४)

नोट—इतनी बड़ी ऐतिहासिक घटनाका दुःसाहस पूर्वक उल्लेख करते हुए उक्त व्हीलर महोदय न तो आर्योंके आक्रमणका समय निर्धारित कर सके हैं, न उनका वास्तविक उद्गम-स्थान, न आक्रमणका कोई मार्ग और न ही उनके मार्गमें आनेवाले देशोंका नामोल्लेख ही कर सके हैं। इतनी मात्र भूलसे उनके झूठका बना बनाया महल धड़ामसे धराशायी हो जाता है।

(शेष अगले पृष्ट पर)

उक्त सम्पूर्ण भ्रान्तधारणाओंका विध्वंस करनेके लिये महर्षि दयानन्द ने लिखा—

(क) "किसी संस्कृतकी पुरानी पुस्तकमें नहीं लिखा कि आर्य बाहर से आये। फिर विदेशियोंके अनर्गल प्रलापको कैसे स्वीकार किया जा सकता है?

(ख) 'इस देशके तीन नाम प्रसिद्ध हैं (१) प्राचीन आर्यावर्त्त (२) मध्यकालीन् भारत और (३) अर्वाचीन हिन्दुस्तान।' आर्यावर्त्त से पहले यदि कोई नाम इस देशका था, तो बताइये कि वह क्या था? इससे सिद्ध हुआ किआर्योंका निवास-स्थान होनेसे आर्योंने ही उसे यह नाम दिया। अतः आर्योंसे पहले इस देशमें कोई नहीं रहता था।'

(ग) "कोई कहते हैं कि ये लोग (आर्य) ईरानसे आये। इसी से इन लोगोंका नाम आर्य हुआ है इनके पूर्व यहां जंगली लोग बसते थे कि जिनको असुर और राक्षस कहते थे। आर्य लोग अपनेको देवता बतलाते थे।

उत्तर —यह सर्वथा झूठ है;.........."

---

२. 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया' के लेखक ई० जे० रेपसन जिनकी पुस्तक १९२२ में प्रकाशित हुई थी, व्हीलरसे भी चार क़दम आगे बढ़कर डबल गप्प हांकते हुए कहते हैं कि **जिस प्रकार आर्य लोग भारतमें बाहर से आये थें, उसी प्रकार द्रविड़ लोग भी कुछ शताब्दियां पूर्व स्थानान्तरण करके वहां आये थे।**

'स्वार्थी दोषो न पश्यति' के अनुसार स्वार्थान्ध अंग्रेज़ इतिहास लेखकोंने अपने राज्य-शासनको न्यायाधारित सिद्ध करनेके विचारसे आर्योंके भारतेतर देशोंसे यहां आनेकी कपोल-कल्पना स्थापित की और कहा कि ये आक्रामिक शक्तियां पश्चिम दिशासे बढ़तीं-बढ़तीं पूर्वदिशामें छा गईं।

फिर इन तथा-कथित इतिहास लेखकोंको ज्ञात हुआ कि क्योंकि महाभारतका युद्ध-स्थल कुरुक्षेत्र आर्योंकी प्रगतिशील आक्रामिक सेनाओंके मार्गमें पहले आता है तथा तत्पश्चात् और आगे बढ़नेपर अयोध्या-नरेश भगवान् श्रीरामकी राजधानी अयोध्या स्थित है, इसपर 'मारो घुटना और फूटे आंख' की प्रसिद्ध लोकोक्तिके अनुसार उक्त इतिहास लेखक अंग्रेज़ने झट परिणाम निकाला कि महाभारतका युद्ध रामायणकी घटनाओंसे पूर्व ही हो चुका था।

(शेष अगले पृष्ट पर)

(घ) मनु महाराजके निम्न श्लोक कि—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।

अर्थात्—संसार-भरके समस्त निवासी इस देशमें जन्मे हुए ब्राह्मणोंके चरणोंमें बैठकर अपने-अपने वर्णाश्रमानुकूल शिक्षा ग्रहण करें, का उल्लेख करके महर्षिने आर्यावर्तको जगद्गुरुके पदपर आसीन करते हुए सब प्रकारकी हीन-भावनाओंकी इतिश्री करदी है।

(ङ) "It is opposed to their (Hindus') foreign origin in that neither in the Code of Manu, nor I believe in the Vedas, nor in any book that is certainly older than the Code (of Manu) is there any allusion to a prior evidence or the knowledge of more than the name of any country out of India. Even mythology goes no further than the Himalayan Chain in which is fixed the habitation of gods."[2]

अर्थात्—यह बात उन (हिन्दुओं) के भारतेतर स्रोतोद्भवके विरुद्ध है; क्योंकि न तो मानव धर्म शास्त्रमें और जहां तक मेरा विश्वास है न स्वयं वेदमें और न ही किसी अन्य पुस्तकमें जो निश्चित रूपसे मानव-धर्म शास्त्र से पुरानी हो, इस बातका कहीं संकेत भी पाया जाता है कि आर्यलोग किसी अन्य देशके निवासी थे। यहां तक कि भारतके बाहर किसी देशका नामभी

परन्तु भारतीय गणनाके अनुसार महाभारतका महा-समर द्वापर और कलियुगकी सन्धिवेलामें आजसे लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व और रामायणकी घटनायें त्रेतायुगके अन्तमें अथवा आज़से लगभग नौ लाख वर्ष पूर्व घटित हो चुकी थीं।

३. प्राचीन विदेशी 'चीनी' पर्यटकों यथा फ़ाहियान, सुङ्गमून तथा ह्वानसांग आदि एवम् यूनानी ऐतिहासिकोंके लेखोंमें इसबातका कोई संकेत भी नहीं मिलता कि आर्योंने कहीं बाहरसे आकर भारतपर आक्रमण किया था।

अर्वाचीन हिन्दु अथवा मुसलमान राजाओं, नवाबों, अथवा शाहनशाहोंके दरबारी इतिहास लेखकोंकी पुस्तकोंमें भी इस प्रकारकी किसी घटनाका उल्लेख उपलब्ध नहीं होता।

हमें उपलब्ध नहीं होता। यहां तक कि देवगाथाओंमें भी हिमगिरि पर्वत-माला का ही पता चलता है, जिसमें देवगण का निवास माना जाता हैं।

(एलफिन्सटनका भारतका इतिहास, प्रथम खण्ड)

(च) "I must, however, begin with a canded admission that so far as I know none of the Sanskrit books, not even the most ancient, contain any distinct reference or allusion to the foreign origin of the Hindus."[3]

अर्थात्—मुझे एक स्पष्ट स्वीकारोक्तिसे आरम्भ करना है कि जहां तक मैं जानता हूं किसी भी संस्कृतकी पुस्तकमें, यहाँ तक कि उनमेंसे प्राचीनतम में भी, हिन्दुओंकी भारतेतर उत्पत्तिका स्पष्ट अथवा अस्पष्ट वर्णन नहीं हैं।

(जे० मूर की 'ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट्स्, खण्ड १२)

(छ) "I have gone over the name of 'Dasyus' or 'Asuras' mentioned in the Rigveda with the view of discovering whether any of them could be regarded as of Non-Aryan or (indigenous) origin, but I have not observed any that appear to be of this character."[4]

अर्थात्—ऋग्वेदमें व्यवहृत 'दस्यु' एवम् 'असुर' शब्दोंका मैंने अनुसंधान किया है ताकि पता लग सके कि क्या इनमेंसे कोई अनार्य अथवा आदिवासी आरम्भका हो सकता है? परन्तु मुझे इन दोनोंमेंसे कोई भी ऐसा प्रतीत नहीं हुआ।

(ज) "मुझे इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि भारतवर्ष ही आर्योंकी जन्म भूमि है और वे बाहरसे नहीं आये।"......

"भारतवर्ष ही आर्यों और आर्येतरोंका जन्म स्थान था। आर्यों और द्रविड़ोंको भिन्न-भिन्न नस्लोंसे उत्पन्न हुआ मानना असंगत है। भाषा-भेद का नस्ल भेदसे कोई सम्बन्ध नहीं।[5]

(रामायणका अध्ययन—दीवान बहादुर के० एस० रामास्वामी शास्त्री)

उद्धरण स्रोत

(1) सत्यार्थ प्रकाश समु० पृष्ठ १६४

(2) Elphinstone History of India Vol I

(3) Original Sanskrit Texts XII—J. Muir

(4) Ibid Vol 12, Page 387.

(5) रामायण का अध्ययन —दीवान बहादुर के एस० रामा स्वामी शास्त्री (सार्वदेशिक ४-४-७१)

६

विदेशियों द्वारा वेद सम्बन्धी अनर्गल प्रचार

विद्वेषियों एवम् विधर्मी विदेशियोंने वेद, जो भगवान् मनुके आदेशानुसार **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'** धर्मका मूल-स्रोत है, के सम्बन्ध में निम्न प्रकारकी भ्रान्त-भावनाएँ प्रसारित कर रक्खी थीं—

१. वेदका प्रादुर्भाव दो-चार हज़ारवर्षसे अधिक प्राचीन नहीं है;

२. वेद गडरियोंके गीत और जङ्गली-जातियोंकी कथायें हैं। जैसा कि प्रों० मेक्समूलर ने 'भारत हमें क्या सिखाता है' के पृष्ठ १० पर निम्न शब्दों में लिखा—

> "मैं नहीं चाहता और न दावा करता हूं कि कोई उसे (वेदको) जंगली जातिकी कथाओं, परम्परा और गीतोंसे अधिक महत्व दे, जिसे हम प्रकृतिकी स्थिति कहते हैं। उसमें रहने वालोंके गीतों, परम्पराओं एवं उनकी कथाओंका जो महत्व है, वही महत्व मैं प्राचीन भारतीय साहित्यको देना चाहता हूं ...."

३. वेद जादू-टोने, मोहन-मारण-उच्चाटण एवम् वशीकरणके अनुष्ठानोंसे भरे पड़े हैं।

४. वेद अग्नि, जल, विद्युत्, मेघ, वृक्ष, नदी-नाले और पर्वत आदिकी पूजाका आदेश देते हैं अर्थात् वेदमें बहुदेव-पूजनका विधान है और कि

५. वेद एकेश्वर पूजासे शून्य हैं।

उक्त युक्ति-शून्य, प्रमाण-रहित, अनर्गल प्रलापोंका अकाट्य-युक्तियों और प्रबल-प्रमाणों द्वारा खण्डन करके महर्षि दयानन्द सरस्वतीने जन-जन के मनमें वेदकी उत्कृष्टता प्रस्थापित की।

७

प्रबल शब्दोंमें महर्षिने स्वराज्यकी भावनाका जातिके मस्तिष्कमें पुनः उद्बोधन किया

महर्षि दयानन्द सरस्वतीने सम्वत् १९३२ तदनुसार सन् १८७५ ईस्वीमें अपने ग्रंथ-रत्न 'सत्यार्थ-प्रकाश' का प्रथम संस्करण प्रकाशित कराया था।

चक्षु रामाङ्क चन्द्रेऽब्दे चैत्रे मासि सिते दले।
दशम्यां गुरुवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया ॥

अर्थात्—मैंने यह ग्रंथ चैत्र वदी दशमी गुरुवार सम्वत् १९३२ (१९३२-५७=१८७५ ईस्वी) को आरम्भ किया।

उसी वर्ष प्रार्थना-पुस्तक **'आर्याभिविनय'** भी छपाई। इस पुस्तकमें अनेक स्थानोंपर देश-भक्ति, स्वराज्य-प्रेम और चक्रवर्ती-राज्यके स्थापन करनेकी एवम् सम्पूर्ण प्रकारके धनैश्वर्य उपलब्धिकी प्रार्थनाएँ अङ्कित करके उत्कृष्टतम भावनाओंको जागृत किया गया है। यह महर्षिका महान् उपकार है। कुछ उदाहरण नीचे पढ़िये।

प्रथम-प्रकाशमेंसे

मन्त्र १. शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।
शंन इन्द्रो बृहस्पतिः शंनो विष्णुरुरुक्रमः ॥[1]

अर्थात्—हे साम्राज्य प्रवर्तक, राज्य विधायक और दरिद्रता विनाशक नामोंसे परमात्माको सम्बोधित किया।

मन्त्र ५. अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रव स्तमः। देवो देवेभिरागमत्।[1]

अर्थात्—हे जगदीश! ······जिससे हम और हमारा राज्य दिव्य-गुण युक्त हो। वह राज्य आपका ही है······।

मन्त्र १६. ऊर्ध्वो दः पाह्य हसो निकेतुना विश्वं समत्रिणं
क्रधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥[1]
(ऋ० १.३.१०.१४)

अर्थात्—हमको विद्या, शौर्य, धैर्य, बल, पराक्रम, चातुर्य, विविध धन, ऐश्वर्य, विनय, साम्राज्य, सम्मति, सम्प्रीति, स्वदेश-सुख सम्पादनादि गुणोंसे अधिक उत्तम करो······

मन्त्र १८. ऋजुनीति नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान्,[1]
अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ (अ० १-६-१७-१)

अर्थात्—हे **महाराजाधिराज** ! परमेश्वर ! आप हमको कोमलत्वादि गुण-विशिष्ट, **चक्रवर्ती** राजाओंकी **नीतिको** कृपा-दृष्टिसे प्राप्त करो हमको वरराज्य, वरविद्या, वरनीति देओ···हमकोभी सत्यविद्यासे युक्त **सुनीति** देके **साम्राज्याधिकारी** सद्यः कीजिये·········हे कृपा सिन्धो भगवन् ! हम पर सहायता करो जिससे **सुनीतियुक्त** होके हमारा **स्वराज्य अत्यन्त बढ़े** ।

मन्त्र ३५. सेमं नः काममापृण गोभिरश्वैः शतक्रतो ।
स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥[1]

अर्थात्—अश्व घोड़ादि पशुओं और **चक्रवर्ती राज्यैश्वर्यसे** हमारे कामको परिपूर्ण करो ।

मन्त्र ३८. गयस्फानो अमीवहावसुवित्पुष्टि वर्द्धनः ।
सुमित्रा सोम नो भव ॥[1]

अर्थात—हे परमात्मभक्त जीवो ! अपना जो इष्ट परमेश्वर जो **प्रजा, धन, जनपद** और **स्वराज्य** का बढ़ाने वाला है······

मन्त्र ४३. वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरे भरे।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं गृधि प्रशत्रूणां मघवन्वृष्ण्यारुज ॥[1]

अर्थात्—······हमारे लिये **चक्रवर्ती राज्य** और **साम्राज्य धनको** सुख-से प्राप्त करो अर्थात् आपकी करुणासे हमारा **राज्य** और **धन** सदा वृद्धि-को प्राप्त हो ······।

द्वियीय प्रकाश में से

मन्त्र १. ओं सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै । तेजस्विना वधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥[2]

अर्थात्—आपके अनुग्रहसे हम सब लोग परस्पर प्रीतिमान्, रक्षक, सहायक, परम पुरुषार्थी हों, एक दूसरे का दुख न देख सकें, स्वदेशस्थादि मनुष्योंको अत्यन्त परस्पर निर्वैर प्रीतिमान्, पाखण्ड-रहित करें ...... हे प्रजापतेः मुझको अच्छी प्रजा, पुत्रादि हस्त्यश्वगवादि उत्तम पशु, सर्वोत्कृष्ट विद्या और चक्रवर्ती राज्यादि परमैश्वर्य जो स्थिर परमसुखकारक उसको शीघ्र प्राप्त कर।......

हे प्राणपते! प्राण प्रिय, प्राणपिता, प्राणाधार, प्राणजीवन, स्वराज्य-प्रद! मेरे प्राणदेने वाले आदि आप ही हो, मेरे सहायक आपके बिना कोई नहीं है, हे महाराजाधिराज! जैसा सत्य, न्याययुक्त अखण्डित आपका राज्य है, वैसा न्यायराज्य हम लोगोंका भी आपकी ओरसे स्थिर हो। आप... के राज्यके अधिकारी किङ्कर अपने कृपा-कटाक्षसे हमको शीघ्र कर।......

मन्त्र ३१. इषे पिन्वस्व। ऊर्जेपिन्वस्व। ब्रह्मणे पिन्वस्व। क्षत्राय पिन्वस्व। द्यावापृथिविभ्यां पिन्वस्व। धर्मासि सुधर्म। अमेन्यस्मे नृम्णानिधारय। ब्रह्म धारय। क्षत्रंधारय। विशं धारय॥[३]

अर्थात्—हे महाराजाधिराज पर ब्रह्मन् "क्षत्राय" अखण्ड चक्रवर्ती राज्यके लिये शौर्य, धैर्य्य, नीति, विनय पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त कृपासे हम लोगोंको यथावत पुष्टकर अन्यदेशवासी राजा हमारे देशमें कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों हे स्वर्ग पृथिवीश सर्वोत्कृष्ट मोक्ष-सुख संसार-सुख इन दोनोंके लिये हमें समर्थ कर .... हमारे लिये विद्या, पुरुषार्थ, हस्ति, अश्व, सुवर्ण हीरादि रत्न, उत्कृष्ट राज्य, उत्तम पुरुष और प्रीत्यादि पदार्थोंको धारण कर जिससे हम किसी पदार्थके बग़ैर दुःखी न हों। हे सर्वाधिपते ब्राह्मण पूर्ण विद्यादि गुण युक्त "क्षत्र" बुद्धि, विद्या तथा शौर्यादि गुण-युक्त "विश" अनेक विद्योद्यम, बुद्धि, विद्या, धन और धान्यादि बल-युक्त तथा शूद्रादि भी सेवादि गुणयुक्त उत्तम हमारे राज्य में हों। इन सबका धारण आप ही करो जिससे अखण्डैश्वर्य हमारा आप की कृपा से सदा बना रहे।

मन्त्र ५५. इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभय श्रियमश्नुताम्। मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा॥[३]

अर्थात्—हे महाविद्य, महाराज, सर्वेश्वर मेरा "ब्रह्म" (विद्वान्) और "क्षत्र" (राजा, राज्य, महाचतुर, न्यायकारी शूरवीर राजादि क्षत्रि) ये दोनों आपकी अनन्त कृपासे यथावत् अनुकूल हों। "श्रियम्" सर्वोत्तम

विद्यादि लक्षणयुक्त **महाराजश्री**को हम प्राप्त हों। हे 'देवा:' विद्वानो! दिव्य ईश्वरगुण परम कृपा आदि उत्तम विद्यादि लक्षण समन्वित **श्री** मुझ में अचलता से धारण कराओ। उसको मैं परम प्रीतिसे स्वीकार करूं। और उस **श्री आदि** विद्या, सद्गुण वा सर्व संसारके हितके लिये तथा **राज्यादि प्रबन्धके लिये** व्यय करूं।

आठ प्रार्थना-मन्त्रोंमेंसे आठवां मन्त्र—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्य-स्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम।[3]

अर्थात्—हम लोगोंको विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्यकी प्राप्ति-के लिये अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगोंके मार्गसे सम्पूर्ण प्रज्ञान और उत्तम कर्म प्राप्त कराइये.........

उद्धरण स्रोत

(1) आर्याभिविनय प्रथम प्रकाश —महर्षि दयानन्द
ऋग्वेद १.६ १८.४; १.१.१.५; १:३.१० १४,१,६ १७.१; १.१.३१.८ १६.२१.२ १.७.१४.४।
द्वितीय प्रकाश

(2) तैत्रिरीयारण्यके ब्रह्मानन्द वल्ली प्रपाठक १० अनुवाक १

(3) यजुर्वेद ३८.१४, ३२.१६, ४.१६

८

आर्य्यावर्त्तकी महिमा

आर्य्यावर्तकी महिमाका गान करते समय महर्षि आनन्द-विभोर हो जाया करते थे। आपने स्वदेशबन्धुओंके हृदय-पटलपरसे विदेशी तथा विदेशियों द्वारा प्रसारित हीन-भावनाओंको निकालकर अपने स्वदेशका गौरव दृढ़ता पूर्वक अङ्कित कर दिया। महर्षिके हृदयोद्गार ध्यानपूर्वक पढ़िये।

"आर्य्यावर्त्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है, इसलिये इस भूमिका नाम सुवर्ण-भूमि है; क्योंकि यही स्वर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। इसी लिये सृष्टिके आदिमें आर्य लोग इसी देश में आकर बसे।"[1]

"जितने भूगोलमें देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते हैं और आशा रखते हैं कि पारसमणि पत्थर सुना जाता है, वह बात तो झूठी है; परन्तु आर्यावर्त्त देश ही सच्चा पारसमणि है जिसको लोहे रूप दरिद्र विदेशी छूनेके साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य ही जाते हैं।[1]

२. "जब महमूद गज़नवी आकर लड़ा था तब यह चमत्कार हुआ कि उसका (सोमनाथ का) मन्दिर तोड़ा गया और पुजारी भक्तों की दुर्दशा हुई ....

"जब ऊपर की छत टूटी तब चुम्बक पाषाण पृथक् होनेसे मूर्त्ति गिर पड़ी, तब सुनते हैं अठारह क्रोड़ रुपयेके रत्न निकले ......"[2]

३. "सृष्टि (१,९६,०८,५३,०६७—१९६७ ई०) से लेकर पांच सहस्र वर्षोंके पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य था अन्य देशोंमें माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे, क्योंकि कौरव पांडव पर्यन्त यहांके राज्य और राज शासनमें सब भूगोलके सब राजा और प्रजा चलते थे..." और महाराजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञ और महाभारत युद्ध पर्यन्त यहांके राज्याधीन सब राजा

थे। सुनो चीनका भगदत्त, अमेरिका का बब्रुवाहन, योरूप का विडालाक्ष अर्थात् मार्जार के समान आंख वाले यवन जिसको यूनान कह आये और ईरान का शल्य आदि सब राजा राजसूय-यज्ञ और युद्ध में आज्ञानुसार आये थे।"

जब रघुगण राजा थे तब रावण भी यहां के आधीन था। जब रामचन्द्र के समय वह विरुद्ध हो गया तो उसको रामचन्द्र ने दण्ड देकर राज्य से नष्ट कर उसके भाई विभीषण को राज्य दिया था। स्वायम्भव राजासे लेकर पाण्डव पर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा। तत्पश्चात् आपस के विरोध से लड़कर नष्ट हो गये।"[3]

उद्धरण स्रोत

(1) सटिप्पण सत्यार्थ प्रकाश, समु० ११, पृष्ट २३६
(2) उक्त पुस्तक, समु० ११, पृष्ठ २८१
(3) ,, ,, ,, २३६

६

विनाशके हेतु

(क) क्योंकि इस परमात्माकी सृष्टिमें अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगोंका राज्य बहुतदिन नहीं चलता। और संसारकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुत-सा धन, असंख्य प्रयोजनसे अधिक होता है, तब आलस्य, पुरुषार्थ रहितता, ईर्ष्या, द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है........."।[1]

(नोट) विषयासक्ति—यह स्मरणीय है कि महर्षिने विनाशके कारणोंमें विषयासक्तिका भी उल्लेख किया है। इतिहास इस बातका साक्षी है कि बड़े-बड़े तानाशाह व्यक्ति या परिवार जब तक सचरित्र रहे—ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते रहे—तबतक दिन दुगुनी और रात चौगुनी उन्नति करते रहे; परन्तु ज्यों ही विषयासक्तिमें फंसे विनष्ट हो गये। उदाहरणतः—

(१) फ्रांसका शाहनशाह नैपोलियन बोनापार्ट सम्पूर्ण योरुप भूमिखण्डके लिये वर्षों आतंक बना रहा; परन्तु उसके परिवारमें स्वयं उसकी स्त्री ही कुलटा थी, पर-पुरुष-गामिनी थी। नैपोलियन जब कोई बड़ी विजय प्राप्त करता, तो अपनी स्त्रीको लक्ष्य करके कहता—

She (my wife) is listening to my victories while sitting in another man's lap".

अर्थात्—मेरी स्त्री, मेरी विजयोंकी कहानियां किसी अन्य पुरुषके अंक (गोदी) में बैठकर सुनती है।" परिणामतः नैपोलियनका, उसके राज्यका और उसके समस्त परिवारका सर्वनाश हो गया।

(२) जर्मनीका सर्वे-सवा हर हिटलर ब्रह्मचारी था, सदाचारी था। जिधर मुंह करता था, विजय-लक्ष्मी उसका अनुसरण करती थी; परन्तु दुर्भाग्यवश वह एवा-ब्राऊन नाम्नी कामिनीके मोहपाशमें बन्ध गया। परिणामतः उसका आतंक दिन-प्रति-दिन समाप्त होता गया विजयोंका

स्थान पराजयोंने लेना आरम्भ कर दिया और अन्ततोगत्वा उसी स्त्री समेत उसे आत्मघात करना पड़ा और जर्मनीका पूर्ण-पराभव हो गया।

(३) दशमेश पिता श्री गुरुगोबिन्द सिंह जीके दक्षिण प्रवासमें नर्मदा तटपर परम तपस्वी लक्ष्मणदास वैरागीके साथ उनकी भेंट हुई। पंजाब निवासी हिन्दुओंपर मुग़ल-शासनके अमानुषिक अत्याचारों विशेषतः श्री गुरु तेगबहादुरजीके बलिदान और गुरुपुत्रोंके सरहिन्दकी दीवारमें चिने जाने और क़त्ल किये जानेके दुःखद समाचार सुनकर वीर-वैरागीमें प्रसुप्त क्षात्र-तेज पुनः जाग उठा। सद्गुरुका आशीर्वाद प्राप्त करके बहादुरबन्दा वीर-वैरागीके नामसे उक्त लक्ष्मणदासने प्रतिकारकी भावनासे प्रेरित होकर पञ्जाबके अत्याचारी मुग़लशासन पर आक्रमण कर दिया। अपनी पैनी खड्ग तीखे-तीर, रण-कौशल ब्रह्मचर्य-तेज और श्रेष्ठ राजनीतिके कारण उसने पञ्जाब के प्रचुर भूमि-भागपर अधिकार जमालिया। अपने ब्रह्मचर्य-बल तथा सच्चरित्रताके आश्रय उसे अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई; परन्तु देशका दुर्भाग्य कि वह रियास्त मण्डी की एक सुन्दरीके रूप-लावण्य पर आसक्त हो गया। उसी समयसे उसमें निर्बलता के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। अब उसकी तलवारकी वह पहली-सी काट नहीं रही; तीरके निशाने अचूक नहीं रहे; बुद्धिमेंसे दूर-दर्शिता विलुप्त-सी हो गई; संगठन शक्तिमें दुर्बलता-सी आने लगी और पराजय प्राप्त होनेपर वह मुग़ल-सेनाओं द्वारा बन्दी बनाकर देहली ले जाया गया जहां उसने अपने साढ़े सात सौ अनुयायियोंके साथ वीरगति प्राप्त की।

(4) Prithwi Raj, who could put to rout the hordes of Mohd. Ghauri several times before, was defeated when he gave himself up to enjoyment in the company of his newly wedded wife Samyogita, at a time when enemy was pounding at the gates of Delhi."[2]

अर्थात्—पृथिविराज, जो मुहम्मद गौरीकी सेनासमूहोंको पहले कई बार रणक्षेत्रमेंसे भगा चुका था, उस समय जब वह अपनी नव-विवाहित पत्नी संयोगिताके साथ विषयभोगमें तल्लीन हो रहा था हालांकि शत्रु-सेनायें राजधानी देहली के द्वारपर दस्तक दे रही थीं, केवल इसी कारण परास्त हो गया। (गुरुजी गोलवल्कर की 'बंच ऑफ़ थॉट' पृ० २२८)

(5) "In the first world war (1914-1918), the Generalissimo of the Allied Forces was Marshal Foch a French-man. Such was the heroic state of that nation that they fought

the Germans with grim resolve and won the war ultimately. They even pocketed a sizable portion of Germany. But after the victory, French men succumbed to sensuality and enjoyment. They lost themselves in drinking, singing and dancing, with the result that inspite of their huge military machine and their formidable 'Maginot Line', France collapsed within fifteen days of the German onslaught during the second world war. The sudden and total collapse of France was due to effaminacy which had sapped the energy of the heroic manhood of France. After the war, Marshal Petin, the old French General, stated that France was not defeated in the battle but in the ball rooms of Paris."[3]

अर्थात्—"प्रथम विश्व युद्धके समय संयुक्त सेनाओंका प्रधान सेनापति जनरल फ़ोच था। फ्रांसीसी क़ौमकी वीरता इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि वे जर्मन सेनाओंके साथ जी तोड़कर लड़ी, अन्ततः विजयी हुई और जर्मनीके पर्याप्त बड़े भूमि-भागपर अधिकार जमा सकी। परन्तु विजयानन्तर फ्रांसीसी लोग भोग-विलासमें रत हो गये। वे मदिरा, नृत्य तथा राग-रंगमें मस्त रहने लगे। परिणामतः अपने अतुलनीय सैन्य-संगठन एवं अभेद्य (मैगनेट लाइन) दुर्ग-पंक्ति तथा अजेय वाहिनीके होते हुये भी फ्रांस पन्द्रह दिनोंमें ही जर्मनीके सामने हथियार डालनेपर विवश हो गया। फ्रांसके आकस्मिक एवं पूर्ण-पतनका कारण केवल भोग-विलास ही था, जिसने कि फ्राँसीसी-युवक-सत्ताका पुंस्त्व चूस लिया था। युद्धके अनन्तर पुराने फ्रेंच जनरल मार्शल पेटान ने कहा था कि फ्रांसको पराजय युद्ध क्षेत्रमें नहीं बल्कि पैरिसके नाच घरोंमें प्राप्त हुई।"

(गुरु गोलवलकर की पुस्तक "विचार गुच्छ", पृष्ठ २२६)

(६) प्रथम विश्व-युद्ध (१९१४-१९१८) के दिनों यह पता चला कि संयुक्त-सेनाओंका सेनापति-मण्डल, जो भी मन्त्रणा करता और जर्मन-सेनाओंपर आक्रमणादि करनेकी जो भी योजनायें निर्धारित करता, उनके कार्यान्वयनके पूर्व ही वह सबकुछ जर्मनोंको विदित हो जाता और सब स्कीमें ठप्प हो जातीं।

जांच-पड़तालके अनन्तर सिद्ध हुआ कि जर्मन गुप्तचर विभागसे सम्बद्ध 'माता हरी' नामकी एक सुन्दरी संयुक्त-सेनाओंके बड़े-बड़े जर्नैलोंके

कैम्पोंमें प्राय: विद्यमान् रहती। यह नाचने-गाने तथा अनेकों मनोमोहक विधियोंसे उन अफ़सरोंको अपने प्रेम-पाशमें बाँधे रखती। वे उसके रूप-यौवन-पर ऐसे आसक्त थे कि उनका कोई रहस्य उक्त नर्तकीसे छिपा न रहता था। और वह (नर्तकी) जर्मन जर्नैलोंपर रहस्योद्घाटन करती रहती, जिससे संयुक्त-मोर्चेको असीम क्षति पहुंचती रहती जोकि उसकी गरि.फ्तारीके बाद ही रोकी जा सकी।

यदि वे सेनापति आचारहीन न होते तो उनके पक्षको अवर्णनीय क्षति न पहुंच सकती।[4]

(७) गुजरात प्रदेश स्थित कर्णावती (आधुनिक अहमदाबाद) का राजा कर्ण सदाचारी नहीं था। उसने अपने एक सरदारकी सुन्दर स्त्रीका अपहरण कर लिया। उसका प्रधान मन्त्री धुरन्धर विद्वान् और सदाचारी महानुभाव था। राजाके पापाचरणपर वह क्षुब्ध हो उठा। वह देहलीके मुसलमान सुल्तान को मिलकर उसे गुजरातपर चढ़ा लाया। इस आक्रमणमें मुस्लिम सेनाओंने राजाको मार दिया, नगरों को लूटा, सम्पत्तियोंको आग लगाई। स्त्रियों का स्तीत्व नष्ट किया। और सहस्रों लोगोंका वध किया। यदि उक्त राजा दुराचारी न होता तो गुजरातपर मुसीबतोंके पहाड़ कदापि न टूटते।[5]

> (ख) "......इससे देशमें विद्या, सुरक्षा नष्ट होकर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन बढ़ जाते हैं जैसे कि मद्य-मांस सेवन, बाल्यावस्थामें विवाह और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते हैं और जब युद्ध विभागमें युद्ध-विद्या कौशल और सेना इतनी बढ़े कि जिसका सामना करने वाला भूगोलमें दूसरा न हो तब उन लोगोंमें पक्षपात, अभिमान बढ़ कर अन्याय बढ़ जाता है।"[6]

नोट—जब मुक़ाबिले वाला कोई न हो : शेरे पञ्जाब रणजीतसिंह जीकी सुसंगठित सेनाका सामना करनेका किसीको साहस नहीं होता था। यह खालसा वाहिनी जिधर मुंह करती विजय लक्ष्मी उसके चरण-चुम्बन करती, महाराजाके जीवन-कालमें तो यह पूर्ण नियन्त्रणमें रही, परन्तु उनके आंख मीचते ही यह बेलगाम हो गई। और अल्पकालमें ही विस्तृत सिख-साम्राज्यके विनाशका कारण बनी।

(२) चीनकी जन-संख्या सत्तर क्रोड़से अधिक बताई जाती है। इसी अनुपातसे उसकी सैन्य-संख्या भी बहुत बड़ी है। युद्धमें व्यवहृत होने

वाले घातक शस्त्रास्त्रोंका भण्डार भी अतुलनीय है। साधारण उपकरणों-के अतिरिक्त चीनने आणविक शक्तिके उत्पादन और तज्जन्य अणु एवं उद्जन विस्फोटक बम्बोंका भी प्रचुर मात्रामें निर्माण तथा संग्रह कर रक्खा है। इसी कारण वह ओस-पड़ोसके देशोंके लिए भारी भयका कारण बन बैठा है, वह शान्तिप्रिय निर्बल देश तिब्बतको हड़प्प चुका है—अन्य कई छोटे-बड़े देशोंपर गृध्र दृष्टिसे घूरता रहता है - इतिहास साक्षी है कि ये सब अनीतियुक्त तथ्य चीनके अधः पतन और अन्ततः सर्वनाश का कारण बनेंगे।

अभिमान—जर्मनी के डिक्टेटर हर हिटलरकी अजेय वाहिनीने प्रायः सम्पूर्ण योरुप भू-खण्डको थोड़े ही दिनोंमें पादाक्रान्त करके उसे अपने अधिकारमें ले लिया था। परन्तु व्यभिचारमें फंसने और अभिमान हो जाने के कारण उक्त विशाल-वाहिनीका मय उसके अधिनायकके पूर्ण विध्वंस हो गया।

पक्षपात्—१९६२ में भारतपर चीनी आक्रमणके दिनों पक्षपात्का ज्वलन्त उदाहरण हमारे सामने उस ससय आया जब कि जातिके काश्मीरी ब्राह्मण जनरल बी० एम० कौलको, जोकि आयुभर फौजी क्वार्टरों और पुलोंका निर्माण करते रहे थे, पं० जवाहर लाल प्रधानमन्त्री भारत सरकारने जो कि स्वयं भी कौल जातिके काश्मीरी ब्राह्मण थे, एकदम पदोन्नति करके नेफ़ा स्थित युद्ध-संगठनका सर्वेसर्वा बनाकर भेज दिया। परिणाम यह हुआ कि वह रुग्णावस्थाके बहाने रण-विमुख हो पलायन कर गया और हिन्दुस्थानको करारी हार हुई और सम्भवतः यही पराभव-जनित हार्दिक दुःख ही पं० नेहरू जी के निधनका कारण बन गया हो।

(ग) जब ये दोष हो जाते हैं तब आपसमें विरोध होकर अथवा उनसे अधिक छोटे कुलोंमेंसे कोई ऐसा समर्थ पुरुष खड़ा होता है कि उनका पराजय करनेमें समर्थ होवे, जैसे मुस्लमानोंकी बादशाहीके सामने शिवाजी, गोबिन्दसिंह जी ने खड़े होकर मुस्लमानोंके राज्यको छिन्न-भिन्न कर दिया।"[7]

(घ) "......देखोकि एक 'जयकालियट' साहब पैरिस, अथवा फ्रांस देश निवासी अपनी 'बाइबल इन इण्डिया' (Bible in India) में लिखते हैं कि सब विद्याओं और भलाइयोंका भण्डार आर्यावर्त देश है और सब विद्या तथा मत इसी देशसे फैले हैं और परमात्मासे

प्रार्थना करते हैं कि परमेश्वर ! जैसी उन्नति आर्यावर्त देषकी पूर्वकालमें थी वैसी ही हमारे देशकी कीजिये ।''

''परन्तु ऐसे शिरोमणि देशको महाभारतके युद्धने ऐसा धक्का दिया कि अब तक भी यह अपनी पूर्व दशामें नहीं आया । क्योंकि जब भाईको भाई मारने लगे तो नाश होने में क्या सन्देह ? 'विनाश काले विपरीत बुद्धिः' ।''[8]

उद्धरण स्रोत

(1) सटिप्पण सत्यार्थ प्रकाश
समु० ११, पृष्ठ २३६, २३७
(2) Bunch of Thoughts by M.S. Golwalkar, pp 228
(3) Ibid pp 229
(4) Ibid pp 372
(5) Ibid pp 375
(6) सटिप्पण सत्यार्थ प्रकाश, समु० ११, पृष्ठ २३६
(7) उक्त पुस्तक ,, ,, २३६-२३७
(8) ,, ,, ,, ,, २३६

१०

महर्षिको स्वदेशकी चिन्ता

(क) (१) एक रात सोये-सोये उठ बैठे। ब्रह्मचारी बलदेवने पूछा, "महाराज ! क्या कोई कष्ट है ? डाक्टर अथवा वैद्य को बुलाऊं ? कोई औषधि उपचार करूं ?" आपने उत्तर दिया :

"भोले ब्रह्मचारी ! मैं पूर्णतः स्वस्थ हूं। शरीरमें कोई व्याधि नहीं; परन्तु देशकी जो दुर्दशा हो रही है, इसका जो धार्मिक एवं सामाजिक पतन हो गया है, इसपर विदेशियोंने जो अधिकार जमा रक्खा है, वह मेरी नींदको भंग कर देता है।"

(२) एक निर्धन विधवा मां अपने इकलौते बेटेकी मृत्युपर असहायावस्था और अतीव दरिद्रता के कारण बच्चेकी शवको ढाँपनेके लिये गज-भर कपड़ा भी उपलब्ध नहीं कर सकती। अपनी एकमात्र धोती-को फाड़ती है। आधेसे अपने शरीरको ढांपती है और शेष टुकड़ेमें बच्चेकी लाशको लपेटकर रातके अन्धेरेमें गंगाकी लहरोंमें बहानेके लिए आती है। महर्षि पवित्र जाह्नवीके पावन-तटपर ध्यान-मग्न बैठे हैं। आवाज आनेपर समाधि भंग होती है तो क्या देखते हैं कि एक माता नदीमें लाशको बहाकर उसके वेष्ठनको धोकर सिरपर डाल लेती है और उद्विग्न-मन अपने घरको लौटने लगती है। महाराजने कौतूहल-वश उसे पूछा—"माता ! अमूल्य निधि अपने बच्चेकी लाशको तू गंगा मइयाके सुपुर्द कर आई है। परन्तु इस गज-डेढ़ गज कपड़ेसे तेरा इतना मोह है कि इसे धोकर वापस लिए जा रही है। इसमें क्या रहस्य है ? मुझे बताइये। मैं आश्चर्य-चकित हो रहा हूं।"

हमदर्दीके ये शब्द सुनकर माताके धैर्यका बांध मानो टूट गया। वह दहाड़ें मारकर रोने लगी और कुछ क्षण बाद अश्रुधाराको बरबस रोककर बोली—"महात्मन् ! मैं एक भाग्यहीन विधवा हूं। मेरी आंखोंका

तारा, मेरे जीवनका सहारा यह एक यही पुत्र था। इसे अपने स्वर्गवासी पतिदेवकी धरोहर समझकर मेहनत-मजदूरी करके इसकी पालना कर रही थी। यही मेरी सारी दुनिया थी, आशालता थी; परन्तु दैवको यह भी अच्छा नहीं लगा, उसने इसे मुझसे छीन लिया। अब लोकाचारानुसार इसे कपड़ेमें लपेटकर ही जल-प्रवाह करना था। मगर महाराज ! मेरे घरमें कोई नया-पुराना कपड़ा नहीं था और खरीदकर लानेका कोई साधन नहीं था। बहुत देरतक सोचती रही, कुछ समझमें नहीं आया। तब अपने शरीरको ढाँपने वाली एक-मात्र साढ़ीको फाड़ डाला उसमें बच्चेके शवको लपेटा, उसे नदीमें बहाया और धोतीके इस टुकड़ेको धोकर घर इसलिए ले जा रही हूं कि सूख जानेपर अपनी साड़ीके साथ पुनः जोड़कर अपना स्तीत्व ढांप सकूं।" यह कहा और ज़ोर ज़ोरसे रोने लगी।

उस देवीका पत्थरको भी पिघला देनेवाला करुण-क्रन्दन सुनकर, महर्षि दयानन्दका 'पाषाण-हृदय', जो प्रियभगिनीके निधनपर नहीं रोया था, घर-बार-परिवार छोड़ते समय जिसके हृदयपर कोई प्रभाव नहीं पड़ सका था, प्रतिदिन विद्वेषियों तथा विधर्मियोंके घातक प्रहारों और प्राणहर लीलाओंसे कभी नहीं घबराया था, आज बच्चोंकी भांति बिल-बिलाने लगा। स्वदेशकी दुर्दशाका, इसके दौर्भाग्यका, बद-किस्मतीका, पूरा-पूरा नक्शा उनकी आंखोंके सामने खिच गया और उन्होंने इसे बदल डालनेका भीषण व्रत धारण कर लिया।

नोटः—महान् आत्माओं, उदार-चरित दैवी व्यक्तियोंके पावन हृदय अपनी व्यक्तित्वपर मुसीबत आनेकी दशामें पाषाणवत् सख्त और दीन दुखियोंकी दुःखद कथाओंको श्रवण करते ही नवनीतकी भांति शीघ्र द्रवित हो जाने वाले होते हैं। उदाहरणतः

(१) श्री गुरु नानक देव जी स्वदेशकी दुर्दशा और मुग़ल आक्रामिकों तथा शासकोंके अत्याचारोंसे व्यथित हृदयके कारण खाना-पीना, हसना खेलना, बोलना-चालना सब बन्द-से कर बैठे थे। सदा किसी आन्तरिक पीड़ासे व्यथित अपना समय व्यतीत करने लगे। उस समय उन्होंने निम्न श्लोक भी उच्चारण किया था—

खुरासान ख़समाना कीआ हिन्दुस्थान डराया।
आपो दोष न देई कर्त्ता जमकर मुग़ल पठाया
एती मार पई कुरलाणे तैं कीं दर्द न आया।[1]

उनकी यह सुम्म-ब-कुम्म दशा देखकर घरवालोंको उनके स्वास्थ्य-के सम्बन्ध में चिन्ता हुई। औषधि-उपचारके लिए वैद्य बुलाया गया। वैद्य-राजने गुरुजीका नाड़ी परीक्षण आरम्भ किया। इसपर आपने उसी समय निम्न श्लोक कहा—

वैद बुलाया वैदगी पकड़ ढण्डोले बाहि।
भोला वैद न जाणई करक कलेजे माहि।...

अर्थात्—घर वालोंने मेरा इलाज करानेके लिये वैद्यको बुला लिया है और वह बांह पकड़ कर नाड़ी-परीक्षण कर रहा है। परन्तु भोले वैद्यको यह तो पता ही नहीं कि मेरे तो हृदयमें (देश और जातिका) दर्द है। उसका कोई इलाज होना चाहिये।

मुसलमानोंके झूठे आश्वासन पर—

(२) आनन्दपुर (पंजाब) का दुर्ग खाली करनेके पश्चात् श्री गुरु गोविन्द सिंह जी अपने समस्त सैनिकों, साथियों और सिखोंसे विलग होकर एकाकी माछीवाड़ेके जंगलमें नंगे पांव घूम रहे थे। एक वृक्षकी छायामें ईंटका तकिया लगाये भूमिपर लेटे-लेटे स्वदेश एवं स्वजातिपर चारों ओरसे घिर-आई विपत्तियोंका चिंतन कर रहे थे कि निम्नलिखित शब्द परम-पिताकी सेवामें प्रर्थनाके रूपमें आपके मुखारविन्दसे अनायास निकल गया—

मित्तर पिआरे नूँ हाल मुरीदाँ दा कहिणा
तुधु बिनु रोग रजाईआंदा ओढण नागनिवासां दे रहिणा।
सूल सुराही खंजर पिआला विंग कसाईआं दे सहिणा॥
यारड़ेदा सानूं सत्थर चंगा भट्ठ खेड़िआं दे रहिणा॥[2]

(३) महात्मा गांधी की प्रेरणासे इण्डियन नेशनल कांग्रेसने तुर्की-की खिलाफतका मज़हबी प्रश्न अपने राजनैतिक कार्यक्रममें सम्मिलित कर लिया, जिससे मुसलमानोंकी धर्मान्धतामें बहुत वृद्धि हुई। उसीके कारण सन् १९२१ में मालाबार-प्रान्तके मुसलमानोंने तद्देश-निवासी हिन्दुओंपर असह्य, अमानुषिक अत्याचार किये। हजारोंका वध हुआ, अगणित हिन्दु स्त्रियोंका अपहरण किया गया और दो-तीन हज़ारका बलात् धर्मान्तरण किया गया। ब्रिटिश सरकारने समाचारोंके प्रकाशनपर प्रतिबन्ध लगा दिया। दैववशात् पूज्य श्री महात्मा हंसराजजीके जामाता श्री दीवान जयकृष्ण नन्दा उन दिनों बम्बईमें थे। वहां उन्हें किसी प्रकार

मुसलमान मोपलाओंकी उक्त दानवी-लीलाओंका पता चल गया। आपने तार द्वारा लाहौरमें श्री महात्मा हंसराज जीको उक्त अत्याचारोंकी सूचना पहुंचाई। तारको तकियेके नीचे रखकर महात्मा जी सो जानेका प्रयत्न करने लगे; परन्तु नींद नहीं आई। करवटें बदलते-बदलते जब 'पसलियां दुखने लगीं—पलंग पे सोते-सोते' की परिस्थिति हो गई तो उठ बैठे और नीरनिष्कासित मीनकी भांति बेचैनीमें कमरेमें इधर-उधर चक्कर काटते रात गुजार दी।

अमृत-वेलामें भ्रमणार्थ महात्माजीकी कुटियाके पाससे गुजरते हुए श्री ला. खुशहालचन्द 'खुर्सन्द' (वर्तमान् श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी) ने असमयमें बिजली जलती देखी तो ऊपर चले गये। वहां क्या देखते हैं कि महात्मा हंसराज जी निहायत बेचैनीकी हालतमें अपनी कुटियामें इधर से उधर और उधर से इधर घूमते फिर रहे हैं। आपसे श्री लाला खुशहाल चंद जी ने पुछा—"महात्मन्! आपको कोई शारीरिक कष्ट हो रहा हो तो डाक्टरको बुला लाऊँ? मालूम होता है आपको नींद नहीं आई।" इतना सुनते ही आपने तकियेके नीचेसे मालाबारी हिन्दुओंकी विपत्ति-सूचक तार थमाकरा अपने कहा—"खुशहाल चन्द जी! जिसके तकियेके नीचे हजारों निःसहाय लोगोंकी चीत्कार और हृदय-विदारक आवाजें आ रही हों उसे नींद कैसे आ सकती है?" इतना कहा और दुखियोंकी विपत्ति विमोचनकी योजनाएं बनाकर कार्यारम्भ कर दिया।

(४) महर्षि लाहौर में—

एक दिन भक्तोंके साथ वार्तालाप करते हुए महाराजने प्रसंग-वश कहा—

"आप इस समय मुझे अच्छा हृष्ट-पुष्ट समझते हो; परन्तु मैं तो गंगा-तीर-वासकी अपेक्षा अब कृश हो रहा हूं। आप लोगोंकी हित-चिंता ने मुझे दुर्बल कर दिया है।"

महर्षि को स्वदेश भक्ति की चिंता—

(ब्राह्म समाजालोचन)

(क) परन्तु इन लोगों (ब्राह्मसमाजियों) में स्वदेश भक्ति बहुत न्यून है···—अपने देशकी प्रशंसा और पूर्वजोंकी बड़ाई करनी तो दूर रही उसके स्थानमें पेट-भर निंदा करते हैं। ब्रह्मादि ऋषियोंका नाम भी नहीं लेते प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि बिना अंग्रेजोंके सृष्टिमें

आज पर्यन्त कोई भी विद्वान् नहीं हुआ। आर्यावर्ती लोग सदासे मूर्ख चले आये हैं। इनकी उन्नति कभी नहीं हुई......... ब्राह्मसमाजके उद्देशके पुस्तकमें साधुओंकी संख्यामें ईसा, मूसा, मुहम्मद, नानक, चैतन्य, लिखे हैं किसी ऋषि महर्षिका नाम भी नहीं लिखा......भला जब आर्यावर्तमें उत्पन्न हुए हैं और इस देशका अन्न जल खाया-पिया, अब भी खाते-पीते हैं; अपने माता, पितामहादिके मार्गको छोड़ दूसरे विदेशी मतोंपर अधिक झुक जाना......मनुष्योंका स्थिर और बुद्धिकारक काम क्योंकर हो सकता है......"[4]

(ख) अंग्रेजों की उन्नतिका कारण—

"....देखो! अपने देशके बने हुए जूतेको आफिस, कचहरीमें जाने देते हैं; इस देसी जूतेको नहीं। इतने ही से समझ लो कि अपने देश-के बने हुए जूतोंकी भी कितनी मान प्रतिष्ठा करते हैं उतना भी अन्य देशस्थ मनुष्योंका नहीं करते।"

(ग) "देखो! कुछ सौ वर्ष से ऊपर इस देश में आये योरोपियनों को हुए और आजतक यह लोग मोटे कपड़े पहनते हैं जैसा कि स्वदेश-में पहरते थे......और तुममेंसे बहुत-से लोगोंने उनका अनुकरण कर लिया। इसी से वे बुद्धिमान् और तुम निर्बुद्धि ठहरते हो।"[5]

नोट—निम्नांकित घटना सन् १९०४-५ की है। उन दिनों इन पंक्तियोंका लेखक यू० पी० मिशन हाई स्कूल रावलपिण्डीकी चौथी-पांचवीं श्रेणीमें पढ़ा करता था। उस स्कूलके प्रिन्सिपल एक वयोवृद्ध अमरीकन पादरी थे। स्कूलके विशाल प्राङ्गणमें ही उनकी कोठी थी। पादरी साहबके बच्चे भी हमारे साथ ही पढ़ा करते थे। स्कूल बन्द होनेपर पादरी साहबके बच्चों-के साथ खेलनेके लिए कई बार हम उनकी कोठीपर चले जाया करते थे। एक दिन देखा कि पादरी साहब अपने टूटे हुए बूटकी मुरम्मत अपने हाथसे कर रहे है। कौतूहल-वंश मैंने उनसे पूछा 'साहब! आप एक बड़ा वेतन पाते हैं, फिर यह पुराना बूट क्यों गाँठ रहे हैं? बाज़ारसे नया क्यों नहीं खरीद लेते? बचपनकी इस धृष्टतापर साहिब मुस्कराये और मेरी पीठ-पर हाथ फेरते हुए कहने लगे —

"देखो बेटा! हम अमरीकन हैं। यह बूट वहांसे ही मंगवाया था। इसके पुराना हो जाने पर हमने नये जोड़ेका आर्डर स्वदेशमें भेज दिया था। क्योंकि आदेश जाने और पार्सल आनेमें छः मास लग

जाते है, इसी लिए मैं प्रतीक्षा में हूं। जल्दी ही नये बूट आ जायेंगे, जबतक वे नहीं आते जैसे भी होगा इन्हींसे गुज़ारा करूंगा, क्योंकि बेटा! अपने देशकी बनी चीज़ व्यवहारमें लानी चाहिये। इसीमें कल्याण है।"

टिप्पणी—उक्त शब्दोंसे प्रोत्साहित होकर इन पंक्तियोंके लेखकने उसी दिनसे स्वदेशीका व्रत धारण कर रक्खा है।

(घ) सहजानन्दके मतका खण्डन करते हुए महाराजने लिखा—

"ईदृशानां धूर्त्तानां सम्प्रदाय प्रभृत्यार्यवर्त देशस्य महतिर्हानिर्जाता अतः सर्वैं सज्जनैरिदानीं दृढ़प्रयत्नेन सद्य इमे सर्वे सम्प्रदाया निवर्तनीया, अन्यथा स्वदेशस्य भद्रन्नैव भविष्यतीति निश्चेतव्यम् १४७।"[6]

अर्थात्—"इस प्रकारके धूर्तोंके सम्प्रदायोंसे आर्यावर्त देशकी महान् हानि हुई हैं। इस लिए अब सब सज्जनोंको दृढ़ प्रयत्नसे उन समस्त सम्प्रदायोंका मूलोच्छेदन कर देना चाहिये, अन्यथा स्वदेशका कल्याण कभी भी हो नहीं सकेगा।" (शिक्षा पत्री ध्वान्त निवारण से)

महर्षि को स्वदेश सुधारने की चिन्ता—

(क) महाराजने चैत्रवदि २३ सम्वत् १९३४ को मुल्तान (पंजाब) से एक पत्र म० माधोलाल जी को लिखा —

……आर्य समाजके ठीक नियमोंको समझकर आपको वेदाज्ञानुसार सबके हितमें अवश्य लग जाना चाहिये, विशेषतासे आर्यावर्त देशके सुधारनेमें अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति होनी चाहिए।[7]

(ख) अमृतसर में—

स्वामीजीके एक व्याख्यानमें बहुत-से 'निर्मले' साधु आये और खड़े-खड़े ही भाषण सुनने लगे। महाराजने उस समय कहा—

"सहस्रों भारतवासी पेट भर अन्न नहीं पाते, दाने-दानेके लिए तरसते हैं। भूखके मारे बिल्ली-कुत्तेकी मौत मर रहे हैं। देशकी ऐसी दशामें धड़ा-धड़ लोटे-शाही और तूंबे शाही बनने की क्या आवश्यकता है? इस समय तो प्रत्येकको परिश्रम करके आजीविका चलानी चाहिए।"[8]

(ग) मेरठ में

एक दिन तिलकधारी मालाधारी ब्राह्मण स्वामी जीके पास बैठे थे। उसी समय एक भद्र पुरुषने नमस्कार करके कुशल पूछा। महाराजाने उत्तर

दिया—"हमें **कुशल कहां ?** भक्तोंने पूछा "क्या कोई मानसिक खेद है ?" लम्बी सांस खींचकर आपने उत्तर दिया—

"इससे बढ़कर क्या खेद हो सकता है कि ये ब्राह्मण जो पास बैठे हैं, अपने कर्त्तव्यसे कोसों दूर हैं। बाहरी आडम्बर और पाखण्डसे अधिक प्यार करते हैं। धर्मके प्रचारका इन्हें ध्यान तक नहीं। आर्य-सन्तानकी दीन-हीन दशापर इनको टुक दया नहीं आती।"[9]

(घ) हरिद्वार में—

एक दिनका वर्णन है कि स्वामीजी बैठे-बैठे लेट गये और फिर उठकर टहलने लगे। तब भक्तने विनयपूर्वक पूछा "महाराजको आज क्या कोई वेदना हो रही है ?"

उन्होंने लम्बी सांस भरकर कहा—

"भाई ! इससे अधिक हृदय-विदारक-वेदना और क्या हो सकती है कि विधवाओंकी दुःखभरी आहोंसे, अनाथोंके निरन्तर आर्तनादसे और गोवधके जघन्य पापसे इस देशका सर्वनाश हो रहा है।"[10]

(ङ) देशप्रेम और देशभक्तों को प्रोत्साहन—

पौषशुद्धि १३ सम्वत् १९३४ को महाराजने गुजरातसे दानापुर आर्य समाजके मन्त्री को लिखा—

"जब मैं बंग देशको जाऊंगा तो आप सबके मिलापसे अवश्य प्रसन्नता लाभ करूंगा। आप सज्जनोंकी कामना और प्रयत्नसे **देशवासियों की उन्नति** देखकर मैं अति प्रसन्न हुआ हूं। यह देखकर कि आप **देशको उन्नत करनेका यत्न** करते हैं, मुझे इतनी प्रसन्नता हुई है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। कुछ सन्देह नहीं कि आप इसके फलोंका अपने जीवनमें आस्वादन कर लेंगे। ईश्वर आपको स्वस्थ और हरा-भरा रक्खे, आप सबको मेरा आशीर्वाद।[11] ह० दयानन्द सरस्वती"

(च) स्वराज्य महिमा—

"अब अभाग्योदयसे और आर्योंके आलस्य, प्रमाद, परस्परके विरोधसे अन्य देशोंके राज्य करनेकी कथा ही क्या कहना, किन्तु आर्यावर्तमें भी आर्योंका अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियोंके पादाक्रान्त हो रहा है। थोड़े राजा स्वतन्त्र है।

दुर्दिन जब आता है तब देश-वासियोंको अनेक प्रकारका दुःख भोगना पड़ता है :

कोई कितना भी करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतान्तरके आग्रह रहित, अपने और परायेका पक्षपात शून्य, प्रजापर पिता माताके समान न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु— भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्-पृथक् शिक्षा अलग व्यवहारका विरोध छूटना अति दुष्कर है। बिना इनके छूटे परस्परका पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है।"[12]

(ज) **स्वदेशी आन्दोलन** (परगुण-ग्राहकता)

"जो योरपियनोंमें बाल्यावस्थामें विवाह न करना, लड़का-लड़कीको विद्या-सुशिक्षा करना-कराना, स्वयम्वर विवाह होना, बुरे बुरे आदमियों-का उपदेश नहीं होता, वे विद्वान होकर जिस किसीके पाखण्डमें नहीं फंसते। जो कुछ करते हैं, सब परस्पर विचार और सभासे निश्चित करके करते हैं, अपनी स्वजातिकी उन्नतिके लिये तन, मन, धन व्यय करते हैं, आलस्य छोड़ उद्योग किया करते हैं। देखो! अपने देशके बने हुए जूते को ऑफिस कचहरीमें जाने देते हैं, इस देसी जूतेको नहीं इतने में ही समझ लो कि अपने देशके बने हुये जूतोंका भी कितना मान-प्रतिष्ठा करते हैं उतना भी अन्य देशस्थ मनुष्योंका नहीं करते। देखो! कुछ सौ वर्षसे ऊपर आये योरोपियनोंको हुए और अब तक यह लोग मोटे कपड़े पहरते हैं जैसा कि स्वदेशमें पहरते थे, परन्तु अपने देशका चाल-चलन नहीं छोड़ा। और तुममें बहुतसे लोगोंने उनका अनुसरण कर लिया इसीसे तुम निर्बुद्धि और वे बुद्धिमान् ठहरते हैं। **अनुकरण करना किसी बुद्धिमान् का काम नहीं।**"[13]

(झ) **Dayananda's Political Wisdom** (दयानन्दकी प्रखर राज-नैतिक बुद्धि और उनकी निर्भीकता का ज्वलन्त प्रमाण)—

महर्षि दयानन्द मार्च १८७३ में कलकत्ता पधारे। उनके प्रशंसक लार्ड बिशपने जो कि उनके व्याख्यान सुना करते थे, कई बार सभापति भी बना करते थे, महाराजकी अभूत-पूर्व प्रतिभा, अगाध विद्या एवं अखण्डित ब्रह्मचर्य आदि सद्गुणोंसे प्रभावित हो गये थे। आपने ही उन दिनोंके वाइसराय लार्डनार्थबुकके साथ महर्षिकी भेंटका प्रबन्ध किया था, प्रारम्भिक शिष्टाचारके अनन्तर वहां निम्नलिखित बातचीत हुई—

Rishi Dayanand was Par-excellence the apostle to preach, more than 100 years ago, before, the Indian

National Congress was born. The Message of India's Independence.

The Italian Savant Roman Rolland in his book 'Life of Rama Krishna Paramahans' has accurately characterised :—

"Dayanand alone hurled the relentless defiance of India against British Rule and *his massive sword cleft asunder the citedal of Christian Superiority.*

A true vision of the irrepressible yearning of India's Poorna Swarajya aglow in his intensely patriotic breast found expression in his historic meeting with the Viceroy of India, Lord North Brook (1872-76) during the Rishi's visit to and stay in Calcutta in March, 1873.

Dayanand's Tussel with Viceroy :—

Dayanand's meeting with the Viceroy was arranged through the good offices of the Lord Bishop of Calcutta. This prelate sometimes presided the public discourses delivered by Dayanand and was enthusiastic admirer of Rishi's profound learning and talents. The talks were conducted through an interpreter.

After customary courtsies Lord North Brook enquired of Rishi Dayanand :—

Viceroy : "Pandit Dayanand ! I am informed your caustic criticism of Islam and other faiths, often arouses angry hostility against your person. Do you particularly feel the necessity for special protection from our government ?"

Dayanand : "I enjoy full freedom for the propagation of my faith in the British Raj. I do not see any danger to my person."

Viceroy : "If it is so, would you, Pandit Dayanand ! mind expressing your appreciation for the blessings confirmed (conferred) by British government on your country ? And in the prayer to God that generally preceeds your talks, would you please pray for the stability of British sovereignty in India ?"

Dayanand : "I cannot concede to any such proposition; for it is my firm conviction that for the unstinted development of political stature of my country and for the attainment of the status of peerage of India among the comity of free nations of the world, my country must achieve *Complete Independence*. Sire ! in my prayer to Almighty God every morning and evening, I humbly beseach His Divine Grace to liberate my country-men from the yoke of foreign domination."

Such clear and unimbiguous demand to '*Quit India*' hurled at the Viceroy and sturdy enunciation of Rishi's political ambitions alarmed Lord North Brook. The conversation was abruptly ended.

Lord North Brook recounted this incident in his weekly dispatch to Her Majesty Queen Victoria and also informed the London Government, that he had issued instructions to keep a strict watch on the *movements* and *activities* of the *rebel Fakir*.

Thereafter the Govt. C.I.D. regularly shadowed Dayananda until his death on the 30th October, 1883.[14]

अर्थात् —वायसराय—"पण्डित दयानन्द ! मुझे विदित हुआ है कि इस्लाम तथा अन्य मतोंकी तीव्र आलोचना जो आप करते हैं, आपके व्यक्तित्वके लिए घोर विरोधका वातावरण निर्मित कर देती है। क्या आप विशेष-रूपसे अनुभव करते हैं कि हमारी सरकारकी ओरसे आपके विशेष संरक्षणका प्रबन्ध किया जाय ?"

दयानन्द—"ब्रिटिश राज्यमें मुझे अपने धर्मके प्रचार करनेकी पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है। मुझे अपने शरीरके सम्बन्धमें कोई खतरा नहीं है।"

वाइसराय—"यदि यह ऐसा ही है तो क्या पण्डित दयानन्द ! आप उन वरदानोंके लिए जो ब्रिटिश-राज्यने आपके देशको प्रदान किये हैं, आप हमारे राज्यकी प्रशंसा करेंगे ? और आपके व्याख्यानोंके आरम्भसे पूर्व सर्वशक्तिमान् परमात्मासे आप जो प्रार्थनाएं करते हैं, उनमें हिन्दुस्तानमें ब्रिटिश सत्ताकी दृढ़ताके लिये प्रार्थना किया करेंगे ?"

दयानन्द— मैं किसी ऐसी बातको स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि मेरी यह दृढ़ धारणा है कि मेरे देशवासियोंके राजनैतिक स्तरमें

अबाध प्रगति (उन्नति) की प्राप्तिके लिए तथा संसारकी सभ्य जातियों-के संघमें हिन्दुस्थानके लिए सम्माननीय-स्थान प्राप्त्यर्थ यह अनिवार्य है कि मेरे देशवासियोंको **पूर्ण स्वातन्त्र्यकी** उपलब्धि हो। श्रीमन्! सर्व शक्तिमान् परमात्माके समक्ष प्रतिदिन सायं और प्रातः अपनी प्रार्थनाओंमें उसकी अनुपम तथा असीम अनुकम्पाकी अभिलाषा करता हुआ मैं यह याचना किया करता हूं कि मेरे देशवासी जन-समुदाय **विदेशी सत्ताके जुएसे शीघ्र उन्मुक्त हो जाय।**"

इस प्रकार स्पष्टतः "**हिन्दुस्थान छोड़ो**" के शब्द एवं महर्षिकी उग्र राजनैतिक भावनाओंको सुनकर वाइसराय लार्ड नार्थ-ब्रुक एक-दम चौंक उठा। वार्तालाप एका-एक समाप्त कर दी गई।

लार्ड नार्थ-ब्रुकने अपने साप्ताहिक स्मृति-पत्रमें महारानी विक्टोरियाको उक्त घटनाकी सूचना देते हुए लिखा—"मैंने अपनी सी.आई.डी.को आदेश दे दिया है कि इस "**बाग़ी फ़क़ीर**" की गतिविधियों एवं आवागमनपर कड़ी दृष्टि रखे।"

परिणामतः ३० अक्टूबर सन् १८८३ को महर्षिके निधनतक यह सी. आई. डी. वाले छायाकी भांति महर्षि दयानन्दके पीछे लगे रहे। (दीवान अलखधारी का लेख 'रवि', जुलाई ३१ तथा मेरठ कालिज मेगज़ीन' मार्च १९६३)

(ञ) १८५७ के प्रथम स्वातन्त्र्य संग्रामकी ओर संकेत—

"जब सम्वत् १९१४ (१९१४-५७=१८५७) के वर्षमें तोपों-के मारे मूर्तियां अंग्रेजोंने उड़ा दी थीं, तब मूर्ति कहां गई थीं, प्रत्युत बाघार (गुजरात-काठियावाड़की एक वीर जाति) लोगोंने जितनी वीरताकी और लड़े, शत्रुओंको मारा। परन्तु मूर्ति मक्खीकी टांग भी न तोड़ सकी। जो श्री कृष्णके सदृश कोई होता तो इनके धुर्रे उड़ा देता और यह भागते फिरते। भला यह तो कहो जिसका रक्षक मार खाए उसके शरणागत क्यों न पीटे जायँ।"[15]

(ट) गोत्र-हत्यारे दुर्योधनकी भर्त्सना—

"आपसकी फूटसे कौरव-पाण्डव और यादवोंका सत्यानाश हो गया सो तो हो गया; परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्योंको सब सुखोंसे छुड़ाकर दुःख सागरमें डुबा मरेगा? **उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्र-हत्यारे, स्वदेश-विनाशक,**

नीचके दुष्ट मार्गमें आर्य लोग अब तक चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राज-रोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाय।[16]

(ठ) आर्यों का चक्रवर्ती राज्य—

"सृष्टिसे लेकर पांच सहस्र वर्षोंके पूर्व समय पर्यन्त आर्योंका सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोलमें सर्वोपरि एक-मात्र राज्य था, अन्य देशोंमें माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे; क्योंकि कौरव-पाण्डव पर्यन्त यहांके राजा और राज्य-शासनोंमें सब भूगोलके सब राजा और प्रजा चलते थे—स्वायम्भव मनुसे पाण्डव पर्यन्त आर्योंका चक्रवर्ती राज्य रहा। तत्पश्चात् आपसके विरोधसे लड़कर नष्ट हो गये।"[17]

(ड) प्रभु से प्रार्थना—

"वह प्रजापति कृपा करके अपनी सृष्टिमें हमें राज्याधिकारी करे और हमारे हाथसे अपने सत्य न्यायकी प्रवृत्ति करावे।"[18]

उद्धरण स्रोत

(1) आदि ग्रन्थ—राग तिलंग महिला १
(2) शब्द श्री गुरु गोविन्दसिंह जी
(3) श्रीमद्दयानन्द प्रकाश—स्वा० सत्यानन्द जी, पृष्ठ ३६३
(4) सटिप्पण सत्यार्थ प्रकाश
समु. ११, पृष्ट ३४३, ३४४
(5) उक्त पुस्तक समु. ११, पृष्ठ ३४४
(6) श्रीमद्दयानन्द ग्रन्थमाला शताब्दि संस्करण,
पृष्ठ—२५ (शिक्षा पत्री, ध्वान्त निवारणम्)
(7) श्रीमद्दयानन्द प्रकाश, स्वा. सत्यानन्द जी, पृष्ठ ३६१
(8) उक्त पुस्तक पृष्ठ ३६६
(9) ,, ,, ३८०
(10) ,, ,, ३५२
(11) ,, ,, ३५३
(12) सटिप्पण सत्यार्थ प्रकाश, पृष्ठ १५५
(13) ,, ,, ,, ,, ११, पृष्ठ ३४४-४५
(14) 'Ravi' Jullundhar for July, 1963 and Meerut College Magazine for March, 1963, by Diwan Alakhdhari
(15) सटिप्पण सत्यार्थ प्रकाश समु ११, पृष्ट २८२
(16) उक्त पुस्तक ,, २२९
(17) ,, ,, ,, ,, २३६
(18) ,, ,, ,, ,, १४८

११

देशका वैभव

(1) "And when Clive entered into the treasury room of the Nawab (Siraj-ud-daulah of Bengal), gold to his right, gold to his left, gold in his front and gold behind him—emeralds and rubbies—there was no end of wealth. It was his own modesty that he took very little for himself. And when these riches reached the shores of England, the maritime activities awoke all atonce, and England became the Queen of the seas, and the loco motive engine which lay asleep for a long time for want of funds, became a reality."[1]

अर्थात्—"और जब क्लाईव, नवाब (बंगाल के सिराजुद्दौला) के कोष-कक्षमें पहुंचा, तो उसके दायें सोना, बायें सोना, आगे सोना, पीछे भी सोना था—हीरे, जवाहरात—धन का कोई अन्त नहीं था। यह उसकी अपनी विनम्रता थी कि उसने अपने लिये बहुत थोड़ा ग्रहण किया। और जब यह धनैश्वर्य इंगलैंडके तटपर पहुंचा, उसकी समुद्री सामर्थ्य एकदम जागृत हो उठी और बर्तानिया समुद्रोंकी साम्राज्ञी बन गया। और फिर वाष्प-चालित (लोकोमोटिव) एन्जनने, जो वर्षोंसे धनाभावके कारण प्रसुप्तावस्थामें पड़ा था, वास्तविकताका रूप धारण कर लिया।"

(विश्व के निर्णायक युद्ध)

Grandeur of Vijayanagar :—

2. "Farishta (an ancient historian) tells us of great wealth of Vijaya Nagar—Deccan—and describes the capital in 1406 when Muslim Bahmani kings from Gulbarga went there to marry a princess of Vijayanagar. He says that for six miles the road was spread over with cloth of gold and velvet and similar other stuffs."[2]

विजयनगरका वैभव

अर्थात्—"फ़रिश्ता (एक प्राचीन इतिहासकार) हमें दक्षिण-स्थित विजयनगरकी महान् समृद्धिका पता बतलाता है और सन् १४०६ में राजधानीके वैभवका वर्णन करता है। यह उस समयकी बात है जब गुलबर्गाके बहमनी परिवारका मुस्लिम बादशाह विजयनगरकी राजकुमारी-का पाणिग्रहण करने आया था। उसने लिखा है कि छः मील तक सारी सड़क जरबफ़्त (सुनहरी) का कपड़ा, मख़मल तथा इसी प्रकारके अन्य पदार्थोंसे ढांप दी गई थी। (विश्व इतिहास की झलकियां—पं. जवाहरलाल नेहरू, पृष्ट ४०३)

3. **Grandeur of Vijayanagar** (continued):

In 1420 came Italian Nicolo. He tells us that the circumference of the city—Vijayanagar—was sixty miles...

"On his way to Vijayanagar near Mangalore, he saw a wonderful temple made of Molten Brass. It was 15 feet high and 30 × 30 feet at the base...

"In this charming area (palace) many rivulets and streams were flowing through channels of cut stone, polished and even."[3]

विजयनगरका वैभव—

अर्थात्—१४२० ईस्वीमें इटली निवासी निकोलो यहां आया। वह हमें बतलाता है कि उन दिनों विजय नगरका घेरा साठ (६०) मीलका था—

"विजयनगरको जाते हुए, मंगलोरके निकट उसने एक चकित कर-देनेवाला मन्दिर देखा। यह पीतल पिघलाकर (ढालकर) बनाया गया था। यह ऊँचाईमें १५ फुट और भूमि पर ३० फुट लम्बा और ३० फुट चौड़ा था। इस मनोमोहक प्रासादमें अनेक सरिताएँ और छोटी-छोटी नदियां पॉलिश किये हुए (चिकने) और पत्थरमेंसे समतल काटे हुए जल मार्गोंमें बह रही थीं।

(उक्त पुस्तक पृष्ठ ४०४)

4. **Our next visitor PAES (Portuguese) 1522 writes** :

"The city of Vijayanagar is as large as Rome and very beautiful to the sight......and the charm of its innumer-able lakes and water-ways and gardens...... One of the rooms he saw in the palace was all of ivory, the chamber as well as the walls from top to bottom and the pillars of the cross-timbers at the top had roses and flowers of

lotuses all of ivory and all well executed. Krishna Dev Raya was the king."[4]

अर्थात्—हमारा अगला पर्यटक पाईज (पुर्तगीज़) १५२२ ई० में आया। उसने लिखा—

"विजयनगर का महापुर उतना ही विशाल है जितना कि रोम। देखनेमें यह बहुत सुन्दर भी है···

"इसके अगणित ह्रदों (झीलों) और जल-प्रवाहों तथा उद्यानोंकी चित्ताकर्षक आभा देखते ही बनती है···

"राज-प्रासादमें उसने एक ऐसा कक्ष (कमरा) देखा जो सारे-का-सारा हाथी-दांतका बना हुआ था···नीचेसे ऊपरतक कमरा और दीवारें सब हाथी-दांतकी थीं। छतको सहारा देने वाले स्तम्भोंके ऊपरके सिरोंपर गुलाब और कमल-फूल भी हाथी-दांतके ही बनाये गये थे। यह शिल्प-कलाके अद्भुत नमूने थे। उन दिनों कृष्णदेव राया वहांका शासक था।"

(उक्त पुस्तक पृष्ट ४०४)

5. **India in the eyes of Babar—**

"The chief excellence of Hindustan is that it is a vast country and has *abundance of gold and silver*."[5]

हिन्दुस्थान बाबर की दृष्टि में—

अर्थात्—"हिन्दुस्थानकी विशेष महत्ता यह है कि यह एक विशाल देश है और इसमें सोना और चांदी प्रचुर मात्रामें विद्यमान् है।"

(उक्त पुस्तक पृष्ठ ४७६)

(६) हिन्दुस्तानकी भवन-निर्माण कला—

डा० फर्गूसनने दक्षिण भारतके एक मन्दिरकी चर्चा करते हुए लिखा है—"यदि यह सम्भव होता कि हम इस मन्दिरको शब्दोंमें बाँध पाते तथा उसकी एक-एक रचनाका शब्द-चित्र तय्यार कर पाते, तो पाठकोंकी समझमें यह बात सरलतासे आ जाती कि भारतके इस मन्दिरकी तुलना हमें एथेन्सके पार्थेननसे करना कहां तक उचित है। यह बात नहीं है कि इन दोनों रचनाओंमें साम्य है। इसके विपरीत तथ्य यह है कि इन दोनोंमें उत्तरीय तथा दक्षिणीय ध्रुवोंका-सा अन्तर है। इसमें यदि एक प्रथम अक्षर है तो दूसरा अन्तिम। दोनों कृतियां दो छोरों पर हैं। और इन दोनोंके बीचमें सम्पूर्ण संसारकी भवन-निर्माण कला समाई हुई है।"[6]

(७) **सुवर्ण के सांकुलोंवाले हाथी—**

पाण्डवोंने अज्ञात-वासका तेरहवां वर्ष विराटनगरमें व्यतीत कर लिया। दुर्योधनने विराटनगरपर आक्रमण कर दिया। अर्जुनने महान् पराक्रम दिखाया। दुर्योधनको मय उसकी चतुरङ्गिनी सेनाके मार भगाया और विराट राजकी साठ हजार गौओंको जिन्हें दुर्योधन ज़बरदस्ती हांके लिए जा रहा था, उसके पंजेसे छुड़ा लिया। विजय दुन्दुभि बजाते हुए जब अर्जुन तथा विराट कुमार उत्तर नगरको वापस लौटे, वहां जाकर उत्तरकुमारने अपने पिता महाराज विराटके सामने अर्जुनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा— महाराज !

अनेन विद्धो मातङ्गो महानेकेषुणः हतः ।
सुवर्णकक्षः संग्रामे दन्ताभ्यामगमन्महीम् ॥

अर्थात्—इस (अर्जुन) ने एक ही बाणसे बड़े भारी गजराजको बींधकर मार दिया। उस हाथीको **सुवर्णके सांकुलोंसे बांधा जाता था।** वह दांतोंके बल पृथिविपर आ रहा।

(८) **सोमनाथकी लूट—**

भारतीय सेनाएँ सोमनाथका युद्ध जीत रही थीं। एक पुजारीने महमूद ग़ज़नवीसे दो हजार रुपये मांगे और बदलेमें विजयका ढंग यह बताया कि 'आप मन्दिरकी छतपरका ध्वज काट दीजिये, आपकी विजय हो जायगी।' महमूदने ऐसा ही किया। भारतीय सेनाओंमें निराशा फैल गई। राजपूत हतोत्साह हो गये। पुजारियोंने शोर मचा दिया—"महादेव बाबा रूठ गये। अब हमारी पराजय अवश्यम्भावी है।" ग़द्दार पुजारी दो हज़ार रुपये लेनेके लिए आगे बढ़ा। महमूदने उसकी गर्दन उड़ादी।

नोट—पंजाबमें अंग्रेजके साथ होनेवाली लड़ाइयोंमें लालसिंह नामी एक ग़द्दारने अंग्रेजोंके साथ ऐसा ही सौदा किया था और ऐसाही इनाम पाया था। ग़द्दार, देश-द्रोहियोंके साथ इसी प्रकारका व्यवहार होना चाहिए।

ग़द्दार पुजारीको दण्ड देनेके पश्चात् सोमनाथकी मूर्ति तोड़ी गई, इसपर निम्नलिखित परिमाणमें धन महमूदके हाथ आया—

सोनेके सिक्के	सात लाख
सोने चांदीके बर्तन	सात सौ मन
कच्ची चांदी	दो सौ मन
हीरे जवाहरात	बीस मन

सब लूटका माल ऊँटोंपर लादकर ले जाया गया।[8]

(९) महाराजा रणजीतसिंहका वैभव—

Lady Login also mentions in her recollections, "I wish you could walk through that same Toshakhana and see its wonders, the vast quantities of gold and silver, the jewels not to be valued, so many and so rich. The Koh-i-Noor, far beyond what I had imagined, Ranjit's gold chair of State, silver Pavilion, relics of the Prophet—Kalgi (Plume) of the last sikh guru, sword of the Persian hero-Rustam (taken from Shah Shujah) Sword of Holkar."[9]

अर्थात्—अपने स्मृति-पत्रोंमें लेडी लॉगन इस बातका भी वर्णन करतीहै—"मेरी अभिलाषा है कि आप स्वयं उस तोशाखानाके अन्दर जाकर स्वयमेव इसके अद्‌भुत् पदार्थोंको देख पाते—सोने और चान्दीके असीम संग्रह, जवाहरात इतनी संख्यामें और इतने बढ़िया कि उनका मूल्यांकन न हो सके, कोहेनूर हीरा कि जिसका मूल्य बहुत अधिक है उस परिमाण से जो कि मैंने आंक रखा था, रणजीतका राजकीय सुवर्ण-सिंहासन, चांदीका शाम्याना, गुरुके अवशेष, अन्तिम सिख गुरुकी कलग़ी, फ़ारसके वीर रुस्तमकी खड्‌ग जो शाह शुजाअ़से ली गई थी। तथा हुलकरकी तलवार।"

(गुरुगोबिन्दसिंहजी के पवित्र शस्त्र जब ४ फर्वरी १९६६ को अमृतसर आये, उस समय सरकारकी ओरसे वितरित पुस्तिका पृष्ठ ५ और भाई काहनसिंह नाभा द्वारा लिखित विश्वकोष 'कलग़ा' के नीचे)

(१०) पंजाबकी एक मिसल की समृद्धि—

मिसलकौड़ियांका नेता सरदार बघेलसिंह हरियाणा, बंगा और शामचौरासीपर शासन करता था। सम्वत् १९३० वि० में उसने ३० हज़ार घोड़ सवार लेकर खुर्जा, अ़लीगढ़, चन्दौसी, हाथरस, इटावा, फ़रुखाबादको लूटा.........५० हज़ार ख़ालसा देहलीपर चढ़ दौड़ा। स. बघेलसिंह सुलहके बाद भी वहीं ठहरा रहा। उसने गुरुद्वारा बंगला साहिब, सीसगंज, रक़ाबगंज, यमुनाके किनारे माता साहब देवी, माता सुन्दरी, गुरु हरकिशन और माता सुन्दरीके दत्तक पुत्र अजीतसिंहकी समाधियां बनवाईं। यही सरदार बघेलसिंह मरा तो अंग्रेजोंने उसकी स्त्री रत्नकौरसे ७५ लाख रुपये छीने।[10]

(११) राजा भोजके समय शिल्पकलाकी उन्नति—

"राजा भोजके राज्यमें और समीप ऐसे-ऐसे शिल्पी लोग थे कि

जिन्होंने घोड़ेके आकारका एक यान-यन्त्र कला-युक्त बनाया था जो कि एक कच्ची घड़ीमें ग्यारह कोस और एक घण्टे में साढ़े सत्ताईस कोस जाता था। वह भूमि और अन्तरिक्षमें भी चलता था।

"और दूसरा पंखा ऐसा बनाया था कि बिना मनुष्यके चलाये चलता; यन्त्रके बलसे नित्य चला करता और पुष्कल वायु देता था। जो यह दोनों पदार्थ आज होते तो योरोपियन इतने अभिमानमें न चढ़ जाते।"[11]

(१२) महाराज युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ—

महाराज युधिष्ठिर द्वारा आयोजित राजसूय-यज्ञके अवसरपर राजाओं द्वारा भेंट किये जाने वाले पदार्थोंको सम्भालनेका कार्य दुर्योधनको सौंपा गया था, जिन्हें देख-देखकर उसका हृदय ईर्ष्याग्निसे अन्दर-ही-अन्दर दग्ध हुआ जाता था। यज्ञानन्तर उसने अपने पिता धृतराष्ट्रको सुनाया कि अकेले काम्बोज नरेशकी ओरसे ही—

> **त्रिखर्वं बलिमादाय द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः।**
> **ब्राह्मणा वाटधानश्च गोमन्तः शत संघशः ॥६॥**[12]

अर्थात्—तीन खर्बकी भेंटलेकर ब्राह्मण और वैश्य सैंकड़ों दलोंमें दर्वाजेपर रुके खड़े हैं।

इस भेंट में से अर्जुनको एक बढ़िया शंख मिला जिससे अति प्रसन्न होकर उसने—

> **ततो प्रहृष्टो वीभत्सुरददाद्धेम श्रृङ्गिणः।**
> **शतान्यनडुहां पंच द्विजमुख्याय भारत ॥७॥**[12]

अर्थात्—एक श्रेष्ठ ब्राह्मणको **पांचसौ** हृष्ट-पुष्ट **सोनेसे मढ़े सींगों वाले** बैल दिये।

(१३) धृतराष्ट्रने द्यूतसभाके लिए आज्ञादी कि—

> **सहस्त्र स्तम्भां हेम वैदूर्य चित्रां**
> **शतद्वारां तोरण स्फाटिकाख्यां ॥१८॥**[13]

अर्थात्—तोरण-स्फटिक नामकी सभा तैयार कराओ, उसमें सुवर्ण तथा वैदूर्यसे जटित एक हज़ार खम्बे और एकसौ दर्वाज़े हों।

(१४) भगवान् श्री कृष्णजीके जन्मोत्सवपर गौ-बैल-बछड़ोंके गलेमें सुवर्ण की ज़ंजीरें—

गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रा तैल रूषिताः ।
विचित्रधातु वर्हस्रग् वस्त्र काञ्चन मालिनः ।।१३।।[14]

अर्थात्—गौ, बैल, बछड़ोंको हल्दी तथा तैलसे रंजितकरके गेरु आदि धातु, मोर-पंख, माला, वस्त्र और सोनेकी जंजीरोंसे सजाया गया ।

(15) "The people here are happy and contented. There are no destitutes, no beggars. The people leave their houses unlocked for years when they go out on pilgrimage without a trace of fear of theft. There are very few cases of moral abbaration. They are all highly virtuous, generous and reliable in their dealings. They are a virile and powerful race, wealthy and wise."[15]

अर्थात्—"यहां (भारत)के लोग प्रसन्न और सन्तुष्ट हैं । यहां कोई अभाव-ग्रस्त नहीं, कोई याचक नहीं । लोग वर्षोंके लिए जब तीर्थ-यात्रापर जाते हैं तो अपने घरोंको बगैर ताला लगाये खुला छोड़ जाते हैं, क्योंकि उन्हें चोरी-चकारीका रञ्चक-मात्रभी भय नहीं होता । नैतिक पतनके यहां बहुत कम उदाहरण मिलते हैं, वे सब उच्चस्तर के धार्मिक, उदार और अपने कार-व्यवहारमें विश्वास-पात्र होते हैं । यह एक शक्तिसम्पन्न, बलिष्ट, वैभवशाली और बुद्धिमानोंकी जाति है ।"

(16) "One of the Roman Kings suffered from a strange uncurable disease. Then he sought our help...... One of our Royal physicians went there, opened his skull and carried out an operation on his brain. The king was cured."[16]

अर्थात्—"एक रोमन बादशाहको एक विलक्षण असाध्य रोगने ग्रस लिया । उसने हमारी सहायता की याचना की···हमारे एक राजवैद्य वहां पधारे, उसकी खोपड़ी खोल डाली, उसके मस्तिष्ककी शल्य-क्रिया कर दी और बादशाह स्वस्थ हो गया ।"

(17) **Riches of Nawab Asif Ali Khan who died at Lahore on 10-11-1641 at the age of seventy.**

"His property at his death was valued at twenty-five million rupees (2,50,00,000), consisting of jewels worth 30 lakhs, gold mohars of the value of 42 lakhs, silver valued at 25 lakhs and other property valued at 25 lakhs.

His palace at Lahore which had been built at a cost of 20 lakhs was, on his death, given to prince Dara Shakoh and 20 lakhs of rupees in cash and valuables were distributed among his 3 sons and 5 daughters. The rest was escheated to the crown''.[17]

नवाब ग्रासिफ़ग्रली खानकी सम्पत्तिका व्योरा—

ग्रर्थात्—"इसकी मृत्यु लाहौरमें १० नवम्बर १६४१को ७० वर्षकी ग्रायुमें हुई थी। उसकी मृत्युपर उसकी सम्पत्तिका मूल्यांकन किया गया, जोकि २५ मिलियन (२,५०,००,०००) रुपये हुग्रा जिसमें ३० लाखके जवाहरात ४२ लाखकी सोनेकी मोहरें, २५ लाखकी चाँदी ग्रौर २५ लाखकी ग्रन्य सम्पत्ति थी। लाहौर स्थित उसका महल, जिस पर २० लाख खर्च हुए थे, उसकी मृत्युपर शाहज़ादा दारा शकोहको, २० लाख नक़द ग्रौर शेष बहुमूल्य पदार्थ उसके ३ लड़कों ग्रौर ५ लड़कियोंमें बाँट दिये गये, शेष बादशाह के हकमें ज़ब्त कर लिया गया।"

उद्धरण स्रोत

(1) Decisive Battles of the World

(2) Glimpses of World History—by Pt. Jawahar Lal Nehru, pp. 403

(3) Ibid P. 404

(4) Ibid 479

(5) प्राचीन भारतकी भवन निर्माण कला आर.सी.दत्त, पृष्ट ५४६ (India what it can teach us-- में उद्धृत पृष्ठ २६)

(6) महाभारत विराट पर्व, अध्याय ७१, श्लोक २०

(7) वेद प्रचारक, दिल्ली, मार्च १९६५

(8) Guru Gobind Singh's Holy Weapons. Government Publication (also Encyclopedia of SIKH Literature under 'Kalgha')

(9) प्रताप जालन्धर ६-२-१९६६

(10) सटिप्पण सत्यार्थ प्रकाश, पृष्ठ २६२

(11) महाभारत सभा पर्व, अध्याय ५०, श्लोक ६, ७

(12) महाभारत सभा पर्व अध्याय ५८ श्लोक १८

(13) श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० अध्याय ५ श्लोक ७

(14) Bunch of Thoughts— M.S. Golwalkar pp 109

(15) Ibid pp 200

(16) Blockman's Ain-I-Akbari quoted by S. M. Latif in History of Punjab and again in the Statesman, New Delhi—3-7-1967

१२

महर्षिका प्रभाव स्वदेशी-विदेशी विद्वानों पर

(1) Mr. Maeter Link wrote :—

1. "It is now hardly to be contested that this source is to be found in India. Thence, in all probability, the sacred teaching spread into Egypt, found its way to ancient Persia and Chaldia, permeated the Hebrew Race and crept in Greece and the South of Europe, finally reaching China and even America."[1]

(१) श्री मैटरलिंकने लिखा—

अर्थात्—"अब यह बात विवादास्पद नहीं रही कि यह स्रोत भारतमें मिलेगा। वहाँसे सम्भवतः यह पवित्र शिक्षा मिश्रदेशमें प्रसारित हुई, फिर पुरातन ईरान और कौलडियामें पहुंची, इस्राईली राष्ट्रमें प्रचलित हुई, यूनानमें प्रविष्ट हुई, अन्ततः चीन और यहां तक कि अमरीकामें भी पहुंच गई।"

(2) Shri Aurobindo wrote :—

2. "In the matter of the 'Vedic interpretation' I am convinced that, whatever may be the final and complete interpretation, Dayanand will be honoured as the first discoverer of the right clues amidst the chaos and obscurity of old ignorance and age-long misunderstandings. His was the eye of direct vision that pierced the truth and fastened on to that which was essential. He has found the key of the doors that time had closed and rent asunder the seals of the imprisoned fountain..."[2]

(२) श्री अरविंदने लिखा :

अर्थात्—"वेदके भाष्यके विषयमें, मुझे विश्वास है कि अन्तिमपूर्ण तशरीह चाहे कुछ भी हो, पुरातन अज्ञान, दीर्घकालीन गड़बड़ी और भ्रामिक अनुवादोंके मध्यमें दयानन्दकी पैनी आँखने सत्यताका दर्शन किया और जो आवश्यक था उस पर डट गया। उसने द्वारकी चाबी ढूंढ निकाली है, जिसे समयने बन्द कर रक्खा था। उसने वास्तविक स्रोतको बन्दी बनाये रखने वाली मोहरोंको तोड़कर परे फैंक दिया है, इसलिए वह इस विषयमें प्रथम अनुसंधानकर्त्ताके रूप में प्रतिष्ठित होगा।

3. Dr. K.C. Vardachari wrote :—

"We shall see that Dayanand had laid the world under deepest debt of obligation for giving to mankind the treasure that was lost or buried under the debris of confusing ideologies and interpretations".[3]

(३) डा. के. सी. वर्द्धाचारीने लिखा :

अर्थात्—"हम अनुभव करेंगे कि दयानन्दने वह कोष जो गुम हो चुका था, भ्रामिक सिद्धान्तवाद और विकृत अनुवादोंके कूड़ा-कर्कटके नीचे दब चुका था, संसारको सौंपकर, कृतज्ञताके बोझके नीचे दबा दिया है।"

4. Shrimati Annie Besant wrote :--

"To see India free, to see her hold her head among the nations, to see her sons and daughters respected everywhere, to see her worthy of her worthy PAST, engaged in building a yet mightier FUTURE, is not this worth working for, worth suffering for, worth dying for?

"Is there any other land which evokes such love for her spirituality, such admiration for her literature, such homage for her valour as this mother of nations, from whose womb went forth the races, that now in Europe and America are leading the world.........

"And has any other land suffered as our India has suffered? Since her sword was broken at Kurukshetra, and the peoples of Europe and Asia swept across her borders, laid waste her cities and discrowned her kings.? They came to conquer but remained here to be absorbed.

"After a history of millenea, stretching far back out of the ken of the mortal eyes, having lived with, but not died with, the mighty civilizations of the past, having seen them rise, flourish and decay until their sepulchres remained, deep buried in earth's crust, having wrought, triumphed and suffered and having survived all changes unbroken, India, who has been verily the crucified among the nations, now stands on this her resurrection morning, the immortal, glorious, even young. And India will soon be seen proud, strong and free, the radiant splendour of Asia, the light and benediction of the world......"[4]

(४) श्रीमती ऐनी बेसेंट का भाषण—

अर्थात्—"भारतको स्वातन्त्र्य सम्पन्न, विश्वके राष्ट्रोंमें उन्नत-मस्तक निहारना और उसके पुत्रों और पुत्रियोंको प्रत्येक स्थानपर सम्मानित होते देखना, उसे अपने गौरवमय अतीतके योग्य और उसे और भी बलवत्तर भविष्यके निर्माणमें संलग्न देखना, क्या इसके लिए यत्न करना, इसके लिए कष्ट उठाना और इसके लिए बलिदान होजाना कर्त्तव्य नहीं है ?

"क्या संसारमें और कोई देश है जो अपने अध्यात्मवादके लिए इतना प्रेम उभारे; अपने साहित्यके लिए इतनी प्रशंसा उत्पन्न करे; अपने शौर्यके लिए इतनी प्रतिष्ठाका सृजन करे, जितना कि यह राष्ट्रोंकी माता, जिसके गर्भसे योरुप और अमरीकाकी वे जातियाँ उत्पन्न हुईं, जो आज संसारका नेतृत्वकर रही हैं, ने किया है ?

"और क्या अन्य किसी देशने इतने कष्ट सहन किये हैं, जितने कि हमारे हिन्दुस्थानने ? तबसे जबकि उसकी खड्ग कुरुक्षेत्रमें भग्न हुई और एशिया एवं योरुपकी जातियोंने इसकी सीमाओंका उल्लंघन किया, इसके नगरोंका विध्वंस किया, इसके राजाओंको मुकुट-रहित किया। वे आईं तो विजयकी आकांक्षा से थीं ; परन्तु इसी समाजमें आत्मसात् होकर यहाँ ही रह गईं ।

"युग-युगान्तरोंके अनन्तर, जो कि मानवी-चक्षुसे बहुत दूरका समय है, भूतकालकी प्रबल सभ्यताओंके साथ जीवित रहकर; परन्तु उनके साथ मरकर नहीं, उनका उत्थान, वैभव और पतन, यहाँ तक कि उनके कंकाल-मात्र पृथिविकी गोदमें दब गये, देखकर, कार्यरत रहकर, विजयी होकर, कष्ट सहन करके और इन समस्त परिवर्तनोंमें सुरक्षित रहकर,

भारत जो कि संसार के राष्ट्रोंमें सबसे अधिक बली-का-बकरा बनाया गया है, अब अपने पुनरुत्थान-प्रभातमें मृत्युञ्जय, वैभव-सम्पन्न और पहलेसे युवावस्थामें यह एशियाका देदीप्यमान वैभव संसारके लिए ज्योति-स्तम्भ, एवं वरदानका रूप धारण किये समक्ष आ खड़ा हुआ है।"

(5) Mr. Maxmuler wrote :

"If I were to look over the whole world to find out the country most richly endowed with all the wealth, power and beauty that nature can bestow—in some parts a very paradise on earth—I should point to India. If I were asked, under what sky the human mind has most fully developed some of its choicest gifts, had mostly pondered on the greatest problems of life and found solutions of some of them which well deserve attention even of those who have studied Plato and Kant., I should point to India. And if I were to ask myself from what literature we, here in Europe who have been nurtured almost exclusively on the thoughts of Greeks and Romans, one Semitic race, the Jewish, may draw that corrective which is most wanted in order to make our inner life more perfect, more comprehensive, more universal and in fact more truly human, *a life not for this life only but a transfigured and eternal life—again I should point to India*...

"I am chiefly thinking of India such as it was a thousand, two thousand and it may be three thousand years ago, I look to India of the village communities, the true India of the Indians".[5]...

(५) **प्रो० मैक्समूलरने लिखा—**

अर्थात्—"यदि हम यह जांचनेके लिए विश्वभरका निरीक्षण करें कि ऐसा कौनसा भूभाग है, जहां प्रकृति-प्रदत्त समस्त प्रकार का धनैश्वर्य, शक्ति तथा सौन्दर्य—यहां तक कि कहीं-कहीं तो पृथिविपर स्वर्ग उतरा हुआ दृष्टिगोचर होने लगे—प्रचुर मात्रामें संकलित नजर आये तो मैं हिन्दुस्थानकी ओर इशारा करूंगा।

"यदि मुझसे प्रश्न किया जाय कि किस आकाशके नीचे मानव मन-मस्तिष्कने किस स्थलपर श्रेष्ठतम विचारोंको पूर्णतः विकसित किया है,

जीवनकी जटलतम समस्याओंपर विचार-विमर्श करके उनमेंसे अनेकोंके समाधान भी अन्वेषित कर लिए हैं, जिनकी ओर उन लोगोंका ध्यानभी आकर्षणीय है, जिन्होंने कि अफलातून एवं काण्टका अध्ययन कर रक्खा है, तो मैं हिन्दुस्थानकी ओर अंगुली उठाऊँगा। और यदि मुझे अपने-आपसे पूछना पड़े कि हम योरुप निवासी लोग, जो कि प्रायः यूनानियों एवं रोमनोंकी विचारधारामें पले हैं और एक सैमिटिक जाति—यहूदियों—का भी हम पर प्रभाव है, कौनसे साहित्यसे ऐसा दुरुस्त मार्ग-दर्शन प्राप्त करें, जिससे कि हम अपने वास्तविक जीवनोंको अधिक पूर्ण, अधिक समृद्ध, अधिक विश्व-प्रिय और वास्तविकता तो यह है कि अधिक मानवीय बना सकें—ऐसा जीवन जो कि केवल ऐहिक जीवनके लिये न हो, प्रत्युत एक पारलौकिक एवं अमर (शाश्वत) जीवन के लिये भी—पुनः मैं हिन्दुस्थानकी ओर ही इङ्गित करूंगा।

"मैं विशेषतः उस हिन्दुस्थानका चिन्तन कर रहा हूं जैसा कि यह आजसे एक हजार वर्ष, दो हज़ार वर्ष और हो सकता है तीन हज़ार वर्ष पूर्व था—मैं ग्राम पंचायत पद्धति-सम्पन्न हिन्दुस्थानका विचार कर रहा हूं जो कि हिन्दुस्थानियोंका सच्चा-सुच्चा हिन्दुस्थान था।"

('हिन्दुस्थान हमें क्या सिखा सकता है' लेखक प्रा० मैक्समूलर १८८३—महर्षिका निधन वर्ष)

उपनिषदोंका अध्ययन करनेके अनन्तर उनके दैवी-रहस्योंके स्पष्ट उद्घाटनसे प्रभावित होकर सुविख्यात जर्मन शोपनहोवर (Schopanhover) ने अपने उद्गार इस प्रकार प्रकट किये—

(6) "It had been the solace of my life, it will be the solace of my death".[6]

अर्थात्—"ये (उपनिषदें) मेरे जीवन के लिए शान्ति-प्रद सिद्ध हुई थीं और यही मेरी मृत्युपर मेरे लिए सान्त्वना प्रदान करेंगी।"

(७) पं० जवाहरलाल नेहरूने रोमन रोलांका निम्नलिखित उद्धरण अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी आफ इण्डिया' के पृष्ठ ६४ पर दिया है—

(7) "If there is any one place on the face of the earth, where all the dreams of living men have found a home, from the very earliest days, when man began the dream of existance, it is India.".[7]

अर्थात्—"यदि जगतितलपर कोई एक ऐसा स्थान है, जहां प्राचीनतम

समयसे, जबसे कि मानवने अपने अस्तित्वका स्वप्न देखना आरम्भ किया, जीवित मानव-समाजके सम्पूर्ण स्वप्न पूरे हो पाये, तो वह हिन्दुस्थान है।"

(पं० जवाहरलालकी 'डिस्कवरी आँफ इण्डिया पृष्ठ ६४)

(८) पं० जवाहरलाल नेहरू ने उक्त पुस्तक के पृष्ठ ६७ पर ए. ई. जी. डब्ल्यू. रस्सेल का निम्न हवाला दिया है—

(8) "Goethe, Wordsworth, Emerson and Thoreau, among moderners have something of this vitality and wisdom, but we can find what they have said and much more in the great sacred books of the East. The Bhagwat Gita and the Upnishads contain such god-like fullness of wisdom on all things that I feel the authors must have looked with calm rememberance back through a *thousand passionate lives*, full of feverish strife for and with shadows, ere they could have written with such certainty, of things which the soul feels to be sure".[8]

अर्थात्—"आधुनिक विचारकोंमें गोथे, वर्ड्सवर्थ, ऐमरसन तथा थोरियो ऐसे महानुभाव हैं जिनकी कृतियोंमें सशक्तता तथा बुद्धिमत्ता स्फुट प्रतीत होती है; परन्तु जो कुछ उन्होंने कहा है वह और उससे भी बहुत अधिक पूर्वके पवित्र और महान् ग्रन्थोंमें हमें प्राप्त होता है। श्रीमद्भगवद्गीता तथा उपनिषदोंमें समस्त समस्याओंका बुद्धि-परक समाधान कुछ इस प्रकार-की दैवी सम्पूर्णताके साथ दर्शाया गया है, जिससे मैं सोचता हूं कि लेखक महाशयोंने समाधिस्थ होकर भावुकता-प्रधान, परिश्रम-पूर्ण अपने अनेक पूर्व जन्मोंके संस्मरणों एवं उनके छाया-चित्रोंकी ओर दृष्टिपात किया होगा, इससे पूर्व कि वे महानुभाव ऐसे आत्म-विश्वासके साथ सम्पूर्ण सिद्धान्तोंका स्पष्टीकरण कर पाए हों, जिनसे कि पूरी तरहसे आत्म-सन्तोष हो जाय।" (पृष्ट ६७)

(९) ब्रिटेनके प्रधान मन्त्री रेम्ज़े मैक्डानल्डने कहा—

"आर्य समाज समस्त संसारको वेदानुयायी बनानेका स्वप्न देखता है। स्वामी **दयानन्दने** इसको जीवन और सिद्धान्त दिया है। उनका विश्वास था कि **आर्य जाति चुनी हुई जाति, भारत चुना हुआ देश और वेद चुनी हुई धर्म पुस्तक है।"**[9]

(१०) मिस्टर टी० एफ० ओनल्डने कहा—

जिन सिद्धान्तोंका स्वामी दयानन्दने प्रचार किया है वे कुछ नये नहीं हैं। वे उतने ही प्राचीन हैं जितना कि हिमालय।"[10]

(११) श्री स्टेन कोनो पी-एच.डी. प्राच्य विद्या विशारद नार्वेने कहा—

"हम वैदिक आर्योंकी सन्तान हैं। राष्ट्रीय आत्म-सम्मानको दृढ़ करने वाला यह विश्वास हमें स्वामी दयानन्द सरस्वतीकी ही कृपा से प्राप्त हुआ है।"[11]

(१२) महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी ने कहा:—

"महर्षि दयानन्द हिन्दुस्थानके आधुनिक ऋषियोंमें, सुधारकोंमें और श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे। उनके जीवनका प्रभाव हिन्दुस्थानपर बहुत अधिक पड़ा है।"[12]

(१३) नेताजी सुभाषचन्द्र बोसने कहा—

"स्वामी दयानन्द सरस्वती उन महानुभावोमेंसे थे जिन्होंने आधुनिक भारतका निर्माण किया है, और जो उसके आचार सम्बन्धी पुनरुत्थान तथा धार्मिक पुनरुद्धारके कारण हुए।"[13]

(१४) विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरने कहा—

"मेरा प्रणाम हो महान् गुरु दयानन्दको जिसकी दृष्टिने भारतके आध्यात्मिक इतिहासमें सत्य और एकताको देखा और जिसके मनने भारतीय जीवनके सब अंगोंको प्रदीप्त कर दिया। जिस गुरुवरका उद्देश्य भारतवर्षको अविद्या, आलस्य और प्राचीन ऐतिहासिक तत्वके अज्ञानसे मुक्तकर सत्य और पवित्रताकी जाग्रतिमें लाना था, मेरा उसे बारम्बार प्रणाम है।

"मैं आधुनिक भारतके मार्ग-दर्शक उस दयानन्दको आदर-पूर्वक श्रद्धाञ्जलि देता हूं जिसने देशकी पतित अवस्थामें सीधे व सच्चे मार्गका दिग्दर्शन कराया।"[14]

(१५) साधु टी. एल. वास्वानी महोदयने अपने हृदयके उद्गार यूं स्फुट किये—

"मेरे निर्बल शब्द ऋषिकी महत्ता वर्णन करनेमें अशक्त हैं। ऋषिका अप्रतिम ब्रह्मचर्य, सत्यसंग्राम और घोर तपश्चर्याके लिये हृदयके पूज्य भावोंसे प्रेरितहोकर मैं उनकी वन्दना करता हूं।"[15]

(१६) कर्नल अल्कॉट्ट, जो महर्षिका शिष्य बननेके लिये अमरीकासे चलकर आया था, ने कहा—

Col. Alcott describes him (Dayanand) as "tall, dignified in carriage and gracious in manners and estimated him thus...

"The Swamy was undoubtedly a great man, a learned Sanskrit Pandit with immense pluck, force of will and self-reliance—leader of men."[16]

अर्थात्—कर्नल अल्कॉट दयानन्दको ऊँचा-लम्बा आकृतिमें रोअबदार और व्यवहारमें श्रेष्ठ पुरुषके रूपमें वर्णन करता हुआ उनके सम्बन्धमें यूँ कहता है—

"निस्सन्देह दयानन्द एक महामानव था, वह संस्कृतका धुरन्धर पण्डित था। उसका धैर्य्य अतुलनीय, आत्मशक्ति अद्वितीय तथा आत्म विश्वास अभूतपूर्व था। वह जनताका नेता था"।

(भवन जर्नल बम्बई, २३-४-१९६७, पृष्ठ ३५)

(17) The causes of spiritual revival in the nineteenth century were analised correctly by Monier Williams. who averred :-

"......That occasional references still arise who make efforts to found a purely Indian Theism on the doctrines supposed to be contained in the hymns of the Veda".[17]

(१७) **अर्थात्**—उन्नीसवीं शतीके आध्यात्मिक पुनरुत्थानके कारणोंका ठीक विश्लेषण मॉनियर विलियम्सने किया जिसने कहा—

"ऐसे सुधारक जो कि वेदकी ऋचाओंपर आधारित स्वच्छ भारतीय एकेश्वरवादका प्रचार करनेका यत्न करते हैं, अब भी समय-समय पर प्रादुर्भूत होते रहते हैं।

(१८) पं० श्यामजी कृष्णवर्माको पठन-पाठन की ताकीद

When Shyamji Krishna Varma was about to leave for England as a Sanskrit teacher, Dayanand in his letter of July 15, 1876 wrote to him—

(18) "That in England he should not do or say anything which might cast a slur on the fair name of India and teach only Vedas and nothing else".[18]

अर्थात्—जब श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा इंगलैंडमें संस्कृत अध्यापनके लिये जाने वाले थे, तब १५ जुलाई, १८७६ को स्वामी दयानन्दने उन्हें अपने पत्रमें लिखा—

"इंगलैंड प्रवासमें कोई ऐसी बात न करना और न ही कहना, जिससे हमारे भारतके पवित्र नामपर किसी प्रकारका कलङ्क लगे। जब तक वहाँ रहो वेद और केवल वेद पढ़ाना और कुछ नहीं।"

(19) **Sir Velantine Chirol wrote in his book "Indian Unrest"**—

Sir Velantine Chirol called Dayanand "One of the earliest apostles of reaction against the west, thought that he propagated against cow-slaughter in deference to one of the most universal of Hindu superstitions".[19]

अर्थात्—सर वैलण्टाईन चिरोलने अपनी पुस्तक 'Indian Unrest' में स्वामी दयानन्दके सम्बन्धमें लिखा—

"दयानन्द पश्चिमके विरुद्ध प्रतिकारकी भावनाका प्रचार करने वाला सबसे पहले देवदूतोंमेंसे एक था और उसने गोहत्या, जो कि हिन्दुओंकी भ्रान्त धारणाओं (वहमों) में सबसे अधिक विश्वव्यापी धारणा है, के विरूद्ध उक्त भावनाके सम्मानके कारण प्रचार किया।"

(भवन जर्नल बम्बई २३-४-१९६७, पृष्ठ ३६)

(20) **Pro. Maxmuller wrote**—

The renowned German scholar Professor Maxmuller acknowledges in his well-known book "India What it can Teach Us" on page 74 as follows :

"The Sanskrit literature starts from Rigveda and ends at Rigvedadi Bhashya Bhoomika written by Maharshi Dayanand who has enriched the vedas by enlightening them with modern scientific touches".[20]

अर्थात्—सुविख्यात जर्मन विद्वान् प्रो० मैक्समूलर अपनी मशहूर पुस्तक 'इण्डिया—व्हट इट कैन टीच अस', पृष्ट ७४ पर स्वीकार करते हैं—

"संस्कृत साहित्य ऋग्वेदसे आरम्भ होता है और महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित 'ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिकापर समाप्त होता है। महर्षि दयानन्दने आधुनिक वैज्ञानिक चाश्नी देकर वेदोंको अधिक समुज्ज्वल बना दिया है।"

(21) "The Vedas are the oldest books claiming the word of God"[21].

अर्थात्--"वेद सबसे पुरानी पुस्तकें हैं जो ईश्वरीयवाणी होनेका दावा करती हैं।" (मेक्समूलर—वेद और बाइबल पृष्ठ ४२)

(22) "The Vedas are eterneal and consequently perfect and infallible".[22]

अर्थात्—"वेद शाश्वत वाणी है इसीलिए पूर्ण और भूल रहित भी।" (वेद और बाइबल, पृष्ठ ३९)

(23) "We can divide the whole sanskrit literature, beginning with the Rigveda and ending with Dayanand's introduction to his edition of Rigveda, (by no means uninteresting,) Rigveda Bhoomika, into two great parts..."[23]

अर्थात्—हम समुच्चय संस्कृत वाङ्मयको, ऋग्वेदसे आरम्भ और दयानन्दके ऋग्वेदके अपने संस्करणकी भूमिका, ऋग्वेद भूमिका (जो किसी प्रकार भी अरुचिकर नहीं है) पर समाप्त करते हुए, दो बड़े भागोंमें विभक्त कर सकते हैं।"

(भारत—यह हमें क्या सिखा सकता है—'वेद' पृष्ठ ५४)

सूचना—प्रो० मैक्समूलरने १८८२ में इण्डियन सिविल सर्विस (आई.सी.एस.) के विद्यार्थियोंके समक्ष सात व्याख्यान दिये जोकि बादमें 'इण्डिया व्हट इट कैन टीच अस' के नामसे पुस्तकाकारमें छाप दिये गये थे। उनमें से—

(२४) **दूसरे भाषण में आपने कहा—सर थामस मनरोके शब्दों में—**

'यदि खेती की उत्तम प्रणाली, उत्पादनका अद्वितीय गुण, सुविधा-जनक तथा आरामदेह वस्तुओंके उत्पादनकी क्षमता, पढ़ना-लिखना एवं प्रारम्भिक गणित सिखानेके लिये गांव-गांवमें खुली पाठशालायें, आपसका सौहार्दपूर्ण-व्यवहार एवं उदारतापूर्ण अतिथि सत्कार और सबसे बढ़कर **नारी जातिका सम्मान**, जिसमें आत्म-विश्वास, आदर और नम्रताका सम्मिश्रण हो, इन सद्गुणोंमें भारतसे योरुपको बहुत कुछ आयात करना होगा'।"[24]

(२५) **तीसरे भाषण में आपने कहा—**

"हमें यह कदाचित् नहीं भूलना चाहिये कि भारतकी सभी भाषाओंका मूलस्रोत संस्कृत है। मेरा मत है कि संस्कृतका आरम्भिक ज्ञान प्राप्त कर लेनेके पश्चात् भारतकी सभी भाषाओंको सीख पाना सरल हो जाता है।"[25]

(२६) "पिछले दिनों भारत सरकारने आदेश दिया कि प्राचीन ग्रन्थोंकी खोज करनेके लिये सर्वेक्षण किया जाय......उन हस्तलिखित ग्रन्थोंकी **कुछ सूचियां** प्रकाशित हुई हैं। इनको देखनेसे प्रतीत होता है कि भारतमें **अप्रकाशित प्राचीन ग्रन्थोंकी संख्या दस हज़ारसे ऊपर है।** आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि संस्कृतका अप्रकाशित साहित्य ही यूनान और इटलीके **सम्पूर्ण संयुक्त साहित्य से अधिक है।**"[25]

(२७) **चौथे भाषणमें आपने कहा—**

"यह भी सत्य है कि वेदमें ऐसी भावनाओंका प्रकाशन हुआ है जो **हम यूरोपियनोंको भी उन्नीसवीं शतीमें आधुनिक प्रतीत होती हैं और मज़ा यह है कि उससे** अधिक प्राचीन कृतिका हमें नाम भी सुननेको नहीं मिला। मानव विचारधारासे इतिहासके विषयमें जो महत्वपूर्ण सूचनाएँ हमें वेदने दी हैं वे वेदोंकी खोजके पूर्व हमारी कल्पनासे भी परे थीं।"[26]

(२८) "......हम इस निष्कर्षपर पहुंचे हैं कि **ऋग्वेदमें जो भी ऋचाएँ हैं उनकी भाषा पूर्ण है, उनके शब्द श्रम साध्य हैं,** उनमें देवताओं और मानवोंके वर्णन हैं, यज्ञों और युद्धोंके वर्णन हैं, उनमें प्रकृतिके विभिन्न अंगों एवं दृश्योंके वर्णन हैं, सामाजिक परिवर्तनोंकी भी बातें है, कर्त्तव्य और आनन्दकी भी प्रेरणायें हैं, दार्शनिक एवं नैतिक विचार-लड़ियां भी हैं......।"[27]

(२९) "......."वैदिक ऋषि आदिम थे, वैदिक भाषा आदिम थी वैदिक धर्म आदिम था और उन सभीको मिलाकर वे किसी भी ऐसी भाषा, धर्म एवं काव्यसे **पुराने थे, जिनका पता अबतक हमें लग सका है।"**

(३०) "......**भारत अनुपम था, स्वर्गीय था, और भारतीय ऋषियोंने उस अनुपम एवं स्वर्गीयको सामान्य एवं नारकीय नहीं बनाया**..."[28]

(३१) **पांचवें व्याख्यानमें आपने कहा—**

"....**यद्यपि ज्ञानकी** कोई ऐसी शाखा नहीं जिसपर वैदिक साहित्यने प्रकाश नहीं डाला हो और जिसपर उसने सर्वथा नवीन दृष्टिकोण न उपस्थित किया हो, फिरभी धर्म एवं पौराणिकताके संबंधमें उसने जो प्रकाश दिया, उसके महत्व, उसकी नवीनता एवम् उसकी समृद्धिकी तो उपमा ही नहीं...सुदृढ़तम धार्मिक विश्वासोंको पूरी तरह समझपानेका एक मात्र साधन वेद है। मानव-धर्मशास्त्र हो या महाभारत, या कोई पुराण, उन सभीनें वेदकी चर्चा हुई है और उन सभीने मुक्तकण्ठसे वेदोंको सर्वोच्च धार्मिक ग्रन्थ माना है।...वेदमें अनेक ऐसी ऋचाएँ हैं जिनमें एक देववादकी बात जितना बल देकर कही

गई है उतना बल देकर तो ओल्ड टेस्टामेंटमें भी नहीं है। न्यू टेस्टामेंट और कुरानकी भी यही स्थिति है। एक वैदिक ऋषिका कथन है कि वह एक है सन्तजन उसे विभिन्न नामोंसे पुकारते हैं जैसे कि अग्नि, यम, मातरिश्वन्— बुद्धिमान् अपने चुने हुए शब्दोंसे उसीकी अभिव्यञ्जना करते हैं जो एकमेव है।······इस प्रकारका विश्वास न तो कुरानमें ही है और न ओल्ड-टेस्टामेंटमें······"[29]

(३२) **सातवें व्याख्यान में आपने कहा—**

"श्राद्ध शब्द अर्थ पूर्ण है······**न तो श्राद्ध शब्द का दर्शन वेदमें मिलता है और न ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें।** अतः यह परिणाम निकाला जा सकता है कि यह शब्द काफी बाद में प्रचलित हुआ······"

"I maintain then, that for a study for man there is nothing in the whole world equal in importance to the Vedas. I maintain that everybody who cares for his ancestors or his history or for his intellectual development, study of vedic literature is indispensible".[30]

अर्थात्—"मैं दावा करता हूं कि संसारमें मनुष्य मात्रके स्वाध्यायके लिये यदि कोई पुस्तक है तो वह 'वेद' है। मैं दावा करता हूं कि संसारका प्रत्येक मनुष्य जो अपने पूर्वजों, अपने इतिहास और अपने मस्तिष्कका विकास करना चाहे, उसके लिये वेदका स्वाध्याय अनिवार्य है।"

(३३) "समूचे संसारमें कोईभी अध्ययन इतना लाभजनक नहीं है जैसा कि उपनिषदोंका अध्ययन···"

(34) "To Swami Dayanada, everything contained in the Vedas was not only perfect truth, but he went a step further and by their interpretation succeeding in persuading others that every thing worth knowing, even the most recent inventions of modern science, were alluded to in the Vedas. Steam engine, electricity, telegraphy and wireless were shown to have been known at least in the germs to the poets of the Vedas".[31]

अर्थात्—दयानन्दकी दृष्टिमें वेदोंमें जो कुछ विद्यमान् है वह न केवल पूर्ण सत्य ही है, प्रत्युत, वह तो एक क़दम आगे जाता है और उनके भाष्य द्वारा संसारको प्रेरित करनेमें सफल हो जाता है कि जो कुछ भी ज्ञातव्य है, यहां तक कि विज्ञानके आधुनिकतम आविष्कारों—वाष्प ऐञ्जन, विद्युत्, तार

के उपकरण, और बेतारका क्रम—की ओर वेदमें इशारे पाये जाते हैं। न्यूनातिन्यून यह कि ये सब कुछ बीज रूपमें वैदिक ऋषियोंको ज्ञात था।"

('वेद', पृष्ठ ५४)

(35) "We have heard and read about the ancient religion of India. It is the land of the great Vedas, the most remarkable works, containing not only religious idea of a perfect life, but also facts which all the sciences have since proved true—Electricity, Radium, Electrons, Air-ships—all seem to be known to the seers who founded the Vedas"[32]

अर्थात्—हमने भारतके प्राचीन धर्मके सम्बन्धमें पढ़ा और सुना है। यह महान् वेदोंकी भूमि है, जोकि विख्याततम कृतियां हैं। इनमें न केवल पूर्ण-जीवनके लिये धार्मिक विचारोंका वर्णन ही है, अपितु वे सम्पूर्ण तथ्य भी इनमें विद्यमान् हैं, जिन्हें समस्त विज्ञानने सत्य सिद्ध किया है—विद्युत्, रेडियम, इलैक्ट्रोन, वायु-यान आदि—सब—वेदोंकी नींव रखने वाले ऋषियोंको विदित थे।"

(श्रीमती व्हीलर बिल्कॉक्स)

(36) "The veda is the book of knowledge and wisdom, comprising the book of nature, the book of religion, the book of prayers, the book of morals and so on. The word 'Veda' means wit, wisdom, knowledge and truly the Veda is condensed wit, wisdom and knowlege".[33]

अर्थात्—वेद, ज्ञान, तथा बुद्धिका पुस्तक है जिसमें प्रकृतिकी पुस्तक, धर्म की पुस्तक, प्रार्थनाओंकी पुस्तक तथा आचार-विचारकी पुस्तक सम्मिलित है। 'वेद' शब्द का अर्थ ही बुद्धि, मेधा एवं विद्या है और वस्तुतः वेद एक स्थानमें राशिकृत बुद्धि, मेधा एवं विद्या है।"

(वैदिक लाइट, फरवरी ६८, पृष्ठ १६)

(37) "Readers of the Vedas who do not know the wonderful characteristic feature of the Veda in determining the Physical as well as the Spiritual by means of the self same words, are apt to be misled by the false idea that the Veda looks fire, air, the dawn, the sun, and other agent forces, phenomena or objects of nature as Divine Beings, to whom the Vedic Rishis prayed for strength, health, wealth, long life, brave sons,

rich possessions and so on. *But the Vedas teach nothing but Monotheism of the purest kind*, the belief that this universe manifests the love, might, wisdom and glory of God, who eternally evolves and dissolves alternately innumerable systems of worlds, for the benefit, discipline and well being of the Jeevatmas, according to the eternal laws of nature, (called *Rit* in the Vedas) and also according to the law of Karma (as implied in it) etc".[34]

अर्थात्—"वेदके ऐसे पाठक जिन्हें वेदके एक ही शब्दसे लौकिक एवं आध्यात्मिक तथ्योंके प्रकट करनेके अद्भुत एवं विशेष गुणका ज्ञान नहीं है, वे इस भ्रममें पड़ सकते हैं, कि वेद, अग्नि, वायु, उषा, सूर्य तथा अन्य कार्य-कर्त्री शक्तियोंको दैवी व्यक्तियोंके रूपमें स्वीकार करता है, जिनके समक्ष वैदिक ऋषि, सत्ता, स्वास्थ्य, सम्पत्ति, दीर्घायु, वीर सन्तति, धन-ऐश्वर्य आदि-आदि के लिये प्रार्थना करते थे। परन्तु **वेद विशुद्ध प्रकारके एकेश्वरवादके सिवाय और किसी भी बातका प्रतिपादन नहीं करते**। वेदका आदेश है कि यह विश्व, परमात्म-प्रेम, प्रभु-शक्ति, ईश्वरीय-बुद्धि और उस दैवी-गौरवका गान करता है, जो अनादिकालसे जीवात्माओंके कल्याणार्थ अनुशासन तथा भलाईके लिये, शाश्वत प्राकृतिक नियमों (जिन्हें वेद में 'ऋत्' शब्द से व्यक्त किया गया है) और साथही कर्मानुसार (जैसा कि इससे स्पष्ट होता है) असंख्य ब्रह्माण्डों-का यथा-क्रम निर्माण एवं प्रलय करता रहता है।"

(वैदिक लाईट, फरवरी १९६८, पृष्ठ १६-१७)

(38) "The Vedas are without doubt the oldest works composed in Sanskrit. Even the most ancient sanskrit writings allude to the Vedas as already existing. The Vedas stand alone in their solitary splendour standing as beacon of Divine Light for the onward march of Humanity".[35]

अर्थात्—"निस्सन्देह वेद संस्कृत साहित्यमें प्राचीनतम ग्रन्थ है। पुरानीसे पुरानी संस्कृत पुस्तकोंमें भी वेदोंके अस्तित्वकी ओर इङ्गित मिलता है। वस्तुतः वेद अपने अभूतपूर्व गौरवके साथ मानवजातिके उन्नतिपथपर अग्रसर होनेके लिये एकमात्र दैवी-प्रकाश-स्तम्भके रूप में विद्यमान् है।

(वैदिक लाईट, फरवरी १९६८, पृष्ठ १८)

(39) "What extracts from the Vedas I have read, fall

on me like the light of a higher and purer luminary, which describes a loftier course through a purer strata, free from particulars, simple, universal, the Vedas contain a sensible account of God".[36]

अर्थात्—"वेदके जो उद्धरण मैंने पढ़े हैं, वे मुझपर मानो उच्चतम एवं पवित्रतम प्रकाश पुञ्जकी भांति अवतरित हुए हैं, जोकि पावन स्थितिसे उच्चतर मार्गका वर्णन करते हैं। विस्तार रहित, सादा, सार्वभौम—वेदोंमें परमात्माका बुद्धिगम्य वर्णन उपलब्ध होता है।"

(वैदिक लाईट फरवरी, १९६८ पृष्ठ १८)

(40) "As far as I can grasp, the teaching of the Vedas, it is so sublime that I would look upon it as a crime on my part, if the Russian public becomes acquainted with it through the medium of a confused and distorted translation, thus not deriving for its soul that benefit which this teaching should give to the people."[37]

अर्थात्—"जहां तककि मैं वेदकी शिक्षाको समझ सका हूं, यह इतनी उत्कृष्ट है कि यदि रूसी जनता किन्हीं भ्रामिक अथवा तोड़-मरोड़कर किये गये अनुवादोंके माध्यमसे इससे परिचित हो पायी तो मैं इसे अपने लिये बज्रपाप समझूँगा, क्योंकि इस प्रकार ज्ञान-प्राप्तिके द्वारा वह कल्याणकारी लाभ नहीं उठाया जा सकेगा, जो कि इस उच्च शिक्षासे जनताको उपलब्ध होना चाहिये।"

(वैदिक लाईट फरवरी, ६८ पृष्ठ १९)

"Vedic Religion recognizes but ONE God. It is a thoroughly scientific Religion. Religion and Science meet hand-in-hand here. Theology is based on science and philosophy".[38]

अर्थात्—"वैदिक धर्म केवल एक ही ईश्वरको स्वीकार करता है। यह पूर्णतः वैज्ञानिक धर्म है। धर्म और विज्ञानका इसमें पूरी तरह समन्वय है। धर्म, विज्ञान तथा दर्शन शास्त्रपर आधारित है।"

(वैदिक लाईट, फरवरी ६८, पृष्ठ १९)

(42) "There is then, nothing fantastic in Dayanand's idea that Veda contains truth of science as well as truth of religion. I will even add my own conviction that Veda contains the other truths of science, the modern science does not at all possess, and in that

case Dayanand has rather under-stated than over-stated the depth and range of Vedic wisdom".[39]

अर्थात्—"तब, दयानन्दकी यह धारणा कि वेदमें विज्ञान एवं आध्यात्मिकता—दोनों—विद्यमान् हैं, असत्य नहीं है। मैं तो इसके साथ अपने निश्चित मतका उल्लेख भी करूंगा कि वेदमें तो एक ऐसे विज्ञानकी सत्यता भी विद्यमान् है, जोकि आधुनिक वैज्ञानिक संसारके पास है ही नहीं। और उस परिस्थितिमें दयानन्दने वैदिक-ज्ञानकी गहराई और दूरतक रसाईका बढ़ाकर नहीं, प्रत्युत घटाकर ही अनुमान लगाया है।"

(दयानन्द, श्री अरविन्द घोष की दृष्टि में, पृष्ठ २०)

(43) Schopenhover once said that :-

"In India our religion (Bible) will now and never strike roots. The primitive wisdom of the human race will never be pushed aside by the events of Galilee. On the contrary Indian wisdom will flow back upon Europe, and produce a thorough change in our knowledge and thinking".[40]

अर्थात्—शोपनहावर ने एक बार कहा था—

"हमारा मत (बाईबल) हिन्दुस्थानमें आज अथवा कभी भविष्यमें भी बद्धमूल नहीं हो सकेगा। गैलीलीकी घटनाओंकी विद्यमानतामें मानवजातिकी प्रारम्भिक मेधा कभी भी एक ओर धकेली नहीं जा सकेगी। इसके विपरीत भारतीय ज्ञान पुनर्वार योरुपपर अधिकार जमा लेगा और हमारी बुद्धियों एवं विचारसरणीमें आमूल-चूल परिवर्तन उत्पन्न कर देगा।" (वेद, पृष्ठ ३२)

(44) "If any historical or geographical names occur in the Vedas, they are all explained away, because if taken in their natural sense, they would impart to the Vedas, historical and temporal taint".[41]

अर्थात्—"यदि वेदमें कोई ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक संज्ञाएँ आ जायें तो उन सबका स्पष्टीकरण योगिक विधिसे कर दिया जाता है, क्योंकि यदि उन्हें शाब्दिक (रूढ़) अर्थोंमें लिया जाय तो वे वेदोंको ऐतिहासिक एवं जागतिक रूप में प्रस्तुत कर देंगे।" (बायोग्रेफीकल ऐसेज़, पृष्ठ १७०)

(45) Dr. H.D. Griswold of Lahore worte in the 'Indian Evengelical Review' for January, 1892, as under :-

"Pandit Dayanand Saraswati became finally eman-

cipated from the authority of Brahmanism in some such way as Luther became emancipated from the authority of the Church of Rome. Luther appealed from the Roman Church and the authority of tradition to the scriptures of the old and new Testament. Pandit Dayanand Saraswati appealed from the Brahmanical Church and the authority of Smriti to the earliest and most sacred of Indian scriptures. The watch-word of Luther was 'Back to the Bible'. The watch-word of Pandit Dayanand was 'Back to the Vedas'. With this religious watch-word another watch-word was implicitly, if not explicitly, combined, namely, "India for the Indians". Combining these two, we have the principle, both religious and political that the religion of India as well as the sovereignty of India ought to belong to the Indian people. In other words—*Indian Religion for the Indians and Indian sovereignty for the Indians.* In order to accomplish the first end Indian Religion was to be reformed and purified by return to the Vedas, and the foreign religions as Islam and Christianity were to be extirpated. Thus the programme included reform for indigenous religion and extirpation for foreign religions. With regard to the second end, the founder of the Arya Samaj seems to have taught that a return to the pure teachings of the Vedas would gradually fit the people of India for the *self-rule* and that independence would ultimately come to them.

I am not charging Pandit Dayanand with disloyalty. Every sincere well-wisher of India hopes that the time will come when the Indian people through the spread of education, and the removal of bad social customs and above all through the prevelance of true religion will be fitted for self-government. It is evident from all this that Pandit Dayanand was a man of large views. He was a dreamer of splendid dreams.

He had a vision of India purged of her superstitions, fitted with the fruits of science, worshipping one God,

fitted for self-rule, having a place in the sister-hood of nations and restored to her ancient glory. All this was to be accomplished by throwing overboard, the accumulated superstitions of the centuries and returning to the pure and inspired teachings of the Vedas. Thus the founder of the Arya Samaj was a kind of Elijah or John the Baptist, who felt himself called to turn the hearts of the degenerate children of modern India to their fathers of the glorious Vedic Age, to reconcile the present with the past. The character of his mission helps to account for the violence of his methods of controversy. Elijah was not specially gentle in his dealings with the prophets of Baal, nor was Luther very tender towards the Roman Church. In like manner Pandit Dayanand stood with his back to the wall, facing on the one hand the attacks of the Brahmanical heirarchy and on the other the assaults of the foreign religions, Islam and Christianity. Under these circumstances we can hardly wonder that he struck back as hard as he could. Luther dealt heavy blows on the Roman Church as Pandit Dayanand at the Brahmanical Church.

Suppose, now, that while Luther was fighting with Rome, the extensive and powerful Mohammedan propaganda, which threatened to devour all the fruits of Reformation, was found all over Europe, what would Luther have done under these circumstances, but smite the apostate Roman Church at home and the Mohammendan propaganda from abroad with impartial zeal and violence and with no great effort to be fair and appologetic. This illustrates exactly Pandit Dayanand's attitude towards degenerate Brahmanical Church, on the one hand, and the foreign faiths—Christianity and Islam on the other. In his opinion the one needed to be purged and pruned, the other to be extirpated. The sections in the *Satyartha Prakash* which deal with the criticism of Islam and Christianity are evidently inten-

ded to be the literature of extirpation, i. e. to be the means of rooting out all such foreign superstitions from the hearts of the sons of India".[42]

अर्थात्—"पण्डित दयानन्द सरस्वतीने ब्राह्मण (तात्पर्य पौराणिक रूढ़िवाद—लेखक) धर्मसे कुछ उसी प्रकार पूर्णरूपेण विमुक्ति प्राप्त कर ली थी, जिस प्रकार कि लूथरने रोमके चर्चके प्रभुत्वसे। लूथरने पुराने तथा नये अहदनामेके प्रमाणसे रोमन चर्च और परम्पराओंके विरुद्ध जनतासे अपील की। पण्डित दयानन्द सरस्वतीने पौराणिक विचार-धाराओं एवं स्मृति-धर्मके प्रतिकूल पवित्र, प्राचीनतम, भारतीय वाङ्‌मयका प्रामाण्य स्वीकार किया। लूथरका उद्‌घोष था 'वापस लौटो बाइबल की ओर'। इसी प्रकार पण्डित दयानन्दका आदेश था 'लौटो वापस वेदोंकी ओर'। उक्त धार्मिक उद्‌घोषके साथ—स्पष्टत: न सही—'आर्यावर्त्त आर्योंके लिये,' का संकेत भी शामिल था। उपरि-लिखित दोनों उद्‌घोषोंको एकत्रित कर लेनेपर हम इस परिणामपर पहुंचते हैं कि धार्मिक एवं राजनैतिक राज्य सत्तापर आर्योंका ही स्वत्व होना चाहिए। या दूसरे शब्दोंमें यह कि भारतीय धर्म आर्योंके लिए और भारतीय राज्य-सत्ता भी भारतीयोंके लिये। प्रथम ध्येयकी प्राप्तिके लिये वेदाभिमुख होकर भारतीय धर्मका सुधार तथा पवित्रीकरण आवश्यक था, साथ ही विदेशी-मतों यथा इस्लाम और ईसाइयतका मूलोच्छेदन भी अनिवार्य था। इस प्रकार पण्डित दयानन्दके कार्यक्रममें भारतीय धर्मका सुधार और विदेशीय मतोंका उन्मूलन सम्मिलित था। दूसरे लक्ष्यके सम्बन्धमें ऐसा प्रतीत होता है कि आर्यसमाजके प्रवर्त्तकने यह शिक्षा दी थी कि वेदोंकी पवित्र शिक्षाओंकी ओर मुँह फेर लेनेपर भारतवासी आत्म-शासनकी क्षमता प्राप्त कर लेंगे, परिणामत: उन्हें स्वातन्त्र्य की उपलब्धि स्वयमेव हो जायेगी।

"मैं पण्डित दयानन्दपर राजद्रोही होनेका लाञ्छन नहीं लगा रहा। भारतवर्षके प्रत्येक हितचिन्तककी यह अभिलाषा है कि ऐसा समय शीघ्र आये, जबकि विद्याके प्रचार, वीभत्स सामाजिक कुरीतियोंके सुधार और सबसे बढ़कर वास्तविक धार्मिक भावनाओंके प्रसार द्वारा भारतीय जनता स्वराज्यके योग्य हो जायेगी। उक्त सन्दर्भसे यह स्पष्ट है कि पण्डित दयानन्द सरस्वती उदार विचारोंके महापुरुष थे। वे दिव्यस्वप्नोंको देखने वाले थे। वे एक ऐसे भारतका स्वप्न देख रहे थे, जिसकी समस्त भ्रान्त भावनाओंका पूर्णरूपेण विनाश हो गया हो, जोकि वैज्ञानिक-सत्यताओंसे ओत-प्रोत हो रहा हो, जोकि एक ईश्वरका उपासक हो, जोकि पूर्ण स्वातन्त्र्यका अधिकारी बन

गया हो, जिसे संसार भरके राष्ट्रोंमें सम्मानित-स्थान उपलब्ध हो चुका हो और जिसने अपने अतीत गौरवको प्राप्त कर लिया हो। इस लक्ष्यकी प्राप्ति हेतु शताब्दियोंसे संचित भ्रान्त धारणाओंका सर्वथा विनाश अनिवार्य था और यह सब कुछ वेदकी पवित्र एवं प्रेरणा-प्रदायक शिक्षाओंकी ओर अग्रसर होकर ही उपलब्ध करना था।

"इस प्रकार हम इस परिणाम पर पहुंचते है कि आर्यसमाजका प्रवर्त्तक एक प्रकारसे भारतीय ऐलीजाह अथवा बपतस्मा देनेवाला जॉह्न था, जिसने अपना यह कर्त्तव्य अनुभव किया था कि आधुनिक भारतकी पतित सन्तानों-के हृदयोंको उनके वैदिक-युग-कालीन उत्कृष्ट पूर्वजोंकी ओर फेरकर भूत तथा वर्त्तमान् का समन्वय कर दे। उसके मिशनकी महत्ताको दृष्टिगोचर रखलेने मात्रसे उसकी आलोचनाओंकी तीव्रताको समझनेमें पर्याप्त सहायता मिलती है। 'ऐलीजाह' बॉलके पैग़म्बरोंके साथ निपटते समय विशेष मृदुता-का प्रदर्शन नहीं किया करता था और न ही 'लूथर' रोमन चर्चके साथ सहिष्णुताका व्यवहार करता था। इसी प्रकार पण्डित दयानन्द सरस्वती दृढ़भित्तीके सहारे खड़े होकर एक ओर पौराणिकों (रूढ़िवादियों) के आक्रमणोंका प्रतिकार करते थे और दूसरी ओर इस्लाम और ईसाइयतके विदेशी मतोंका मुक़ाबिला। इन परिस्थितियोंमें हमें कोई हैरानी नहीं होती जब हम उन्हें पूरे ज़ोरसे मुक़ाबलेकी चोट करते देखते हैं। लूथरने रोमन-चर्चपर ताबड़-तोड़ हमले किये और पण्डित दयानन्दने पौराणिक परम्पराओं-के विरुद्ध। अनुमान लगाइये कि जिन दिनोंमें लूथर रोमके साथ युद्ध कर रहा था, उन्हीं दिनों योरुपमें इस्लामका ऐसा प्रबल प्रचार होने लगता, जो कि लूथर की समस्त सुधारवादी भावनाओंको निगलने लगता, ऐसी परिस्थि-तियोंमें धर्मच्युत रोमन-चर्चपर करारी चोट करने और विदेशी-मत इस्लामके प्रचारको अदम्य उत्साहसे रोकनेके अतिरिक्त लूथर और क्या करता? उस समय वह अहिंसक मृदुताका व्यवहार कदाचित् न करता। इस उदाहरणसे पण्डित दयानन्दकी कार्य-पद्धति, जिसके अनुसार वह एक ओर घृणित पौराणिक रूढ़ीवादी परम्पराओं और दूसरी ओर विदेशीयमतों—इस्लाम और ईसाइयत—के विरुद्ध लड़ रहे थे, स्पष्ट हो जाती है।

"उनकी सम्मतिमें एक (पौराणिक परम्पराओं) में कांट-छांट एवं सुधारकी और दूसरों (इस्लाम तथा ईसाइयत) के सर्वनाश की परमावश्यकता थी। सत्यार्थप्रकाशके वे समुल्लास, जिनमें इसलाम और ईसाइयतकी आलोचना की गई है, वास्तवमें इन दोनों (इस्लाम और ईसाइयत) के

मूलोच्छेदनका साहित्य प्रतीत होते हैं अर्थात् उनके द्वारा भारतीय सन्तानोंके हृदयोंमें से इस प्रकारकी समस्त विदेशीय भ्रान्तभावनाओंका समूलोच्छेदन ही अभीष्ट था।" (डा. जे. एन. फर्कुहर द्वारा अपनी पुस्तक 'भारत के आधुनिक धार्मिक आन्दोलन' के पृष्ठ १११—११३ और हाल ही में डा० धर्मानन्त सिंह द्वारा लिखित गुरमुखी अक्षरोंके ग्रन्थ 'वैदिक गुरमति' के पृष्ठ २७४—२७६ पर उद्धृत)।

(४६) रूसके प्रसिद्ध दार्शनिक कौंट टालस्टायने महर्षि की महान् कृति 'सत्यार्थप्रकाश' का अध्ययन करनेके अनन्तर निम्न उद्‌गार प्रकट किये—

"मैंने ऋषिदयानन्दकी कृति सत्यार्थप्रकाशके अध्ययनसे मानसिक शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त की। आर्यसमाज के नियमोंको मैंने महती अभिरुचि के साथ पढ़ा।"[43]

(४७) रोमन रोलां ने कहा—

"वर्तमान् कालमें जितने महापुरुष हुए हैं उनमें सबसे बड़ा व्यक्तित्व दयानन्द का था। जितना जीवन हिन्दुस्थानमें पैदा हुआ है, उसके जन्म-दाता ऋषिवर दयानन्द ही थे।"[44]

(४८) श्रीमती खदीजा बेगमने कहा—

"स्वामी दयानन्द निस्सन्देह एक ऋषि थे। सब पण्डितोंने उनपर पत्थर फेंके। उन्होंने अपनेमें महान् भूत् और महान् भविष्य को मिला दिया। वह आया तुम्हारे कारागार को तोड़नेके लिये, तुम्हारी आत्मा-को बन्धनसे छुड़ानेके लिये। वह तुम्हारे समाधि-स्थानों को खोलने आया। वह तुम्हारे राष्ट्रको पुनर्जीवन देने आया।"[45]

(४९) परमहंस रामकृष्णकी जीवनीमें रोमन रोलाँने लिखा—

"This man (Dayanand) with the nature of a lion is one of those, whom Europe is too apt to forget, when she judges India, but whom she will probably be forced to remember to her cost, for he was that rare combination, a thinker of action with a genius of leadership".[46]

अर्थात—"सिंह समान निर्भीक प्रकृतिवाला यह पुरुष (दयानन्द) उन व्यक्तियोंमेंसे था, जिन्हें भारतका मूल्यांकन करते समय योरुप भुलानेकी चेष्टा करता हुआ भी विस्मृत नहीं कर सकेगा, क्योंकि ऐसा करना उसके

(योरुप के) हितमें नहीं होगा। इस महान् पुरुष (दयानन्द) में विचारक कर्मनिष्ठ एवं नेतृत्वकी प्रतिभाका अनुपम सम्मिश्रण था"। (पृष्ठ १४६)

(50) "Dayanand was not a man to come to understanding with religious philosophers imbued with western ideas"[47]

अर्थात्—"दयानन्द, पाश्चात्य विचारोंसे विमोहित दार्शनिकोंके साथ समझौता करनेवाले महानुभाव न थे।" (पृष्ठ १५०)

(51) "It was impossible to get the better of him, for he possessed an unrivalled knowledge of Sanskrit and the Vedas, while the burning vehemance of his words brought his adversaries to naught. They likened him to a flood. Never since Shankar had such a prophet of Vedism appeared".[48]

अर्थात्—"उन (दयानन्द) पर विजय पाना असम्भव था। क्योंकि वे वैदिक वाङ्मय और संस्कृतके अनुपम भण्डारथे। उनके शब्दोंकी धधकती हुई भाषासे उनके विरोधियोंका विरोध भस्मसात् हो जाया करता था। वे (विरोधी) लोग जलके प्रबल प्रवाह (बाढ़) के साथ उस (दयानन्द) की तुलना किया करते थे। शङ्कराचार्य के पश्चात् दयानन्द जैसा वेदवित् भारतने उत्पन्न ही नहीं किया। (पृष्ठ १५०)

(52) "Dayanand's stern teachings corresponded to the thought of his countrymen and to the first stirrings of Indian nationalism to which he contributed".[49]

अर्थात्—"दयानन्दकी उग्र तथा प्रौढ़ शिक्षाएँ उनके देश-वासियोंकी विचारधाराके अनुकूलथीं। और उन शिक्षाओंसे भारतीय राष्ट्रवादका प्रथम पुनर्जागरण हुआ और उनका इसमें बहुत बड़ा भाग था।" (पृष्ठ १५३)

(52) "The enthusiastic reception accorded to the thunderous champion of a Vedist belonging to a great race and penetrated with the sacred writings of ancient India and with heroic spirit is then easily explained".[50]

अर्थात्—"अजेय योद्धा दयानन्दका उत्साह पूर्वक स्वागत होनेका कारण इस पृष्ट भूमिके प्रकाशमें आजानेपर सहज ही में समझमें आ सकता है कि वे स्वयं वेदके उग्र प्रचारक, प्रकाण्ड विद्वान्, एवं मर्मज्ञ थे। वे ऋषियों की पुरातन परम्पराके अंग थे और वीरताकी भावनाओंके साथ प्राचीन भारतके

पवित्र ग्रन्थोंको साथ लेकर कार्य-क्षेत्रमें अवतीर्ण हुए थे। उन्होंने भारतपर आक्रमण करने वालोंके साथ अकेले ही लोहा लिया।" (पृष्ठ १५७)

(54) "He had no pity for any of his fellow country-men past or present who had contributed in any way to the thousand years decadence of India—at one time the mistress of the world."[51]

अर्थात्—"दयानन्दने अपने देशके, प्राचीन अथवा अर्वाचीन, किसीभी निवासीको क्षमा नहीं किया, जिसने किसी न किसी रूप में उसभारतके एक सहस्र वर्षके पतनमें योग दिया, जो किसी समय विश्वका सिरमौर था।"

(पृष्ठ १५८)

(55) "It was in truth an epoch-making date for India when a Brahman not only acknowledged that all human beings have the right to know the Vedas, whose study had previously been prohibited by orthodox Brahmans, but insisted that their study and propaganda was the duty of every Arya."[52]

अर्थात्—"सत्य तो यह है कि भारतके लिये वह दिन एक युग-परिवर्तन-का दिन था, जब कि एक ब्राह्मणने न केवल यह स्वीकार ही किया कि वेद-ज्ञानपर मानव-मात्र का अधिकार है जिनका पठन-पाठन उनसे पूर्वके कट्टर-पन्थी ब्राह्मणोंने निषिद्ध कर रखा था, अपितु इस बातपर भी बल दिया कि 'वेदका पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्योंका परमधर्म है।"

(पृष्ठ १५९)

(56) "Dayanand transferred with the languid body of India his own formidable energy, his certainty, his lion's blood. His words rang with heroic power."[53]

अर्थात्—"दयानन्दने भारतके निष्प्राण शरीरमें अपना अदम्य उत्साह, अपना दृढ़ निश्चयात्मक संकल्प और अपना सिंह-जैसा रक्त भरकर, उसे सजीव किया। उसके शब्द वीरोचित शक्तिके साथ गूँज उठे।" (पृष्ठ १६१)

(57) "Above all he would not tolerate the abominable injustice of the existance of UNTOUCHABILITY and nobody has been a more ardent champion of their outraged right. They were admitted to the Arya Samaj on basis of equality".[51]

अर्थात्—"सबसे मुख्य बात यह है कि दयानन्दको अस्पृश्यताकी विद्यमानता का घृणित अन्याय सर्वथा असह्य था। उनके अधिकारोंका जितनी उग्रताके साथ दयानन्दने समर्थन किया, उतनी उग्रताके साथ किसी अन्यने नहीं किया। वे (अस्पृश्य लोग) आर्यससाज में समानताके आधारपर प्रविष्ठ किये जाते थे।"

(58)"He was in fact the most vigorous force of the immediate and present action in India at the moment of the rebirth and re-awakening of the national consciousness."[55]

अर्थात्—"वस्तुतः भारतकी राष्ट्रीय चेतनाके पुनर्जन्म और पुनर्जागरण में जो इस समय (१९३० में) इस देशमें अपने पूर्ण यौवनपर देख पड़ रहा है, इसे सबसे प्रबल प्रेरणा दयानन्दसे ही प्राप्त हुई है।"

(५९) "भारतीय स्त्रियोंकी शोचनीय स्थितिको सुधारनेके प्रयत्नमें भी दयानन्द कम उदार और साहसी नहीं थे। जिन सामाजिक कुरीतियोंका वे शिकार हो रही थीं, उनके विरुद्ध उस (दयानन्द) ने क्रान्तिकी और लोगोंको स्मरण कराया कि प्राचीन युगमें नारी समाजकी, घरमें तथा समाजमें पुरुषोंके समान स्थिति थी।"

(६०) **श्री डा०श्यामाप्रसाद मुकर्जीने श्रद्धांजलि भेंट करते हुए कहा**—

"महर्षिने अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थ-प्रकाश'में देशकी राजनीतिक दशापर भी स्पष्ट भाषामें अपना अभिमत प्रकट कर दिया है...ऋषिने अपने देशवासियों तथा समस्त विश्वको 'सत्यार्थप्रकाश' के रूपमें जो वसीयत की है वह उनकी प्रकाण्ड प्रतिभाका प्रतीक है......ऋषिने अपने दर्शन 'सत्यार्थ प्रकाश' में एक ऐसे स्वतन्त्र भारतकी कल्पना की है, जो वर्तमान् परिस्थितियों तथा अवस्थाओंमें स्वकीय संस्कृति तथा सभ्यताकी अमूल्य परम्पराओंके साथ सम-स्वर करके निर्माण कर सकता है।"[56]

(६१) **स० भक्तसिंहके भ्राता श्री रणवीर सिंहने कहा**—

"आर्य समाजमें मेरे दादा सरदार अर्जुनसिंहजी शामिल थे, फिर मेरे पिता सरदार किशनसिंह और चाचा सरदार अजीतसिंहजीको महात्मा हंसराज जी तथा लाला लाजपतरायके साथ समाजका कार्य करनेका शुभ अवसर प्राप्त रहा है। **हम चारों नहीं, बल्कि पांचों भाई यानी सरदार भगतसिंहजी भी डी० ए० वी० स्कूल में पढ़ते रहे हैं और हमारे विचार**

और मानसिक उन्नति भी बड़ी हद तक आर्यसमाजकी देन हैं। इसकेलिए और दूसरे बहुतसे उपकारोंके लिये हम आर्यसमाजके ऋणी हैं।"[57]

(६२) **डा० राधाकृष्णन भारतके पूज्य प्रधानने कहा—**

"...महर्षि दयानन्दने राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक उद्धारका बीड़ा उठाया...स्वामीजी ने "स्वराज्य" का जो सबसे पहले सन्देश हमें दिया था, उसकी आज हमें रक्षा करनी है। उनके उपदेश सूर्यके समान प्रभावशाली हैं।"[58]

(६३) **प्रेज़ीडेंट श्री विट्ठलभाई पटेलने कहा—**

"......मैं ऋषि दयानन्दको अपना राजनीतिक गुरु मानता हूं। मेरी दृष्टिमें तो वे महान् विप्लवकारी नेता और राष्ट्र-विधायक थे।"[59]

(६४) **लोकमान्य भगवान् तिलक ने कहा—**

".........स्वराज्यके वे सर्व-प्रथम सन्देश-वाहक तथा मानवताके उपासक थे।"[60]

(६५) **श्री सरदार वल्लभभाई पटेलने कहा—**

"आज देशमें जो भी कार्य चल रहे हैं, उनका मार्ग स्वामीजी वर्षों पूर्व बता गये थे।"[61]

(६६) **श्रीमती एनी बेसण्ट ने कहा—**

"महर्षि दयानन्दजी पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने 'हिन्दुस्थान हिन्दुस्थानियों के लिये' का नारा लगाया था......।"[62]

(६७) **स्वातन्त्र्यवीर सावरकरजीके उद्गार—**

"महर्षि दयानन्द स्वाधीनता संग्रामके सर्व प्रथम योद्धा, और हिन्दु जातिके रक्षक थे, उनके द्वारा स्थापित आर्य समाजने राष्ट्रकी महान् सेवाकी है और कर रही है।"[63]

(६८) **उग्रक्रान्तिके नेता श्री ला० हरदयालजीने कहा—**

"स्वामीजीने युवकोंके हृदयमें त्याग, परोपकार और देशभक्तिकी ज्योति जलाई थी।"[64]

(६९) **नेताजी सुभाष चन्द्र बोसने कहा—**

"महर्षि दयानन्द सरस्वती उन महापुरुषोंमेंसे थे, जिन्होंने आधुनिक भारतका निर्माण किया।"[65]

यह कहना अतिशयोक्ति-पूर्ण न होगा कि पंजाबका प्रत्येक नेता आर्य-समाजी है ।[66]

(७०) स्वतन्त्र भारतके भूतपूर्व रक्षामन्त्री श्रीमहावीर त्यागीने कहा--

"मुझे इस बातके स्वीकार करनेमें तनिक भी संकोच नहीं कि स्वामी दयानन्दजीने ही भारतकी स्वतन्त्रताका वृक्ष लगाया, महात्मा गांधीने उसे सींच कर बड़ा किया ।"[67]

(७१) आंध्रके नेता प्रो० रंगाने स्वीकार किया—

"मुझे कारावासमें महर्षि दयानन्द लिखित 'सत्यार्थप्रकाश' पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ तथा मैंने स्वराज्यका रहस्य 'सत्यार्थप्रकाश' से पाया ।"[68]

(७२) १६०१ की जनगणनाके अध्यक्ष मि० बनने लिखा—

"Dayanand feared Islam and Christianity because he considered adoption of any foreign creed would endanger the national feelings he wished to foster."[69]

अर्थात्—"ऋषिदयानन्दको आशंका थी कि इस्लाम और ईसा-इयत जैसे विदेशी मतोंको अपनानेसे देशवासियोंकी राष्ट्रीय भावनाओंको, जिनको वे जाग्रत करना चाहते थे, ठेस पहुंचेगी ।"

(७३) सन् १६११ की जनगणना के अध्यक्ष श्री ब्लण्टने आर्य-समाजकी आलोचना करते हुए लिखा—

"The Arya Samaj Doctrine has a patriotic side. The Arya Doctrine and Arya Education alike sing the glories of Ancient India and by so doing arouse a feeling of National Pride in its disciples, who are made to feel that their country's history is not a tale of humiliations. Patriotism and politics are not synonymous, but the arousing of an interest in national affairs is a natural result of arousing national pride.

"Dayanand was not merely a religious reformer, *he was also a great patriot*. It would be fair to say that with him religious reform was a mere means to *national reform*."[70]

अर्थात्—"आर्यसमाजके सिद्धान्तोंमें स्वदेश-प्रेमकी प्रेरणा है। आर्य-सिद्धान्त और आर्यशिक्षा दोनों समान रूपसे भारतके प्राचीन गौरवके गीत

गाते हैं और ऐसा करके अपने अनुयायियोंमें राष्ट्रीय-गौरवकी भावना जाग्रत करते हैं। इस शिक्षाके कारणही वह समझते हैं कि हमारे देशका इतिहास पराभवकी कहानी नहीं है। देश-भक्ति और राजनीति पर्यायवाची शब्द नहीं हैं; किन्तु राष्ट्रीय-कार्योंमें प्रवृत्तिका होना राष्ट्रीयभावनाका स्वाभाविक परिणाम है।

"दयानन्द केवल धार्मिक सुधारकही नहीं थे वे बहुत बड़े देश-भक्तभी थे। यह कहना ठीकही होगा कि उन्होंने समाज-सुधारको राष्ट्रीय सुधारके साधन-रूप ही अपनाया था।"

(नोट—संख्या ५३ से ७० तक १८५७ और स्वामीदयानन्दसे साभार उद्धृत)

(74.) Speech of Academician B. Gufurov of U.S.S.R. delivered at the International Conference on Central Asia held at New Delhi in February, 1969.

"All the people of all the mankind have contributed to the common course of human civilization, but the contribution of the great Indian people to this noble course is very important. India has given the world great thinkers, great philosophers. India is one of the centres of civilization. All humanity, all mankind is proud of the achievements of Indian civilisation. Many of us have covered thousands and thousands of miles to come here. It took $6\frac{1}{4}$ hours to reach Delhi from Moscow. But every time I come to India, I cannot help remembering the words of great Persian poet Rodaki who said :

"There are many hardships and difficulties in the way of India but it pays".[71]

अर्थात्—"मनुष्योंकी सम्पूर्ण जातियोंने मानव संस्कृतिके सांझे मार्गमें अपना-अपना भाग समर्पित किया है, परन्तु भारतके महान् मानव समाजने उक्त उत्कृष्ट मार्गमें अनूठा योगदान दिया है। भारतने विश्वको महान् विचारक और महान् दार्शनिक प्रदान किये हैं। भारत विश्वमें एक संस्कृति-केन्द्र है। संसारभरकी मानवताको भारतीय-संस्कृतिकी उपलब्धियोंपर गर्व है हममेंसे अधिकांश प्रतिनिधियोंको सहस्रों मीलोंकी यात्रा करके यहां आना पड़ा है। हमें मास्कोसे देहलीमें पहुंचने पर $6\frac{1}{4}$ घण्टे व्यय करने

पड़े हैं, परन्तु हर बार जब मैं भारतमें आता हूं, मैं महान् परशियन कवि रोडकीके शब्दोंको विस्मृत नहीं कर सकता, जिसने कहा था—

"भारतके मार्गमें अनन्त कष्ट-क्लेश एवं असुविधाएँ हैं; परन्तु इससे अभूतपूर्व लाभ होता है।"

(रूसके प्रतिनिधि श्री बी. गुफरोवका 'मध्य एशियापर' सार्वदेशिक सम्मेलन, फर्वरी १९६९ के अवसर पर भाषण)

थिया-सोफिस्ट ललना मैडम ब्लैवैटस्कीने कहा था—

(75) "It is perfectly certain that 'India never saw a more learned Sanskrit Scholar, a deeper mataphysian, a more wonderful orator, a more fearless denunciator of any evil, than Dayanand since the time of Sankaracharya."[72]

अर्थात्—"यह नितान्त सत्य है कि शंकराचार्यके समयसे लेकर हिन्दुस्थानने दयानन्दसे बढ़कर संस्कृतज्ञ, गम्भीर आध्यात्मिक चिंतक, अद्भुत वक्ता, बुराइयोंका निर्भीक् विध्वंसक अन्य नहीं देखा।

उद्धरण स्रोत

(1) Sacred Heart-Page 5—Maeterlink

(2) Dayanand as viewed by Shri Arbindo Ghosh pp 23, 25

(3) Idea of God pp 46—Dr. K. C. Vardachari M. A. Ph. D

(4) Annie Besant's Presidential address at Calcutta Congress 1917

(5) India, what it can teach us—Maxmuller pp 6-7 London 1883

(6) Schopenhavar's Paraga III Edition pp 426

(7) Discovery of India Page 64—Pt. Jawaharlal Nehru

(8) Ibid pp. 67

(9) आर्यप्रेमी अजमेर अक्तूबर १९६५

(10) उक्त पत्रिका ,, ,, ,,

(11) ,, ,, ,, ,,

(12) ,, ,, ,, ,,

(13) ,, ,, ,, ,,

(14) ,, ,, ,, ,,

(15) The Encyclopedia of Religion & Ethics page 58 quoted in Bhawan's Journal page 35—for 23-4-1967

(16) Religious Thought & Life in India, quoted in Bhuwan's Journal page 35

(17) Ibid page 34

(18) Ibid page 34

(19) Ibid pagc 36 (Indian Unrest) London 1912

(20) India what it can teach us—Maxmuller pp. 74

(21) Vedas & Bible pp 42 (Maxmuller)

(22) Introduction of Science and religion in Vedas & Bible page 39

(23) Ibid page 54

(24) India what it can teach us—Maxmuller's II Lecture before Indian Civil Service Students
(25) Ibid III Lecture
(26) ,, IV (हिन्दी पृष्ठ १३०)
(27) ,, ,, ,,
(28) ,, ,, (हिन्दी पृष्ठ १०२)
(29) ,, ,, ,,
(30) ,, ,, page 112
(31) Biographical Sketches-Maxmuller "Vedas" 54 (Mrs. Wheeler Willcox) quoted in Philosophy of Bible, page 45
(32) Vedas—Bhawani Lal Bharati
(33) Zoroastrianism & Comparative Study of Religions—Vedic Light, Feb. 1968, pp 16
(34) Twofold Significance of the Vedas (quoted in Vedic Light, Feb. 1968, pp 16-17)
(35) Historical Rasearches (quoted in 'Vedic Light' Feb. 1968, pp 18)
(36) Mother America (quoted in 'Vedic Light' Feb. 1968 pp 68)
(37) Sacred Books of the East (quoted in 'Vedic Light' Feb. 1968, pp 19)
(38) The Superiority of the Vedic Religion by W.D. Brown (quoted in 'Vedic Light' Feb. 1968, pp 19)
(39) Dayanand as Viewed by Shri Aurobindo Ghosh page 20
(40) The Vedas, page 32
(41) Biographical Essays, pp 170
(42) Indian Evengelical Review for Jan. 1892, quoted by Dr. Dharmanant Singh Ph. D. in Vedic Gurmat
(43) आर्य जगत् निर्वाणांक १९६९
(44) उक्त पत्रिका " "
(45) " " " "

(46) Life of Paramhans Ramkrishna—Roman Rolland, page 146
(47) Ibid page 150
(48) ,, ,, 150
(49) ,, ,, 153
(50) ,, ,, 157
(51) ,, ,, 158
(52) ,, ,, 159
(53) ,, ,, 161
(54) ,, ,, 163
(55) ,, ,, 165
(56) से (70) १८५७ और स्वामी दयानन्द—श्री वासुदेव वर्मा
(71) Speech by Academician B. Gufurov of U.S.S.R. at the International Conference on Central Asia at New Delhi in February, 1969.
(72) Dayanand the Man and His Mission by R. P. Pathak pp 7.

१३

हमारा पक्ष

हमने अबतक जो उल्लेख कियाहै, उसमें यह दर्शानेका यत्न किया गया है कि महर्षिदयानन्दके प्रादुर्भावसे पूर्व विदेशियों-विधर्मियोंने हमारे देशपर अधिकार जमा लेनेके साथ-ही-साथ देशवासियोंके मन-मस्तिष्कपर भी अपने कुत्सित प्रयत्नोंसे मोहरें लगा रक्खी थीं, जिससे हमारी सोचने-विचारने और सरल-सीधा मार्ग प्रशस्त करनेकी सामर्थ्य भी समाप्त प्राय हो गई थी, यहां तक कि हमें अपनी सभ्यता हेय, संस्कृति संकुचित, इतिहास झूठा, साहित्य नगण्य और पूर्व-पुरुषा केवल भेड़-बकरी चराने, पानी ढोने और जंगलसे लकड़ी काटनेवाले मात्र दृष्टिगोचर होने लगे थे। देशके प्राचीन वैभव, पतितपावन वाड्.मय, उत्साह-प्रद वीर-गाथाएं—सब कुछ—भूल चुका था। अंग्रेज़का स्तोत्रपाठ ही जीवनका लक्ष्य बन गया था। अपनी दासतासे हमें प्यार हो गया था, उस भोले तीतर या मूर्ख चकोरकी तरह जिसे अपने क़ैद करने वालेके हाथमें पकड़ कारागार (पिंजरे) के साथ ऐसा मोह हो जाता है कि वह इसे पिंजरेसे बाहर निकालकर हाथोंमें पिंजरा थामे आगे-आगे भागा जाता है और विवेक-हीन, मोह-ग्रस्त विचार-शून्य पक्षी खुले पंख होते हुए भी बजाय इसके कि एक उड़ान भरकर नील-गगनमें स्वतन्त्रताकी जीवनप्रद वायुमें सांसले और अपने बन्दी बना रखने वालेको चकित कर डाले, उल्टा जेल-रूप पिंजरे के पीछे-पीछे भागा चला जाता है, इस अभिलाषाके साथ कि कब यह पिंजरा भूमिपर और यह इसमें बन्दी बनकर मानो अपनी लक्ष्य प्राप्ति कर ले।

विभ्रमकी ऐसी शोचनीय अवस्थामें हिन्दुस्थानी जन-समाज फंसा हुआ था, जबकि उन्हें उस माया-जालसे निकालनेके लिये किसी तेजस्वी, तपस्वी, युग-पुरुषकी प्रतीक्षाहो रही थी कि परमपिता परमात्माकी अपार दयासे महर्षि

दयानन्दने श्राजन्म ब्रह्मचर्यव्रतको धारण करके, वेद-शास्त्रोंका सतत-अध्ययन और अष्टांगयोगके अनुष्ठान द्वारा प्राप्त दैवी शक्तियोंके द्वारा लुप्त प्राय वैदिक ज्योति एवं विस्मृत आर्य मर्यादाका पुनरुद्धार किया; शताब्दियोंसे विदेशियों-विधर्मियोंकी दासतामें फंसे हुए, कुरीतियोंमें ग्रस्त अपने राष्ट्रको, सन्मार्ग प्रदर्शन करनेके-लिये आपने बद्ध-मूल हीन-भावनाओंका समूलोच्छेदनकर डाला। परिणामतः शताब्दियोंसे पद-दलित, तिरस्कृत, अपमानित भारतीय राष्ट्रने आत्म-निर्भरता, आत्मावलम्बन, आत्मगौरव तथा आत्माभिमानका साक्षात् दर्शन किया और सचेत तथा सजग होकर एक ऐसी अंगड़ाई ली, जिससे प्रायः हज़ार-बारहसौ वर्षोंसे इसे जकड़ने वाली मानसिक, वाचक तथा कायक दासताकी दृढ़ सांकुलें कमल-नालकी भाँति टूक-टूक होकर दूर जा गिरीं और हम स्वातन्त्र्य प्राप्तिके दुर्गम पथपर इस अबाध एवं तीव्र गतिसे अग्रसर हुए कि संसार चकित हो दांतोंतले अंगुली दबाकर अवाक् रह गया।

महर्षि दयानन्दने राष्ट्रको बल-पूर्वक झंझोड़ा और इस जोरसे सिंह गर्जना की जिससे सदियोंका आलस्य, प्रमाद, तन्द्रा, निद्रा, अकर्मण्यता आदि घातक प्रवृतियोंका प्रायः नाश हो गया और हम हर प्रकारके कष्ट क्लेशों, असुविधाओं, सम्पत्तिकी ज़ब्तियों और फांसियों-गोलियोंकी अवहेलना करते हुए स्वराज्य-प्राप्तिके पथपर ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करके अग्रसर हुए कि अन्ततः १९४७ में लक्ष्य पर पहुंच ही गये।

महर्षिने १८७५ में अपने ग्रन्थ-रत्न 'सत्यार्थप्रकाश' के प्रथम संस्करण-का प्रकाशन किया। तत्पश्चात् संस्कारविधि एवं आर्याभिविनय आदि ग्रन्थोंके द्वारा, सैंकड़ों शास्त्रार्थों-शंकासमाधानों और हज़ारों व्याख्यानोंके माध्यमसे, वाइसराय तथा दूसरे सरकारी कर्मचारियों, राजाओं, सेठों, साहुकारों और अन्य गण्य-मान्य-जन-नायकोंके साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करके अपने सारगर्भित, प्रभावोत्पादक प्रवचनों और उपदेशोंके ज़रियेसे, स्वधर्म, स्वजाति, स्वदेश, स्वदेशी, स्वराष्ट्र, स्वावलम्बन, स्वातन्त्र्य, स्वराज्य और सुराज्य, यहां तक कि, चक्रवर्ती राज्यकी स्थापनाकी जिन उत्कृष्ट भावनाओंको भारतीय जन-मानसपर अंकित किया था, उन्हींके परिणाम स्वरूप देशका समस्त बुद्धि-जीवि समाज राष्ट्रोत्थानके महाभियानमें आन्दोलित हो उठा और अनेक राष्ट्रीय संस्थाओं, राजनैतिक चेतनाओं एवं क्रान्तिकारी संगठनों का जन्म हो गया।

पूर्व पृष्ठोंमें हम इस बातका विशद वर्णन कर चुके हैं कि विदेशी तथा विधर्मी, विशेषतः योरोपियन लेखकों, अनुवादकों एवं तथा-कथित अनुसन्धान-कर्त्ताओंने स्वार्थवश-ईसाइयतके मात्र-प्रचार प्रसारको दृष्टिमें रखते हुए भारतीय वाङ्‌मयके जिस प्रकार अर्थके अनर्थ किये थे, वेद सम्बन्धी अनर्गल धारणाओं-की अभिव्यक्ति की थी, भारतके पठित-समाजको ईसाकी भेड़ोंमें सम्मिलित करनेके उद्देश्यसे उनके मन-मस्तिष्कोंमें हीन भावनायें उत्पन्नकी थीं। यह भी इससे पूर्व बताया जा चुका है कि राष्ट्रके समष्टि-जीवनमें व्याप्त आलस्य, प्रमाद, अज्ञान एवं आत्म विस्मृतिके महारोगोंका निदान महर्षिने एक कुशल-अनुभवी चिकित्सककी भांति किया और साथही रोग-निवारणार्थ उत्तम औषधिके प्रयोगका निदर्शन भी किया।

महर्षिकी नियमित शृंखला-बद्ध प्रचार-सरणीसे प्रभावित जिन गण्य-मान्य सज्जनोंने, संस्थानोंने, संगठनोंने, सभा-सोसायटियोंने अपने-अपने ढंगसे, अपनी-अपनी सामर्थ्यके अनुसार, अपनी-अपनी बुद्धि कौशलसे, देशको स्वतन्त्र करानेका ईमानदारीसे यत्न किया। जिस-जिसने, जितना-जितना कार्य किया, अपने अभीष्ट ढंगसे, अपनी सुविचारित रीति-नीतिसे, अथवा अपने साथियों-सहकारियोंके संपर्क-सहयोगसे, स्वराज्य-प्राप्ति का लक्ष्य सामने रखकर, जितनेभी पग उठाये, उसके लिये वे राष्ट्रके धन्यवादके पात्र हैं और प्रत्येक देशभक्तको मुक्त कण्ठसे उनका आभार मानना चाहिये।

इस सन्दर्भमें निम्नलिखित कथा रुचिकर सिद्ध होगी। कहते हैं कि पंजाबके सुप्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री स्वनाम-धन्य श्री पूज्य महात्मा हंसराज जी डी. ए. वी. कॉलिज लाहौरके संस्थापक-प्रिन्सिपल थे। उनके समयमें अगणित नवयुवक उनके आकर्षक व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर खिंचे चले आते थे। उनका स्वागत-सत्कार करनेके लिये आप पुष्प-मालाएं उपहार रूपमें भेंट किया करते थे। उनमेंसे कोई-कोई अधिक वेतन तथा इसी प्रकारके अन्य प्रलोभनोंसे आकृष्ट होकर अन्यत्र चले जाते हैं। उनकी विदायगीके समयभी आप पुष्पमालाए भेंट करके उनका अभिनन्दन करना उचित समझते थे। लोग चकित होतेथे कि यह क्या अचम्भा है ? उनके कौतूहलको तृप्त करनेके लिये महात्माजी कहते 'भाइयो'! जिसने अपनी सामर्थ्यानुसार शिक्षाप्रसारमें मुझे जितना भी सहयोग दिया, मैं उसका सम्मान करता हुआ, आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूं। इसीलिये जिस आदर-बुद्धिसे उनका स्वागत करता हूं, विदायगी के समयभी उस भावनामें अन्तर नहीं आने देता।'

ऐसी ही भावनाओंसे प्रेरित होकर हम सब श्रेणियों, सब विचारों, सब पार्टियोंके देशभक्तोंका अभिनन्दन करते हैं, क्योंकि हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि हम अनुसन्धानपूर्वक विवेचन करेंगे तो स्वराज्य प्राप्तिके लिये प्रयत्न करने वाले प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक संगठन, प्रत्येक चेतना, प्रत्येक समुदाय, प्रत्येक संस्थान, प्रत्येक सभा, और प्रत्येक सोसाइटीके **प्रेरणा-स्रोत महर्षि दयानन्दको ही पायेंगे ।**

यही तथ्य आगामी पृष्ठोंमें दर्शानेका हम प्रयत्न करेंगे । विज्ञपाठक ध्यान पूर्वक पढ़ने और विचारनेकी कृपा करें, यही हमारी विनम्र प्रार्थना है ।

१४

देश भक्तोंकी चार श्रेणियां

जिन देशभक्त सज्जनों अथवा संगठनोंने स्वराज्य-प्राप्तिके लिये यत्न किये हैं, उन्हें सुविधाके लिये हम निम्नलिखित चार श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं—

१. **सरकार पूजक (सरकार प्रस्त) महानुभाव**—

अंग्रेज़ पूजक, जो प्रस्तावों, याचिकाओं, स्मृति-पत्रों, मैमोरेण्डमों आदिके माध्यमसे जो थोड़ा बहुत प्राप्त हो जाय, उसीपर सन्तोष करनेवाले, अंग्रेज़का स्तोत्रस्तवन करते रहने वाले और किसीभी परिस्थितिमें गौरांग-महा-प्रभुओंको रुष्ट होनेका छोटे-से-छोटा भी अवसर न देने वाले, नरम-दलके —**मॉडरेट (Moderates)**।

२. **देश भक्त, राष्ट्र भक्त, सज्जन**—

अपने देशका हित समक्ष रखते हुए, अंग्रेजके रोषकी तृण-भर भी परवाह न करके सरकारकी अन्यायाधारित-नीतियोंकी कटु आलोचना करने और आपद-विपदको स्वयमेव आह्वान करने वाले, अधिकाधिक प्राप्त करके भी शेषके लिये भागीरथ प्रयत्नमें निरन्तर संलग्न रहने वाले, "Co-operate where necessary and non co-operate where needed" अर्थात् आवश्यकतापर सहयोग और अनिवार्य होनेपर असहयोगमें विश्वास रखने वाले Responsive Co-operater गरमदल के देशभक्त —**ऐक्सट्रीमिस्ट्स (Extremists)**।

३. **सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, असहयोग की** नीतियोंका अवलम्बन करने वाले, स्वयं कष्ट सहकर, सरकार अथवा उसके कर्मचारियोंके विरुद्ध मनमें भी कुत्सित विचार न उत्पन्न होने देनेके इच्छुक, जन-सम्पर्क द्वारा- राष्ट्रीय-जागरणके माध्यमसे उपनिवेशोंके सदृश राज्य-सत्ता

प्राप्तिपर आस्था रखते हुए यत्किञ्चित् उपलब्ध हो जाये उतने पर ही सन्तुष्ट हो जाने वाले (यद्यपि अन्ततोगत्वा परिस्थिति परिवर्तनपर पूर्ण स्वराज्य और भारत छोड़ोके उद्घोषको भी अपनी नीतिमें सम्मिलित कर लेने वाले) गाँधीवादी महानुभाव —**कांग्रेसी (Congressites)**

और

४. स्वदेश, स्वदेशी, स्वधर्म, स्वावलम्बन एव स्वातन्त्र्यके पंचसूत्री पुरोगममें विश्वास रखने वाले, लक्ष्य-पूर्त्यर्थ अपना निजी सर्वस्व दावपर लगा देनेवाले, उद्देश्योपलब्धिके लिये सब-प्रकारके उपायोंका उपयोग कर गुज़रने के सिद्धान्तको मानने वाले, हिंसा-अहिंसाके पचड़ेमें न पड़नेवाले, सशस्त्रक्रान्ति के निर्भीक् प्रचारक और इसे कार्यान्वित करने वाले, जायदाद की ज़ब्तियों, कारागारों, आजन्म देश निष्कासनों, फांसियों और गोलियोंको उत्सुकतापूर्वक आह्वान करने वाले हुतात्मावीर —**क्रान्तिकारी (Revolutionaries)**

१४ (क)

नरम-दलके मॉडरेट (MODERATES)

इस श्रेणीके देश भक्तोंमें (क) श्री दादाभाई नौरोजी (ख) श्री जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे (ग) श्रीयुत् गोपालकृष्ण गोखले आदिके नाम उल्लेखनीय हैं ।

(क) **श्री दादाभाई नौरोजी**, हिंसक वृत्तिके एकदम विरोधी थे। अपनी अस्सी वर्षीय वर्षगांठ पर आपने लिखा—

> "Last year I entreated my countrymen that all resort to violence should be avoided. Since then a most deplorable outrage has taken place in the assassination of Sir Curzon Wylle, who was more-over a friend of Indians, and that when we were already beginning to getreforms ......Those who resort to violence inflict, the greatest possible injury to the Indian cause."[1]

अर्थात्—"गत्वर्ष मैंने अपने देश-वासियोंसे अनुनयपूर्वक आग्रह किया था कि हिंसावृत्तिका अवलम्बन प्रत्येक दशामें त्याज्य है। उसके अनन्तर

अत्यन्त शोक-प्रद अत्याचार हो गया है। सर कर्जन वाइली, जो हिन्दुस्थानियों का मित्र भी था, का वध कर दिया गया है और यह दुष्कृत्य ऐसे अवसर पर किया गया है, जब हमें शासनमें सुधार प्राप्त होना आरम्भ हो रहे थे।…जो भी कोई व्यक्ति अथवा समुदाय हिंसावृत्तिको अपनाते हैं, हिन्दुस्थानके हितोंको सबसे बड़ी सम्भव क्षति पहुंचाते हैं।"

(दादा भाई नौरोजी—आर. पी. मसानी, पृष्ठ ५२०)

महात्मा गांधी के सम्बन्धमें आपके विचार—

Jal was his (Dadabhai's) grandson and Gosi grand-daughter. Gosi wrote to Dadabhai :— "I met the South Indian Mr. Gandhi, last summer. I found him an extremely interesting and sincere man. He simply worships you. I had a very long talk with him about the organisation of the agitation in South Africa and all he said was that they had your example before them and they were following it with perfect faith."

Dadabhai wrote in reply that :

"He was glad she had met M. Gandhi a very good man, who had been fighting a great patriotic battle."[2]

अर्थात्—जॉल दादाभाईका पोता और गोसी पोती थी। गोसीने दादा भाईको लिखा—

"मैं दक्षिणी अफ्रीकाके श्री गांधीजी को गत् ग्रीष्म ऋतु में मिली थी। मैंने उसे अत्यन्त रोचक तथा शुद्ध-हृदय व्यक्ति पाया। वह तो आपका अनन्य भक्त है। मेरा उसके साथ सञ्चालित आन्दोलनके सम्बन्धमें लम्बा वार्तालाप हुआ और उसका उत्तर केवल यही था कि हमारे सामने तो श्री दादाभाईजीका उदाहरण है और कि वे पूर्ण श्रद्धासे आपका अनुकरण कर रहे हैं।"

दादाभाई ने अपनी पोती को लिखा—

"मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि आपने श्री गांधीजी के साथ भेंट की। गांधीजी बहुत उत्तम पुरुष हैं और एक भारी राष्ट्रीयसंग्राम लड़ रहे हैं।"

(उक्त पुस्तक पृष्ठ ५२२)

दादा भाईजीको हिंसासे भय—

"The members of the London India Society approached Dadabhai, when he was leaving England for India.

asked him to allow his name to be associated with the Society as honorary President. Dadabhai agreed but not without hesitation. He had seen young Indians in England drawn into something like a spirit of revolt. He had met in Calcutta several ardent young exponents of the Gospel of Violence. They looked upon outrages as the only effective weapon of political protest. Dadabhai feared that the Gospel would spread throughout India and that it would also captivate the Indian residents in England. It was quite possible that youths stirred by the new doctrines, subversive of the policy of non-violence he had always advocated, would capture the society. He unburdened his mind to his successor Mr. J.M. Parikh, and told him that the moment the society countenanced violence, his name should be removed from its roll. "My honour" he said, "is in our hands."[3]

अर्थात्—"जब दादाभाई नौरोजी इङ्गलैंडसे हिन्दुस्थान आने लगे, तब लण्डन इण्डियन सोसायटीके सदस्योंने उनसे प्रार्थना की कि उक्त सोसायटीके आदरी प्रधानके रूपमें अपना नाम लिखने की आज्ञा दें। दादाभाईजीने स्वीकृति दे दी, किन्तु बगैर हिचकचाहटके नहीं। उन्होंने इङ्गलैंडमें कुछ ऐसे युवक देखे थे जोकि एक प्रकारसे विप्लवकी भावनाओंकी ओर आकर्षित हो रहे थे। उन्हें कलकत्तामें कुछ ऐसे नवयुवकोंसे पाला पड़ा था जोकि हिंसाकी फ़िलासफ़ीके प्रचारक थे। उनकी भावना यह थी कि हिंसात्मक कार्य करना ही राजनैतिक विरोध (प्रोटेस्ट) का सर्वोत्तम शस्त्र है। दादाभाईजीको भय था कि यह हिंसाकी फ़िलासफ़ी भारत-भरमें फैल जायगी और इङ्गलैंडमें रहने वाले हिन्दुस्थानीभी इससे अछूते नहीं रहेंगे। यह भी सम्भव था कि अहिंसाकी जिन भावनाओंका वे आयुभर प्रचार करते रहे हैं, इस नवीन फ़िलासफ़ीसे प्रभावित नवयुवक-वर्ग उससे चलायमान् हो जायगा और सारे समाजको अपनी लपेटमें ले लेगा। उन्होंने अपने बाद आनेवाले श्री जे. एन. पारीखके सामने अपना दिल खोलकर रखदिया और कहा—

"जिस क्षण सोसायटी हिंसावृत्तिका समर्थन करने लगे, उसी क्षण मेरा नाम सोसायटीके रजिस्टरसे काट देना चाहिये। उन्होंने कहा—'मेरी प्रतिष्ठा आपके हाथमें है।" (उक्त पुस्तक, पृष्ठ ५०९)

दादाभाईजीने स्वराज्य शब्द कहांसे लिया ?

१९०६ में कांग्रेसका अधिवेशन कलकत्तामें हुआ। दादाभाई नौरोजी इसके मनोनीत अध्यक्ष थे। इन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषणमें शब्द 'स्वराज्य'-का प्रयोग करके समस्त श्रोतागणोंको चकित कर दिया। सब लोग आरम्भसे अन्ततक मन्त्र-मुग्ध-से होकर आपका अभिभाषण श्रवण करते रहे। किसीकी समझमें नहीं आ रहा था कि दादाभाईजीने यह शब्द-रचना कैसे करली ? वास्तवमें आपने महर्षि दयानन्दकृत सत्यार्थ-प्रकाशका पारायण करते समय उसमें यह 'स्वराज्य' शब्द पढ़ा था और उचित, समयानुकूल, सार्थक और प्रेरणा-प्रद अनुभव करके इसे अपने भाषणमें प्रयुक्त कर दिया था। इस घटना-के सम्बन्धमें निम्न उद्धरण रुचिकर सिद्ध होगा—

Dadabhi Naoroji :—

"He was the first to write against the British domination. The first Indian to use the word "Swaraj" (self-government) was he. One day Lokmanya Balgangadhar Tilak saw to his amazement, the renowned Parsi patriot Dadabhai Naoroji turning over pages of "SATYARTHA PRAKASH" He jocularly asked the patriot "Have you become an Arya Samajist ?" "No, I get great inspiration from Swami Dayanand's work in my struggle for Swarajya" was the reply.[4]

अर्थात्—"दादाभाईनौरोजी पहले सज्जन थे, जिन्होंने भारतपर अंग्रेजों के अधिकार जमाये रखनेके विरुद्ध लिखा। वे पहले हिन्दुस्थानी थे जिन्होंने शब्द 'स्वराज्य' (स्वशासन) प्रयुक्त किया। एक दिन लोकमान्य बालगंगाधर तिलकने हैरान होकर देखा कि पारसी देशभक्त दादाभाई नौरोजी "सत्यार्थ-प्रकाश" के पन्ने उलट रहे हैं। आपने विनोदमें पारसी देशभक्तसे प्रश्न किया, "**क्या आप आर्यसमाजी बनगये हैं?**" "नहीं मुझे **स्वराज्य-समरमें स्वामी दयानन्द के ग्रन्थसे भारी प्रेरणा प्राप्त होती है,**" दादाभाईजीने उत्तर दिया।"

(सैनिक समाचार, २० अक्तूबर, १९६८, भारत सरकारके सुरक्षा विभाग द्वारा प्रचारित)

नोट— स्मरणीय है कि महर्षि दयानन्दने १८७५ में अपने 'सत्यार्थ-प्रकाश' के प्रथम संस्करणमें और १८८३ (निधन वर्ष) से पूर्व अन्य पुस्तकों में भी '**स्वराज्य**' आदि शब्दोंका अनेक-बार व्यवहार किया है और दादाभाईजी ने १९०६ में इसका उल्लेख किया अर्थात् महर्षि द्वारा 'स्वराज्य' शब्दके प्रयोगके

३१ वर्ष बाद। अतः भारत सरकारकी उक्त बात (कि दादाजी पहले देशभक्त थे जिन्होंने 'स्वराज्य' शब्दका व्यवहार किया), सत्यपर आधारित नहीं है।

(ख) **जस्टिस श्री महादेव गोविन्द रानाडे—**

दादाभाई नौरोजीके समकालीन एक और महापुरुष स्वनाम-धन्य जस्टिस श्री महादेव गोविन्द रानाडे महोदय थे। दादाभाई जी उनका कितना सम्मान करते थे, यह निम्न संदर्भसे भली-भांति स्पष्ट हो जायगा।

There was another eminent Indian whom Dadabhai longed to be pitted against the official heirarchy--Mahadev Gobind Ranade, the distinguished jurist, economist and social and political reformer, highly esteemed for independence, impartiality and soberiety of views. 'Would he go', Dadabhai wrote imploringly on June 18, 1896—

"Dear Ranade !......If this want of honours, honesty and righteousness of the British Indian authorities—and the terrible misery as its result—be made clear to the British public, by such authority as of you three (Mehta, Wacha, and Ranade) supporting me—what may not happen to our good ?"[5]

अर्थात्—एक अन्य प्रतिष्ठित हिन्दुस्थानी, जिसे दादाभाई नौरोजी दफ़तरी शासनसत्ताके विरुद्ध खड़ा करना चाहते थे, वे थे श्री महादेव गोविन्द रानाडे, जोकि लब्ध-प्रतिष्ठ कानूनदान, अर्थशास्त्री तथा सामाजिक एवं राजनैतिक सुधारक थे। आप अपनी स्वातन्त्र्य प्रिय प्रकृति, निष्पक्षता और विचार-गाम्भीर्यके लिये जगत् विख्यात् थे, १८ जून १८९६ को दादाभाईजी ने उन्हें अनुनयपूर्वक लिखा—

"क्या वे जाना स्वीकार करेंगे" साथ ही लिखा—"प्रिय रानाडे !··· यदि हिन्दुस्थानमें स्थित ब्रिटिश अधिकारियोंकी मान-मर्यादा, ईमानदारी तथा नेकीके अभाव, और तज्जन्य कष्ट-क्लेश और विपत्तियोंका ज्ञान स्पष्ट रूपसे इंग्लैंडकी जनताको कराया जाय और यह ज्ञान-प्रदानके लिये आप तीनों (मेहता, वाचा तथा रानाडे) सरीखे अधिकार सम्पन्न व्यक्ति हों, जो मेरा समर्थन करें तो हमारे कल्याणके लिये क्या नहीं हो सकता ?"

(दादाभाई नौरोजी—आर. पी. मसानी, पृष्ठ ३८०)

"**बम्बई प्रान्तके** दूसरे महानुभाव जिन्हें राष्ट्रीय जागृतिका जन्मदाता

कहा जा सकता है, जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे थे । वस्तुतः वह कांग्रेसकी प्रत्येक योजनामें विमर्शदाताके तौरपर सम्मिलित होते थे । उनकी सम्मति मूल्यवान समझी जाती थी । **वे ऋषि दयानन्द द्वारा स्थापित परोपकारिणी सभा के सदस्य थे ।**"[6]

"**१८७५ ई० के जौलाई** मासके आरम्भमें प्रसिद्ध सुधारक श्रीयुत महादेव गोविन्द रानाडेके निमन्त्रणपर **स्वामी (दयानन्द) जीके १५ बड़े प्रभावशाली व्याख्यान** (पूनामें) हुए । रानाडे महाशयके उद्योगसे शहर (पूना) में **स्वामीजीकी सवारी** निकली । **स्वामीजी और उनके साथियोंपर कीचड़ फेंका गया । रानाडे महाशयपर भी बहुत-सा कीचड़ पड़ा ।**"[7]

(ग) **श्रीयुत गोपाल कृष्ण गोखले—**

"महात्मा गांधी गोखलेको अपना राजनीतिक गुरु मानते थे—यह उचित ही था ।"[8]

"There were three men in particular to whom Gokhale was spiritually drawn and yielded reverence from his very soul—Patriarchal Dadabhai Naoroji, his master Mahadev Gobind Ranade and Gandhiji......In a spirit of utter devotion he acknowledged Ranade as the "Central sun from whom he and others received light and warmth, and the great teacher whose word was, law and approbation their highest reward". What Ranade was to Gokhale, Gokhle was to Gandhiji. Gandhiji described Gokhale as 'the most perfect man on the political field', pure as crystal, gentle as a lamb, brave as a lion and chivalrous to a fault".

How touching was Tilak's tribute to Gokhale on his death, when he referred to him as: "This diamond of India, this jewel of Maharashtra, this prince of workers..."

अर्थात्—"ऐसे तीन महानुभाव थे जिनकी ओर श्री गोखले विशेषतः आध्यात्मिक दृष्टिसे आकर्षित होते थे और जिनके लिये वे अपनी हृदयकी गहराइयोंसे आदर एवं सम्मान अर्पित करते थे—पितामह दादाभाई नौरोजी, उनके अपने गुरु महादेव गोविन्द रानाडे और गाँधीजी······'नितान्त भक्ति भावनासे वे रानाडेजी को 'केन्द्रीय भास्कर' उद्घोषित किया करते थे, जिससे स्वयं उन्हें तथा दूसरोंको प्रकाश एवं उष्णता प्राप्त होती थी । वे उन्हें बड़ा आचार्य स्वीकार करते थे, जिनके मुखारविन्दसे निःसरत प्रत्येक शब्द उनकेलिये

कानून और उनकी ओरसे प्रोत्साहन-रूप प्रशंसा सबसे बड़ा पारितोषक था। जो कुछ गोखलेके लिये रानाडे थे, वही वास्तवमें गोखलेको गांधीजीके लिये समझना चाहिये। गांधीजी गोखलेको राजनैतिक मञ्चपर पूर्ण पुरुष स्वीकार करते थे। पूर्ण पुरुषभी ऐसा जो कि बिल्लौर (Crystal) की भांति पवित्र, लेलेकी तरह निश्छल, केसरीकी तरह बहादुर और अपराध क्षमा करनेमें महान् उदार थे। (ऑर्गेनाइज़र, १५ अगस्त, १९६५)

"कांग्रेसको आप (जस्टिस रानाडे) की जो सबसे बड़ी देन थी, वह थी गोपालकृष्ण गोखले। गोपालकृष्ण गोखले महोदय अपने आपको रानाडेका शिष्य कहनेमें गौरव अनुभव किया करते थे।"

(भा. स्व. सं. का इतिहास, पृष्ठ ६२)

"जस्टिस महाशय गोविन्द रानाडेकी शिष्यताने उन्हें त्याग-मार्गका राही बना दिया था।" (उक्त पुस्तक, पृष्ठ १००)

महाराज तिलकने गोखलेकी मृत्युपर जो श्रद्धाञ्जलि अर्पित की थी, वह कितनी हृदय स्पर्शिनी थी! उन्होंने कहा था—"यह हिन्दुस्थानका हीरा, यह महाराष्ट्र का जवाहर यह कार्यकर्त्ताओंका शाहज़ादा……"

(आर्गेनिईज़र, अगस्त, १९६५)

निष्कर्ष

प्रथम श्रेणी—(नरम-दलके माडरेट)

(क) श्री दादाभाईनौरोजी—

आपने स्वामी दयानन्दकी पुस्तक (सत्यार्थप्रकाश) से महान् प्रेरणा प्राप्तकी 'स्वराज्य' शब्द उसीसे लिया और इसका अपने कलकत्ता कांग्रेसके अध्यक्षीय भाषणमें व्यवहार किया, अतः उनके प्रेरणा-स्रोत ठहरे

—महर्षि दयानन्द

(ख) जस्टिस श्री महादेव गोविन्द रानाडे—

महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित परोपकारिणी सभाके सदस्य, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकाके प्रथम ग्राहक, महर्षिको पूनामें आमन्त्रित करके उनके १५ व्याख्यान कराने और उनकी शोभायात्राका प्रबन्ध करने वालेथे अतः उनके भी प्रेरणा स्रोत थे —महर्षि दयानन्द

(ग) श्रीयुत् गोपाल कृष्ण गोखले—

महादेव गोविन्द रानाडेको 'केन्द्रीय भास्कर' समझते हुए उनसे प्रकाश तथा उष्णता प्राप्त करते और उन्हें अपना गुरु मानते थे। अतः महादेव गोविन्द रानाडेके माध्यमसे उनके भी प्रेरणा स्रोत थे—महर्षि दयानन्द

अतः निष्कर्ष यही निकलता है कि मॉडरेट पार्टीके बड़े नेताओंका प्रेरणा स्रोत **महर्षि दयानन्द** और उनकी शिक्षा थी।

१४ (ख)

गरमदलके ऐक्स्ट्रीमिस्ट्स (Extremists)

इस द्वितीय श्रेणीके देशभक्तोंमें लोकमान्य श्री बाल गंगाधर तिलक, श्री फीरोज़शाह मेहता, पंजाब केसरी श्री लाला लाजपतराय और उनके सहयोगी सरदार अजीतसिंहजी के नाम उल्लेखनीय हैं—

(क) लोकमान्य श्री बाल गंगाधर तिलक—

आपने पूनानगरसे दो समाचार पत्र प्रकाशित करना आरम्भ किये— 'मराठा' (अंग्रेज़ी) और 'केसरी' मराठी। इनके द्वारा उन्होंने अंग्रेज़ों तथा उनके शासन की कटु आलोचना करके आपद-विपदको आह्वान किया। 'Swarajya is my birth right and I must have it' अर्थात् स्वराज्य मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूंगा, का साहसिक उद्घोष आपने ही लगाया था। 'Co-operate where necessary and non-co-operate where needed' अर्थात् आवश्यकता होनेपर सहयोग और अनिवार्य होनेपर असहयोगका सूत्र राष्ट्रको आपकी ही देन है। आपने देशहितमें ६ वर्ष तक माण्डले (ब्रह्मदेश) के कारागारमें कड़ा दण्ड भुगता और कर्मयोग शास्त्रका महान् ग्रन्थ अथवा 'गीता रहस्य' निर्मित किया। आप जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडेसे प्रेरणा प्राप्त करके राजनीतिके दुर्गम क्षेत्रमें अवतीर्ण हुए थे।

(ख) श्री फ़ीरोज़शाह मेहता—

आपके सम्बन्धमें लिखा गया—

Here was a man, who as the great British Journalist Novinson said—

"...**as a disciple of Ranade,** had stood alone against the bureaucracy, had displayed a courage equal to Gokhale, an eloquence hardly second to Surendranath Bannerji's, a power of sarcasm hardly rivalled by Motilal Ghosh."

(He was elected president of the Indian National Congress Calcutta 1890, Lahore 1909, but he did not attend the latter owing to unknown reason).

अर्थात्—विख्यात ब्रिटिश पत्रकार श्री नाविन्सनके कथनानुसार...... "रानाडेके शिष्यके रूपमें फ़ीरोज़शाह मेहता नौकरशाहीके विरुद्ध अकेला ही खम ठोककर खड़ा रहा। उसने ऐसी मरदानदगीका प्रदर्शन किया जैसी गोखले दिखाया करते थे। आपकी वक्तृत्व शक्ति सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के वैभवसे कठिनतासे ही दूसरे नम्बर पर आती होगी; उनके व्यंग्य मोतीलाल घोषके साथ टक्कर खाते थे।"

(आप १८९० में कलकत्ता और १९०९ में लाहौरमें होने वाले इण्डियन नेशनल कांग्रेसके अधिवेशनोंके लिये प्रधान निर्वाचित हुए; परन्तु अज्ञात कारणोंसे आप लाहौरके अधिवेशनमें सम्मिलित नहीं हुए।)

(ग) पंजाब केसरी श्री लाला लाजपतराय जी—

आप गवर्नमैंट कॉलिज लाहौर (पंजाब) के विद्यार्थी थे। उनके सह-पाठियोंमें श्री (महात्मा) हंसराज जी तथा श्री (पण्डित) गुरुदत्त जी भी थे। उन्हीं दिनों वे सब महर्षि दयानन्द द्वारा संस्थापित आर्यसमाजके सम्पर्कमें आये और उसीके हो गये। डी. ए. वी. आन्दोलन तथा कालिजके संस्थापकोंमें आपका स्थान बहुत ऊँचा था। आपने वेदाज्ञानुसार सैंकड़ों हाथोंसे धन कमाया और 'हज़ारों हाथों' से उक्त कालिज एवं सामाजिक संस्थाओंके कोष भरे। पंजाबमें जन-जागरण और अंग्रेज़ोंकी शासकीय सत्ताका कड़ा विरोध करनेके अपराधमें आपको १८१८ ई० के एक पुराने राजनियमके आधीन माण्डले (ब्रह्मदेश) के कारागारमें बन्द कर दिया गया। तदुपरान्त आप अमरीकामें चले गये और देशकी स्वतन्त्रताके लिये भरसक प्रयत्न करते रहे।

श्री अलगूराय शास्त्रीजीने अपनी पुस्तक "ला० लाजपतराय" के पृष्ठ १४४-४५ पर लिखा है—

"...ऋषि दयानन्दके इस शिष्यके कांग्रेसमें पदार्पण करते ही उसकी धाराने एक नई दिशामें मोड़ लिया...सन् १९०७ का भयंकर समय था, जबकि अंग्रेज़ी सरकारको यह सन्देह हो गया कि पंजाबके अन्दर लाला

लाजपतराय, सरदार अजीतसिंह तथा अमृतसर के पं० रामभजदत्त वकीलके नेतृत्वमें आर्यसमाजके कई लाख स्वयं-सेवक १८५७ ई० के ग़दर (हमारे मतमें प्रथम भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम)की वर्षगांठ (अर्ध शताब्दि—लेखक) मनाएंगे और इसके साथ ही अंग्रेजी राज्यके प्रति विद्रोह करेंगे…उसी तूफानी दौरेके मध्यमें वे पंजाबके प्रसिद्ध रावलपिण्डी नगरमें भी गये, जो उस समय प्रदेशका सबसे बड़ा सैनिक अड्डा था…वहां लालाजीके व्याख्यानका प्रभाव होना स्वाभाविक था। परिणामस्वरूप रावलपिण्डीके वातावरणमें गर्मी अनुभव की जाने लगी।"

नोट—इन नेताओंके व्याख्यानोंका प्रबन्ध आदि करनेसे चिढ़कर सरकारने शहरके प्रसिद्ध आर्यसमाजी वकीलों, ला० हंसराज साहणी, दीवान दौलतराम आदिके लाईसेंस छीननेका निश्चय किया। उन सबकी पेशीके दिन शहरसे सहस्रोंकी भीड़ कचहरीमें इकट्ठी हो गई। मुकद्दमेकी तारीख पड़ गई। जनतामें हिंसात्मक प्रवृत्ति जाग उठी। डी.सी. और कमिश्नरके दफ़तरोंका सामान तोड़-फोड़ डाला गया। वहांसे यह उत्तेजित भीड़ वापस शहरमें आई। सिविल हस्पताल, कोतवाली और टांगा स्टैण्डके पास इसाईयोंका गिरजाघर था। उसका फर्नीचर विनष्ट करदिया गया; चार-दीवारी गिरा दी गई, सामने स्थित यू.पी. मिशन हाई स्कूलमें स्थित ईसाईयोंकी विशाल लायब्रेरीकी सहस्रों पुस्तकें फाड़ कर उनकी रद्दी सारे राजा बाजारमें फैलादी गई। इन पंक्तियोंका लेखक उन दिनों उक्त मिशन हाई स्कूलकी छटी कक्षामें पढ़ता था, वह भी भीड़के साथ हो लिया। साथ ही उसका सहपाठी बाबा सुन्दरसिंह भी था। कुछ दूर जाकर गवर्नमैंट हाई स्कूल था, उसमें प्रविष्ट होकर भीड़ने वहांके दरवाजोंके शीशे और हज़ारोंका साइंसका सामान तबाहकर दिया। उससे आगे काफी दूरी पर रायबहादुर सरदार बूटासिंह सी.आई.ई., ओ.बी.ई. का तम्बुओंका कारखाना था। उक्त सरदार साहबकी तलाशमें यह भीड़ वहां पहुंची; परन्तु वह वहां नहीं मिल सके। गेटपर उनकी गिग (एक सवारी वाली घोड़ा-गाड़ी) खड़ी थी। उक्त बाबा सुन्दरसिंह उसे आग लगा रहे थे कि पोलीसके आ जाने पर भीड़तो तितर बितर हो गई मगर बाबाजी पकड़ लिये गये, आपभी आर्यसमाजी वकीलोंके साथ जेलमें बन्द कर दिये गये और उनके साथ ही रिहा हुए।

"६ मई, १९०७ की प्रातः ही पंजाबके उक्त दोनों नेताओं (लाला-लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह) को गरिफ़तारकर किसी अज्ञात स्थानको भेज दिया गया…१० मई की रातको क़त्ले आमसे सुरक्षा पानेके लिये लाहौरके सारे अंग्रेज़ किलेमें एकत्रित हो समय बिताते रहे। उधर रात्रीभर

रेलवे स्टेशनपर एक स्पैशल रेल्वे गाड़ी धुंआं छोड़ती रही। वह इसलिये कि विद्रोह हुआ तो सारे अंग्रेज़ परिवार इसमें बैठकर, जानले पंजाबसे बाहर निकल सकें (भा. स्वा. सं. में आर्य समाज का योगदान, पृष्ठ ४७-४८)

१९१० में सर वैलण्टाईन शिरोलने Indian Unrest नामी अपनी पुस्तकमें लिखा—ला० लाजपतराय तथा सरदार अजीतसिंह दोनों ही विद्रोही आर्यसमाजी हैं। (भा. स्वा. सं. में आर्यसमाज का योगदान, पृष्ठ ४८)

कांग्रेसकी दो-रंगी नीतियोंसे असन्तुष्ट लालाजी ने १९२६ ई० में "नैशनलिस्ट पार्टी" की स्थापनाकी और कांग्रेसियोंकी 'स्वराज्य पार्टी' के विरुद्ध सैण्ट्रल असेम्बलीका चुनाव लड़ा। और पं० मोतीलाल नेहरूकी उस पार्टी को करारी हारदी। स्वयं लालाजी पंजाबके तीनमेंसे दो चुनाव-क्षेत्रोंमें खड़े हुए और बहु-संख्या प्राप्त करके सफल हुए।

१९२८ ई० में साईमन कमिशन लाहौर पहुंचा तो हज़ारों पंजाबियोंने लालाजीके नेतृत्वमें रेल्वे स्टेशनपर इसके विरुद्ध भारी प्रदर्शन किया। परिणामतः कमिशन बाहरका बाहर ही अन्यत्र चला गया। पोलीसने जलूस पर निर्मम लाठी चार्ज किया। लालाजीपर भी कड़े प्रहार हुए जिनसे आप क्षत-विक्षत हो गये। और शामकी विशाल सार्वजनक सभामें अपने भाषणमें कहा—"मेरे शरीरपर पड़ने वाला प्रत्येक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्यके कफ़नमें कीलका काम देगा।" यह दैवी भविष्यवाणी अक्षरशः ठीक सिद्ध हुई और क्रान्तिकी ज्वालाओंको प्रचण्डतर करने का कारण बनी।

लाठियोंके प्रहार, राष्ट्रीय अपमानके दुःख तथा आत्मग्लानिकी आन्तरिक मार्मिक वेदनाको हृदयमें साथ लिये ही १७ नवम्बर, १९२८ को राष्ट्रकी बलि वेदीपर आप शहीद हो गये। लाखोंके जन-समुदायने अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करके रावीतटपर आपका अन्त्येष्टि संस्कार पूर्ण वैदिक रीतिसे किया। अपने जीवनमें लालाजी ने आर्यसमाजके सिद्धान्तों और गौरवको चार चांद लगाने वाले अनेक ग्रन्थ लिखे। आप मुक्त कण्ठसे स्वीकार किया करते थे कि "महर्षि दयानन्द मेरे गुरु और आर्यसमाज मेरी माता है, जिसके चरणोंमें बैठकर ही मैंने देश-भक्तिकी दीक्षा ली है। और मैं जो भी सेवा कर पाया हूं वह सब दयानन्द और आर्यसमाज की कृपाका ही फल है।"

(घ) श्री सरदार अजीतसिंह

पंजाबमें १९०७ की क्रान्ति, जिसका दिग्दर्शन हम ऊपर करा चुके हैं, आप और श्री लाला लाजपतरायजी ही उसके प्रमुख सूत्रधार थे। उन्हीं दिनों

आप देशसे निर्वासित हो गये और चालीस वर्षके दीर्घकालतक विदेशोंमें भारतमाताकी स्वतन्त्रताके लिये प्रयत्न करते रहे। आप १९४७ में, जबकि देश स्वतन्त्र हो रहा था, वापस भारत लौट सके। दुर्बल स्वास्थ्यके कारण पंजाबके मैदानोंकी गर्मी असह्य अनुभव करके, डल्हौज़ीमें रहने लगे। वहांसे आपने १०-८-४७ (स्वतन्त्रता प्राप्तिसे केवल पांच दिन पूर्व) अपने मित्र विद्या-प्रकाशजीको निम्न पत्र लिखा—

"प्यारे विद्याप्रकाश जी ! जय हिन्द। डाक्टरोंके मश्वरेसे मैं पहाड़पर रहता हूं। अब तीसरा महीना है कि डल्हौज़ीमें रहता हूं। और देहली, लाहौर वगैरा मैदानी शहरोंमें गर्मी निहायत सख्त है जो मेरे लिये नाक़ाबिले बर्दाश्त है।...हिन्दुस्तानकी आज़ादीका ऐलान शर्मनाक हालात-में एक धोका-बाज़ी है। इससे तमाम मुल्कोंमें मायूसी फैल रही है। इस बारेमें मैं फिर लिखूंगा। बेचारा हिन्दुस्तान घरके और बाहरके बेईमानोंका शिकार होकर तड़प रहा है। आप चाहें तो मेरी तर्फ़से यह अल्फ़ाज छाप सकते हैं।

मुख्लिस
अजीतसिंह

(रोज़ाना प्रताप जालन्धर, १२ अक्तूबर, १९६९ से उद्धृत)

स्मरणीय है कि स्वयं सरदार अजीतसिंहजी, उनके पूज्य पिता श्री सरदार अर्जुनसिंह जी, आपके भ्राता स० किशनसिंहजी, स० सुवर्णसिंहजी और भतीजे (स० किशनसिंह जी के सुपुत्र) हुतात्मा श्री सरदार भगतसिंह जी सारा परिवार ही—महर्षि दयानन्दसे प्रेरणा-प्राप्त आर्यसमाजी था। देशकी स्वतन्त्रताके थोड़े ही दिन बाद सरदार अजीतसिंह का देहान्त डल्हौज़ीमें ही हुआ, जहां शहर से दूर एक निर्जन स्थानमें एक छोटीसी समाधि देश और देशवासियोंकी कृतघ्नतापर आज भी आंसू बहा रही है।

निष्कर्ष

द्वितीय श्रेणी नरम-दल अथवा ऐक्स्ट्रीमिस्ट पार्टी के नेताओंमें

(क) लोकमान्य श्री बाल गंगाधर तिलक—

जस्टिस श्री महादेव गोविन्द रानाडेके शिष्य अतः रानाडे महोदयके माध्यम से इनके भी प्रेरणा-स्रोत —महर्षि दयानन्द

(ख) श्री फिरोजशाह मेहता

रानाडे महोदयको गुरु मानते थे, अतः उनके माध्यम से मेहताजीके प्रेरणा-स्रोत भी—महर्षि दयानन्द

(ग) पंजाब केसरी श्री ला० लाजपतराय

आपतो थे ही दृढ़ आर्य नेता अतः उनका प्रेरणा-स्रोततो थे ही
—महर्षि दयानन्द।

(घ) सरदार अजीतसिंह जी

आर्यसमाजी परिवारके नर-रत्न थे अतः आपके प्रेरणा-स्रोत भी थे
—महर्षि दयानन्द।

१४ (ग)

सत्य, अहिंसा, असहयोग, और सत्याग्रहके समर्थक कांग्रेसी (Congressites)

इस तृतीय श्रेणीके नेताओंमें महात्मा गांधी, स्व०श्रद्धानन्द, डा० सत्यपाल, म० रत्नचन्द, चौ० बुग्गामल (वैष्णोदास), स्वा० अनुभवानन्द, पं दीनानाथ, पं०कोट्टमल, ला. नारायणदास खन्ना, डा० गुरबक्षराय और ला० दुनीचन्द अम्बालवी के नाम उल्लेखनीय हैं। महात्मा गांधीने तो असंख्य अनुयायी बनाये जिनके गुरु आचार्य, प्रेरणा-स्रोत स्वयं महात्माजी ही थे। अतः 'हाथी के पांवमें सबका पांव' के न्यायानुसार उन सबका पृथक्-पृथक् उल्लेख अभीष्ट नहीं है।

नोट—असहयोगियोंकी इस श्रेणीमें कांग्रेसके जन्मसे पूर्व भैणी साहब (ज़िला लुध्याना, पंजाब)निवासी कूका (सिख)सम्प्रदायके आचार्य सद्गुरुरामसिंह जीका स्मरण न करना कृतघ्नता होगी। आप महर्षि दयानन्दके समकालीन थे। जिन दिनों (सन् १८७२-७४ में) महर्षि पंजाबमें प्रचार कर रहे थे, उन्हीं दिनों इन महानुभावोंकी ओरसे पंजाबके विस्तृत क्षेत्रमें-देश भक्ति, पवित्र-जीवन, गोभक्ति, सादगी आदिके सम्बन्धमें कार्य किया जा रहा था।

सद्‌गुरुरामसिंह जी महाराजा रणजीत सिंहके सैनिक थे। आपकी रुचि धार्मिक प्रचारकी ओर थी। गुरु बालकसिंहके साथ सम्पर्क स्थापित होनेपर आपने फौज की नौकरी छोड़ दी और प्रभु-चिन्तन एवं धर्म प्रचारमें संलग्न हो गये।

पंजाबपर अधिकार जमानेके अनन्तर अंग्रेजोंने लोगोंकी धार्मिक भावनाओंके साथ खिलवाड़ करनेके विचारसे गोवध आदि कई पाप इस पवित्र भूमिपर करना आरम्भ किये। सद्‌गुरु रामसिंहजीने गोरी सरकारके साथ पूरी तरह असहयोग करनेकी शिक्षा दी। सरकारी डाक, तार, रेल, स्कूल, कॉलिज, कचहरी–सबका पूर्ण बहिष्कार किया गया। शुद्ध खादी पहनने की आज्ञा प्रचारित की गई। गोरक्षार्थ बलिदान देनेकी भावना तीव्र रूपमें उत्पन्न की गई। सैंकड़ों कूकावीर गोरक्षाके 'अपराध' में फांसियों पर लटकाये गये, अनेकों तोपोंसे उड़ाये गये। 'भैणी साहब' में दण्ड-रूप स्थाई पोलीस चौकी (Punitive Police Post) बिठाई गई, जोकि सद्‌गुरु रामसिंहजीके समय (१८७०) से लेकर अंग्रेज़के देशसे निकल जानेतक निरन्तर बनी रही। सद्‌गुरु रामसिंहजीको मय अपने बहुतसे अनुयायियों (जिन्हें सूबे कहा जाता था) के निर्वासित करके ब्रह्म देशमें भेज दिया गया था।

(क) **महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी—**

आप श्रीयुत गोपालकृष्ण गोखलेको अपना राजनैतिक गुरु मानते थे। इसके अतिरिक्त अग्रगण्य पारसी देशभक्त नेता श्रीदादाभाई नौरोजीकी पोती 'गोसी' के शब्दोंमें उसके दादा श्री दादाभाई नौरोजीके आप अनन्य भक्त और ईमानदारीसे अनुकरण करनेवाले थे। आपने अहिंसाका व्रतभी सम्भवतः श्रीदादाभाई जीसे प्रेरित होकरही धारण किया होगा। क्योंकि उन्होंने इण्डियन सोसाइटी लण्डनका आदरी प्रधान बननेकी स्वीकृति देते समय स्पष्ट कह दिया था कि "वातावरणमें हिंसा बढ़ती प्रतीत होती है, अतः जब भी यह सोसाइटी हिंसाका समर्थन करने लगे, मेरा नाम सोसाइटीके रजिस्ट्रोंमेंसे तत्क्षण काट देना, क्योंकि मैं आयुभर अहिंसाका प्रचार करता रहा हूं।"

"महात्मा गान्धी गोखलेको अपना राजनैतिक गुरु कहते थे। यह उचित ही था।" (भारतीय स्वातन्त्र्य संग्रामका इतिहास, पृष्ठ १००)

Mahatma Gandhi—

"As a matter of fact Gandhi Ji told the late centanarian Vedic scholar Pandit (Shripad) Damodar Satwalekar that "he

was only carrying out Dayanand's programme of national reconstruction in his own way."[1]

अर्थात्—वास्तविकता यह है कि महात्मा गांधीने शतायु स्वर्गवासी पण्डित (श्रीपाद) दामोदर सातवलेकरको कहा था कि **"मैं तो दयानन्द द्वारा निर्धारित कार्यक्रमको** अपने ढंगसे **पूरा कर रहा हूं।"**

(सैनिक समाचार, २० अक्तूबर, १९६८)

Dr. Radha Krishnan former President of India paying tribute to Swamiji had said that "several items of Swami Dayanand have been incorporated in India's constitution."[2]

अर्थात्—डा० राधाकृष्णन भारतके पूर्व प्रधान महोदयने कहा था कि—**"दयानन्दके कार्यक्रमकी कई मद्दें तो भारतके संविधानमें सम्मिलित की जा चुकी हैं।"**

(उक्त पृष्ठ)

(ख) हुतात्मा श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी—

आप जालन्धर जिलेके तलवन नामी ग्रामके रहनेवाले थे। आपके पिता श्री ला०नानक चन्द बरेलीमें कोतवाल पोलीस थे। महर्षि दयानन्द प्रचाराभियानमें वहां पहुंचे। आपके व्याख्यानोंको सुनकर कुमार्गगामी, बिगड़ा-हुआ नास्तिक विचारोंका मुंशीराम (संन्यास ग्रहणके पूर्व आपका यही नाम था) एकदम सुधर गया और आर्य समाजमें प्रविष्ट हो गया। दयानन्दका ऐसा जादू चला कि पढ़ा-लिखा वकील-पेशा मुन्शीराम हाथमें इकतारा लेकर उसे बजाता और दयानन्दके गीत और प्रभु भक्ति के भजन गाता प्रतिदिन प्रातः जालन्धरके गली-कूचोंमें फेरी लगाता फिरने लगा और यदि आपको भिक्षुक समझकर कोई माता कोई पदार्थ भिक्षा रूप में दे देती तो उसे भी स्वीकार करके आर्य-समाजमें दे देता। थोड़े ही समयमें आप आर्यसमाजके प्रमुख कार्यकर्त्ता और वरिष्ट नेताके रूपमें पंजाबका नेतृत्व करने लगे।

१९०२ में भागीरथीके कन्खल-हरिद्वार पारले तटपर आपने कांगड़ी ग्राममें गुरुकुलकी स्थापना की। अपनी कोठी बेचकर रक्म गुरुकुलफण्डमें जमा करा दी और अपने दोनों पुत्रों हरिश्चन्द्र तथा इन्द्रको साथ ले जाकर—बीहड़ बनमें, जहां हिंस्र पशुओंका आवास था, भारतभरकी पहली राष्ट्रीय संस्था, जिसमें प्रथमश्रेणीसे कालिजकी उच्चतम कक्षाओंतक सम्पूर्ण विषय—इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान आदि हिन्दीके माध्यमसे पढ़ाये जाते थे, की स्थापना की।

महात्मा गांधी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलनके सन्दर्भमें ३० मार्च, १९१९ को राजधानी देहलीमें आपने एक भारी जलूसका नेतृत्व किया। जब यह चल-समारोह चाँदनी-चौकमें पहुंचा तो अंग्रेज़की फौजने उसे रोकते हुए बन्दूकें सीधी कर लीं। स्वामीजीने छाती खोलकर बन्दूकची के सामने करदी और गोली चलानेको कहा।

उसी शाम जामे-मस्जिद देहलीके मञ्चपर स्वामीजीने वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए भाषण दिया। स्वराज्यके आन्दोलनमें आप मनसा, वाचा, कर्मणा रत रहे।

१९०७ में जब अंग्रेज सुपरिण्टेंडेंट पोलीस मि० वार्बर्टनने जिसके झूठे बिल वित्त विभागकी टीका टिप्पणीका निशाना बने हुए थे, महाराजा पटियालाके हितैषीका छद्म-वेष धारण करके नरेशके दिलमें आर्य-समाजियोंके राजद्रोही होनेके भाव अंकित कर दिये। परिणामतः एकही रातमें ८५ आर्योंको पकड़कर उनपर मुकद्दमा चला दिया गया। महात्मा मुन्शीरामजीने अपना वकालतका दबा-दबाया सर्टीफिकेट निकालकर ला०वजीर चन्दजी तथा अन्य प्रसिद्ध वकीलोंको साथ लेकर पैरवी की। कोई प्रमाण नहीं मिला, अतः मुकद्दमेकी कमजोरी देखकर सरकारने मुकद्दमा वापस ले लिया परन्तु ला० नारायणदत्त आर्य आदि को रियासतसे निकलना पड़ा। सद्धर्मप्रचारक नामका साप्ताहिक पत्र उर्दू भाषामें जालंधरसे निकाला, साथही वकालत भी किया करते थे। किसीने कहाकि आप हिन्दीप्रचारका दम भरते हैं और पत्र उर्दू में चलाते हैं। उनदिनों पंजाबमें हिन्दीका प्रचार न के बराबर था; परन्तु अपनी भूल स्वीकार करते हुए अगले ही सप्ताह-से सद्धर्मप्रचारक हिन्दीमें छपने लगा।

१३ अप्रैल, १९१९ की वैशाखीकी सायंकाल को जब जलियांवाला-बाग़ अमृतसरमें जनरल डायरने निःशस्त्र शान्त जन-समूहपर ५० फौजियोंकी टुकड़ी द्वारा तीन राऊंड गोली वर्षा की (स्मरण रहे कि डायर के बयान अनुसार एक राइफलकी मैग्जीनमें ११ गोलियां पड़ती हैं। इस प्रकार ११×५०×३=१६५० गोलियां चलाई गई) और सैंकड़ों व्यक्तियोंका वध और हजारोंको घायल किया गया। इससे पंजाब प्रान्तभरमें आतंक छा गया। ऐसे विकट समयमें दिसम्बर १९१९ में अमृतसरमें कांग्रेसका अधिवेशन होने वाला था। स्वामीजीको स्वागत समितिका अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। कांग्रेसके जन्मसे लेकर तबतक आप पहले महात्मा थे जिन्होंने अपना भाषण अंग्रेज़ी भाषणोंकी परम्पराको तोड़कर इसे

हिन्दीमें लिखा और पढ़कर भविष्यके लिए एक स्वस्थ परम्पराको स्थापित किया।

१६२३ से आरम्भ करके अलीगढ़, अलवर मथुरा, भरतपुर, आगरा आदि अनेक जिलोंमें आपकी अध्यक्षतामें हिन्दूशुद्धिसभाके माध्यमसे लाखों मलकाना राजपूतोंको शुद्ध करके हिन्दू धर्म में प्रविष्ट किया गया। उस समय महात्माहंसराज आगरामें रहने वाले उपप्रधान और महाशय देवप्रकाशजी उक्त सभा के मन्त्री थे।

'गुरुका बाग़' जिला अमृतसर (पंजाब) में अकालियोंने अंग्रेजी सरकारके विरुद्ध सत्याग्रह किया। मिस्टर बीटी सीनियर सुपरिण्टैण्डैण्ट पोलीसके आधीन अकालियोंपर अत्याचार ढाये जा रहे थे। श्रीस्वामीजीने भी अकालियोंकी हमदर्दीमें अपने आपको गरिफतारीके लिये पेश किया।

शुद्धि आंदोलनके सन्दर्भ में कराचीकी असग़री बेगम नामकी एक मुसलमान महिलाको शुद्ध करके उसका नाम शान्तिदेवी रक्खा गया। इससे चिढ़कर एक मतान्ध मुसलमान अब्दुर्रशीदने २३-१२-१६२६ को छातीमें जबकि आप रोग शय्या पर पड़े थे, पिस्तौलकी गोली से तीनवार किये जिससे आप शहीद होगये।

अमृतसरनगर स्थित जलियांवाला बागके हत्याकाण्डके पश्चात् पंजाब-भरमें जनसाधारण पर भारी आतंक छाया हुआ था। कांग्रेसने पण्डित मोतीलाल नेहरूकी अध्यक्षतामें एक जांच कमेटीका आयोजन किया; परन्तु लोगोंके हृदयमें इतना भय पैदा हो चुका था कि डरके मारे कोई शहादत देनेको सामने नहीं आता था। इस भयानक स्थितिमें श्री स्वामीजी की प्रेरणापर आचार्य श्री पण्डित देवप्रकाशजी अमृतसरी तथा श्रीमास्टर लालचन्दजी मेहरा, मन्त्री आर्य युवकसमाज अमृतसर तथा अन्य कई साथियोंको लेकर देहातमें जाकर ग्रीष्म की कड़ती धूपमें बीस-बीस और तीस-तीस मीलकी पैदल यात्रा करके लोगोंके बयान इकट्ठे किये। तब जाकर कहीं कांग्रेस-जांच-कमिशन का काम पूर्ण हो पाया।

यह विचारणीय तथ्य है कि श्री स्वामी श्रद्धानन्दजीके क़ातिल अब्दुर्रशीदको बचानेका प्रयत्न करने वालोंमें प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता मौ० शौकत अली, मौ० मुहम्मद अली तथा देहली के मौ० अब्दुल्ला चूड़ीवाले थे। उन्हीं दिनों अब्दुर्रशीदके मकानके पासवाली गलीमें पड़ा हुआ काग़ज़ोंका एक बण्डल मिलाथा'''उस बण्डलमें बड़े-बड़े प्रसिद्ध मौलवियोंके इस आशयके खत भी थे कि स्वामी श्रद्धानन्द काफ़िर है और मुसलमानोंको मुरतिद(धर्मभ्रष्ट) बनाता है, इस लिये इसे मारना मुसलमानों का फ़र्ज़ है। यह बण्डल

सी० आई० डी० के आदमीने लाकर श्रीइन्द्र विद्यावाचस्पति और लाला देशबन्धु गुप्ताको दिया। उन दोनोंने वह बण्डल लाला लाजपतरायजीको दे दिया। लालाजीने स्वयं मि० विन्सेण्ट स्मिथ (होम मेम्बर, गवर्नमैण्ट आफ इण्डिया)के पास पहुंचा दिया, विन्सैण्ट स्मिथने वह बण्डल यह कहकर लेलियाकि इसकी तहकीकात करायेंगे। बस वहां जाकर खतोंका वह बण्डल ऐसा गुम हुआ कि फिर न निकला।

'(आर्यसमाजका इतिहास, भाग २ पृष्ठ १५५ उद्धृत भा. स्वा. संग्राममें आर्य समाजका योगदान, पृष्ठ ५८-५९)

श्री पट्टाभि सीतारमैयानेकांग्रेस का इतिहास नामी पुस्तक में लिखा—

''वहां (दिल्लीमें) ३० मार्च (१९१९) को ही जलूस निकला और हड़ताल हुई। उसदिनके जलसे-जलूसका नेतृत्व स्वामी श्रद्धानन्दजी कर रहे थे। उन्हें कुछ गोरे सिपाहियोंने गोली मारनेकी धमकी दी। इसपर उन्होंने अपनी छाती खोलदी और कहा "लो मारो गोली।" बस गोरेकी धमकी हवा हो गई। (भा. स्वा. सं. में आर्यसमाजका योगदान, पृष्ट ५५)

जिस समय स्वामीजीको शहीद किया गया ठीक उस समय गोहाटी (आसाम) में इण्डियन नेशनल कांग्रेसका वार्षिक सम्मेलन हो रहा था। यह समाचार वहां पहुंचते ही उदासी छा गई और स्वयं महात्मागांधीजीके सुझावपर निम्नांकित प्रस्ताव स्वीकृत किया गया—

"This congress expresses its horror and indignation at the cowardly and treacherous murder of Swami Shraddhanand and places on record its sense of the irreparable loss the nation has sustained by the tragic death of a noble and a brave patriot who had dedicated his life and his great gifts to the service of his country, as well as his faith and espoused with fearless devotion the cause of the lowly, the fallen and the weak".

अर्थात्—"यह कांग्रेस श्री स्वामी श्रद्धानन्दजीके भीरुता और बेईमानी-पूर्ण हननपर अपनी रोषपूर्ण घृणा व्यक्त करती हुई अंकित करती है कि आप जैसे देवतास्वरूप वीर देशभक्तकी हत्यासे समुच्चय राष्ट्रको अपूर्णीय क्षति पहुंची हैं, जिन्होंने अपना जीवन तथा प्रभु-प्रदत्त-प्रतिभाको देश एवं धर्मकी सेवाके अर्पण कर रखा था और जिन्होंने पतित-पददलित एवं निर्धन वर्गोंकी सेवाको अपना सर्वोच्च लक्ष्य बना रक्खा था।"

आपकी मूर्ति चांदनी चौक दिल्ली स्थित टाऊन-हालके प्रांगणमें सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभाकी ओरसे स्थापित कर दी गई है जिसका अनावरण ३० मार्च, १९७०, सोमवार प्रातः ९ बजे भारतके प्रधान, महामहिम श्री वी.वी. गिरि महोदय द्वारा हुआ था।

(ग) श्री डा० सत्यपालजी अमृतसरी—

आप वज़ीराबाद (पंजाब) निवासी ला. मनीरामजीके सुपुत्र थे। डाक्टरीकी उच्च शिक्षा प्राप्त करके आपने अपना कार्यकेन्द्र अमृतसरको बनाया। आर्यसमाजके साथ आपका घनिष्ट सम्बन्ध था। आर्यसमाज बाजार श्रद्धानन्दके वर्षों आप मन्त्री रहे और बड़े जोरसे वैदिक धर्मका प्रचार करते रहे।

१९१७ में अमृतसर रेल्वे स्टेशनके अंग्रेज सुपरिण्टैण्डैण्टने कलकत्ताको जानेवाली मेलके समयपर प्लेटफार्म टिकिटोंकी बिक्री एकदम बन्द कर दी, जिससे अमृतसरकी व्यवसाय-प्रधानजनताको महान् कष्ट हुआ। आपने 'क्या तुम्हारे सिरपर पगड़ी है?' के शीर्षकसे एक विज्ञापन निकाला। इसकी भाषा इतनी उत्तेजक, उग्र तथा प्रभावोत्पादक थी कि सारा नगर आन्दोलित होकर खड़ा हो गया। भारी जलसे होने और जलूस निकलने लगे। इन सबका नेतृत्व डाक्टर साहबने अपने हाथमें सम्हाला। जनताके साथ जो सम्पर्क स्थापित हुआ, वह रऊलेट ऐक्ट विरोधी आन्दोलनोंमेंभी कांग्रेसके काम आया।

९ अप्रैल, १९१९ को रामनवमीकाजलूस निकला। यह अमृतसरका शानदार चल-समारोह हुआ करता है। हिन्दु-मुस्लिम ऐक्यके दृश्य देखकर अंग्रेज शासक उसे सहन न कर सके और उसी रात डाक्टर साहबको गरिफ्तार करके किसी अज्ञात स्थानपर नज़रबन्द कर दिया गया। इसीके विरुद्ध प्रोटेस्टकारियोंके जलूसपर, १० अप्रैल १९१९ को गोली चलाकर करीब १० व्यक्तियोंको शहीद कर दिया गया। इसके बाद १३ अप्रैलको वैशाखीके दिन जल्यांवाला बाग काण्ड और अमृतसर, लाहौर, गुजरांवाला और कसूर आदि कई नगरोंमें मार्शल-लॉके अत्याचार हुए। श्री डाक्टर सत्यपालजी तथा अन्य अनेकों हिन्दुस्तानी देशभक्तोंको जायदादोंकी ज़ब्तियों, आजन्म-कालेपानियों एवम् फांसियों की सजाएँ दी गईं।

मार्शल-लॉसे एक वर्ष पूर्व १९१८ में श्री डा० सत्यपालजी श्री म० रत्नचन्दजी आदि सज्जनोंकी प्रेरणासे देहली गये और इण्डियन नेशनल कांग्रेसका आगामी १९१९ का अधिवेशन अमृतसरमें बुला लाए थे। मार्शल-

लॉट्रिब्यूनलने आपको अन्य कई साथियोंके साथ फांसीका दण्ड दिया था, परन्तु सौभाग्यवश अमृतसर कांग्रेस अधिवेशनसे पूर्वही आपको रिहा कर दिया गया और आपने कांग्रेस अधिवेशनकी सफलतामें पूरा सहयोग दिया।

जीवनकी सन्ध्याकालमें आप विधानसभाके अधिवक्ता (स्पीकर-Speaker) निर्वाचित हुए और अनेकों स्वस्थ परम्पराओंको स्थापित कर पाये।

(घ-ङ.) श्री म० रत्नचन्दजी तथा चौ० बुग्गामलजी—

म० रत्नचन्दजी अमृतसर नगरके रहनेवाले थे। क्षात्र-धर्मके अनुयायी होनेके नाते दीन-दुःखियोंकी सहायतामें सदा तत्पर रहते थे। आरम्भमें आपकी संगति अच्छे व्यक्तियोंके साथ नहीं थी। आर्यसमाजके साथ सम्पर्क स्थापित होते ही आप सच्चरित्र आर्यवीर बन गये। आप अपने सहयोगियों चौ० वैष्णोदास (उपनाम बुग्गामल) की सहायतासे अनेकों पीड़ित हिन्दु देवियों और लड़कोंको जान हथेलीपर रखकर दुश्चरित मुस्लिम गुण्डोंके बड़े-बड़े समूहोंमेंसे निकाल लाया करते थे।

१९०७ ई० में लाला लाजपतराय और सरदार अजीत सिंहके राष्ट्रीय प्रचारसे चिढ़कर सरकारने उनके वारण्ट निकाले। पोलीसकी आंखोंमें धूल झोंककर सरदार अजीतसिंह अदृश्य हो गये। उन दिनों इस प्रकारके उग्र राष्ट्रवादियोंकी छायासे भी लोग भयभीत रहते थे; परन्तु वीर महाशय रत्नचन्दजीने जोकि अमृतसरकी शाईनिंग क्रिकिट क्लबके सदस्य थे, एक मास पर्यन्त उन्हें अपने मकानमें छुपाये रखा। कुछ दिनों पश्चात् सरदार साहिब स्थानान्तरण करनेके लिए हल्वाईकी तरह सिर पर कड़ाही उठाए और हाथमें अन्य उपकरण थामे हाल दर्वाजासे निकल रहे थे कि एक गुप्तचरके इशारे पर गरिफ्तार कर लिए गए।

महाशय रत्नचन्दजीकी गरिफ्तारीके समय पोलीसने उनके सामने घरका सारा सामान उठा लिया। उनकी स्त्रीको,जिसकी गोदमें नन्हा-सा बच्चा था, खेंचकर घरसे बाहर निकाल दिया और मकानको ताला लगाकर बन्द कर दिया।

आपपर शेष साथियों सहित स्पैशल ट्रिब्युनलसे फांसी और पं० मालवीयजी द्वारा प्रिवी कौंसिलमें अपीलपर कालेपानीका दण्ड दिया गया। अण्डेमन जानेकी तारीख निश्चित हो गई, तब आपने महाशय कृष्णजीको

जेलमें बुलाया और कहा—"मैं अब अण्डेमन जानेवाला हूं। कह नहीं सकता कि कब लौटूंगा और जीवित लौट भी सकूंगा या नहीं। इस लिये आपपर एक दायित्व डालना चाहता हूं। क्या आप वह दायित्व लेने को तय्यार हैं?" म० कृष्णजीने हां कहदी। इसपर उन्होंने अपनी पत्नीसे कहाकि "बच्चा महाशय जीकी गोदीमें दे दो।" अतः उसने वह बच्चा मेरे (म० कृष्ण जी के) हवाले करदिया। उस समयसे मैं उसका संरक्षक हो गया। मैंने पहले उसे गुरुकुलमें दाखिल कराया और फिर एक स्कूलमें, अब वह काम पर लगा हुआ है।"

(महाशय कृष्णका जीवन चरित्र, पृष्ठ २७६ भा. स्वा. सं. में आर्य समाजका योगदान पृष्ठ ७६-७७ पर उद्धृत)

जलियांवाला बाग़, नामका ही बाग़ था। वास्तवमें यह चारों ओरसे ऊँचे-ऊँचे भवनोंसे घिरा हुआ एक खुला-सा स्थान था। इसमें लोग मल-त्याग करते और इर्द-गिर्दके लोग कूड़ा-कचरा निःशंक होकर फेंकते रहते। रऊलेट ऐक्ट ऐजीटेशनके दिनों सार्वजनिक सभाओंके लिए शहरके अन्दर दूसरा कोई विशाल मैदान नहीं था। महाशय रत्नचन्दजीने इसे साफ़ कराया; स्वच्छ, स्वास्थ्य-प्रद स्थान बनाया। इसीके लिये फांसी और बादमें आजन्म कालेपानीका दण्ड भुगता, परन्तु खेद और ग्लानिका विषय है कि जब उजड़ा-हुआ महा गन्दा स्थान स्मारक रूप धारण कर बैठा और भारतके राष्ट्रपति महामहिम श्री बा. राजेन्द्र प्रसादजी इसका उद्‌घाटन करने अमृतसरमें पधारे तो कृतघ्न कांग्रेसी टोलेने मञ्चपर स्थान देनेके लिए इन्हें निमन्त्रण तक नहीं दिया। अपनी उग्र देशभक्ति और उच्चतम हार्दिक भावनाओंसे प्रेरित होकर आप इस उत्सवमें सम्मिलित हुए और सर्व-साधारणके साथ दरियोंपर बैठकरही कौमी शहीदोंको श्रद्धांजलि भेंट करते रहे। बाद में भी अपनी पूर्ण श्रद्धासे प्रतिदिन वहाँ जाते और घण्टों बैठकर आने-जाने वालोंमें राष्ट्रीय भावनाओंका निरन्तर सञ्चार करते रहते।

कॉंग्रेसके महान् नेता श्री डा० सत्यपालजी बी. ए., बी. एम. महाशय रत्नचन्दजीको अपना राजनैतिक गुरु कहा करते थे। मार्च अप्रैल १९१९ की क्रान्तिकारी योजनाओंमें आप महाशयजी तथा चौधरीजीका निरन्तर परामर्श लिया करते थे। मार्शल-लॉकी धांधलीमें दोनों सज्जन धर लिए गये। स्पैशल ट्रिब्युनलका ड्रामा खेलनेके बाद दोनोंको फाँसीका दण्ड दिया गया, जो बादमें श्री महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय तथा श्री पं० मोतीलालनेहरु द्वारा प्रिवी कौंसिलमें अपील करनेपर आजन्म कालापानीमें

बदल दिया गया। चौधरी साहब सारी सज़ा भुगतकर और महाशयजी उसके भी कई वर्ष बाद लौटे।

(च) स्वा. अनुभवानन्द (छ) पं. दीनानाथ (ज) पं. कोटूमल (झ) बा. नारायणदास खन्ना (ञ) डा० गुरबख्शराय—इनके सम्बन्धमें विशेष नोट—

अप्रैल १६१६ में जिन घटनाओंके बाद मार्शल-लॉकी घोषणाकी गई थी और बादमें स्पैशल ट्रिब्युनलके समक्ष मुकदमे चलाये गये थे उनमें १७ अभियुक्त थे। उनमेंसे ८ मुसलमान और ६ हिन्दु थे। और यह विशेषतया उल्लेखनीय है कि ६ हिन्दुओंमेंसे ८ आर्य समाजी अर्थात् सीधे तौरपर **स्वामी दयानन्दकी शिक्षाओंसे प्रभावित थे।** पाठकों की जानकारीके लिए एक अधिकृत तालिका नीचे दी जाती है, जो रुचिकर सिद्ध होगी।

Amritsar Conspiracy Case

(अमृतसर षड्यन्त्र केस)

(ग)	२. डा सत्यपाल	३५ वर्ष	आजन्म काला पानी
(ज)	५. पं. कोटूमल	५५ वर्ष	३ वर्ष कड़ी कैद
(झ)	६. बा. नारायणदास खन्ना	३५ वर्ष	३ वर्ष कड़ी कैद
(च)	८. स्वा. अनुभवानन्द	३६ वर्ष	आजन्म काला पानी सम्पत्ति ज़ब्त
(छ)	६. पं. दीनानाथ	४० वर्ष	” ” ”
(ञ)	१०. डा० गुरबख्शराय	३० वर्ष	” ” ”

इन पर निम्न धाराओंके अनुसार मुकद्दमे चले—

१२१, १२१ अ, ३६६, १४७, ४३६, ३०२, ३२६, ५०६, / १२० ब, १२४ अ

१४७, ४३६, ३०२, / १०६, ५०६ भारतीय दण्ड विधान

पृथक् सूची

(घ)	१. म. रत्नचन्द	फांसी जो प्रिवी कौंसल ने आजन्म काला पानी कर दी
(ङ)	२. चौ० बुग्गामल	फांसी जो प्रिवी कौंसल ने आजन्म काला पानी कर दी

भारतीय दण्ड की धाराओं बादशाहके विरुद्ध जंग, नर हत्या अग्नि काण्ड, डाका आदि।

(ट) **श्री बा० दुनीचन्दजी एडवोकेट अम्बालवी—**

आप अम्बालानगर (पंजाब) के लब्ध-प्रतिष्ठ प्रतिभाशाली ऐडवोकेट थे। आर्यसमाज, कांग्रेस तथा अन्य सार्वजनक आन्दोलनोंके आप प्राण थे। महर्षि दयानन्दके अनन्य भक्त थे। आपने बहुत लम्बी आयु पाई थी। आप सच्चरित्र और सौम्यताके प्रतीक माने जाते थे। आप महात्मा गांधी द्वारा संचालित आन्दोलनोंमें अन्ततक सम्मिलित रहे और अन्य सार्वजनक कार्योंमें, निरन्तर रुचि लेते रहे। पञ्जाब प्रान्त और विशेषतः अम्बालाके धार्मिक सामाजिक तथा राजनैतिक कार्योंमें आपका सत्परामर्श सफलताका प्रतीक समझा जाता था।

(ठ) **श्री भीमसेन सच्चर—**

आप आरम्भ अवस्थामें कई आर्यसमाजोंके मन्त्री और प्रधानपदोंसे आर्यसमाजकी अमूल्य सेवा करते रहे। आप आर्यसमाजके लोह पुरुष विशालकाय श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजीके शिष्य हैं। पंजाबके मुख्य मन्त्री पदकी शपथ लेनेसे पूर्व आपने आर्य समाज बेअर्ड रोड नई देहलीमें हवन कुण्डमें अग्नि प्रज्वलित करके स्वच्छ शासनका प्रण किया था, जिसे प्राणपणसे निभाते रहे। बादमें आप आन्ध्र राज्यके राज्यपाल पदको सुशोभित करते रहे। वहांसे अवकाश प्राप्त होनेपर आजकल डी०ए०वी० कालिज सोसाइटी कार्यकर्त्री सभामें पूर्ण सहयोग प्रदान कर रहे हैं।

(ड) **श्री डा० गोपीचन्दजी भार्गव—**

आप पंजाब केसरी श्री ला० लाजपतरायजी के प्रधान शिष्य थे। आर्यसमाजसे प्रेरणा प्राप्त करनेके अनन्तरही राजनैतिक क्षेत्रमें कूदे थे। आप वर्षों पंजाबके मुख्य मन्त्री पदका भार सम्हाले रहे।

(ढ) **श्री महात्मा देवीचन्दजी एम. ए.—**

आप डी०ए०वी० आन्दोलनके सर्वप्रथम जीवनदानी पूज्य महात्मा हंसराजजीके शिष्य थे। एम०ए० की शिक्षा प्राप्ति पर आपको सरकारने मैजिस्ट्रेटपद सम्भालनेके लिए तार द्वारा निमन्त्रित किया। आप उक्त तारको लेकर पंजाब केसरी ला. लाजपतराय और श्री महात्मा हंसराजजीकी सेवामें उपस्थित हुए। तारको देखकर महात्माजीने कहा—'देवीचन्द! हमने तुम्हें सरकारी नौकरीके लिए तो तैयार नहीं किया था'? गुरुदेवके ये शब्द सुनकर आपने तार फाड़ फेंकी और नत-मस्तक हो आज्ञा मांगी। आदेश प्राप्त होनेपर आजन्म-सेवक बननेका व्रत धारण करके आपने

श्री ला० रामप्रसादजीसे डी.ए.वी. हाई स्कूल होशियारपुरके प्रधानाध्यापकका काम सम्हाला। पंजाब केसरी ला. लाजपत रायजीने श्री ला. रामप्रसादजीको किसी अन्य सेवापर लगा लिया। आपने हाई स्कूलको विशाल डी.ए.वी. कालिज बनानेके अतिरिक्त ज़िलेभरमें हाई, मिडल और प्राइमरी स्कूलोंका जाल बिछा दिया, ग्राम-ग्राममें आर्य समाज स्थापित कर दिये और वैदिक धर्म प्रचारिणी सभाके आयोजनसे ज़िलाभरमें और दूसरे इलाक़ोंमें भी वैदिक धर्मके प्रचारकी अत्युत्तम व्यवस्था करदी। स्कूल और कालिजकी सेवासे मुक्त होनेके बाद आपने पहले दयानन्द दलित-उद्धार मण्डलकी स्थापनाकी। इसे दृढ़नींव पर स्थित देखकर इसे श्री ला. रामदासजी एम. ए के सुपुर्द कर दिया और अखिल भारत दयानन्द सालवेशन मिशनका स्थापन करके उसका सञ्चालन करते रहे। विद्या-प्रसार, अछूतोद्धार, धर्म प्रचार और भूले भटके बच्चों और अपहृत हिन्दु देवियोंका संरक्षण आपकी पूर्ण रुचिके विषय थे।

आपने अन्तिम अवस्थामें संपूर्ण सामवेद और संपूर्ण यजुर्वेदके अनुवाद अंग्रेजी भाषामेंकिये और अथर्ववेदके २० मेंसे १६-१७ काण्ड तक ही पहुंच पाये थे कि कैंसरके घातक रोगसे आपका देहान्त होगया।

(ण) श्री प्रबोधचन्द्रजी एम. ए.—

आप श्री मास्टर सत्यदेवजीके सुपुत्र हैं जोकि, आयु भर स्कूलोंमें अध्यापनका कार्य करनेके साथ-ही साथ आर्य समाजके वरिष्ट कार्यकर्त्ताओं मेंसे थे। श्री प्रबोध चन्द्रजी सुविख्यात आर्यविचारोंके राष्ट्रीयनेता श्री ला० पिण्डीदासजीके जामाता हैं। देश विभाजनके बाद आप गुरदासपुरसे पंजाबकी विधान सभा में चुने जाया करते थे। आप पंजाबके मन्त्री मण्डलमें शिक्षा-मन्त्रीके पदको सुशोभित करते रहे हैं। विधानसभामें एक अकाली विधायकने व्यंग्यसे कहा—"श्री प्रबोध चन्द्रजी तो आर्य समाजी हैं।" अविलम्ब आपने उत्तर दिया—'हाँ, मैं आर्यसमाजी हूं और मुझे आर्यसमाजी होनेमें गर्व है आर्यसमाजने देशकी भारी सेवा की है।" (दैनिक वीर अर्जुन देहली २६-३-६६ भा. स्वा. सं. में आर्य समाजका योगदान)
आजकल आप लोकसभा के सदस्य हैं।

(त) श्री महाशय कृष्णजी बी. ए.—

१९०७ ई० में जब पंजाबमें क्रांति की ज्वालाएं प्रचण्ड रूप धारण कर रही थीं, आपने साप्ताहिक उर्दू प्रकाशका प्रकाशन किया और आर्यसमाज तथा महर्षि दयानन्दकी धारणाओंका प्रचार आरम्भ कर दिया।

असहयोग और सत्याग्रहके दिनोंमें आपने उर्दू 'प्रताप'को जन्म दिया और राऊलेट ऐक्टके विरुद्ध महात्मा गांधीजीका पूरा साथ दिया। आप लेखनीके धनी थे। आपकी गम्भीर लेखन शैलीसे प्रभावित होकर उर्दू-फार्सी-अरबीके धुरन्धर लेखक, कांग्रेसके प्रधान, मौलाना अब्बुल कलाम आज़ादने एकबार लिखाथा—'महाशय लिखता है और खूब लिखता है, मगर कमबख़्त क़लमसे नहीं, तेशेसे लिखता है।' आपकी लेखनीका लोहा दोस्त-दुश्मन सब मानते थे। जिसभी मज्मूनपर क़लम उठाते थे उसे पराकाष्टापर पहुंचाकर छोड़ते थे। अंग्रेजी सरकारने उनपर और उन 'प्रताप' पर ताबड़तोड़ हमले किये; परन्तु सदा मुंह की खाई। सर सिकन्दर हयातखां पंजाबके प्रधानमन्त्री बने, वहभी आपसे भय खाते रहे। जब भी किसी कारण आपको दण्ड देनेका साहस करते, सदा असफल रहते। देश विभाजनके अनन्तर आपने जालन्धर और दिल्लीसे पत्र जारी किये। इसपर अपनी स्वदेशी सरकारनेभी पुरानी गवर्नमैंटोंका अनुसरण किया—पहले ज़मानतोंकी तलबी, फिर ज़ब्ती इसके अतिरिक्त सैंसर-शिपके समस्त शस्त्र आपके विरुद्ध आज़माये परन्तु अन्ततः सब व्यर्थ सिद्ध हुए। पण्डित जवाहरलाल नेहरू एक बार लाहौर पधारे, और आपकी कोठीपर ही ठहरे। प्रेस कांफ्रेन्समें किसी पत्रकारको उत्तर देते हुए उन्होंने कहा—'यदि सुभाषचन्द्रबोस भारतपर आक्रमण करेंगे तो मैं स्वयं तलवार लेकर उनका मुकाबिला करूंगा।' यह बात राष्ट्रकल्याणके प्रतिकूलथी, क्योंकि सुभाषबाबू भारतको विदेशियोंके पन्जेसे छुड़ानेका उद्यम करने वाले थे, अतः यह बात महाशयजीको अच्छी नहीं लगी। अतः उन्होंने लिखा 'यदि मेरे देशको स्वतन्त्र करानेके लिए जर्मन भी आ जायँ तो मैं समुद्र तटपर जाकर पुष्पमालाओंसे उनका स्वागत करूंगा।'

तनिक अन्दाजा लगाइयेकि कितना उग्ररूप है महर्षि दयानन्द और आर्य समाज द्वारा दीक्षित राष्ट्रभक्त महाशय कृष्णजीका !

(थ) श्री वीरेन्द्रजी एम. ए.—

आप प्रसिद्ध आर्यनेता श्री महाशय कृष्णजीके ज्येष्ठ सुपुत्र हैं। सरदार भक्तसिंहजीकी गिरफ्तारीके समय आपभी उनकी सहायता करनेके आरोपमें धर लिये गये थे। उन दिनों आप केवल १६ वर्षकी किशोरावस्था में थे। दस बार जेलों में गये और लम्बी अवधियों तक कारावास में रहने के कारण एफ़. ए., बी. ए., और एम. ए. की परीक्षाएँ वहाँसे ही पास कीं। महाशय

कृष्णजीके निधनसे पूर्व ही आपने प्रतापका सम्पादकत्व सम्भाल लिया था और तभीसे इसका सफल सञ्चालन जालन्धरसे कर रहे है। दैनिक प्रताप-का एक संस्करण देहलीसे भी निकलता है और उसके सञ्चालक-सम्पादक आपके कनिष्ट भ्राता श्री के. नरेन्द्र जी हैं। १९५७ के हिन्दी सत्याग्रहके दिनों आपने अपनी जादूभरी लेखनीके जौहर खूब दिखाये थे। स्वयं भी कई बार सत्याग्रह करके पटियाला जेलमें नज़रबन्द रहे। सौभाग्यका विषय है कि इन पंक्तियोंके लेखकको भी उनके साथ वहां रहने और उन्हें बहुत नज़दीक-से देखनेका सुअवसर प्राप्त हुआ था। महापंजाब आन्दोलन, हिन्दी रक्षा आन्दोलन और पञ्जाबी सूबा विरोधी आन्दोलनमें आपकी लोह-लेखनीका अद्भुत स्वरूप जनताने देखा है। आप अभी तक अपने पूज्य पिताजी द्वारा निर्धारित वीरोचित नीति कि 'यह सिर कट तो सकता है परन्तु अन्याय, असत्य, अत्याचारके आगे झुक नहीं सकता' पर निरन्तर अग्रसर हो रहे हैं। आपने अपने दोनों सपूतों चि० ललित मोहन एम. ए. और चि० चन्द्रमोहन एम. ए. को भी पत्र लेखन कलामें दक्ष बनाकर अपना हाथ बटानेके लिए सन्नद्ध कर लिया है।

(द) श्री यशजी बी. ए.—

आप महात्मा खुशहालचन्द खुर्सन्द (आजकल पूज्यश्री महात्मा आनन्द स्वामीजी सरस्वती) के सुपुत्र हैं। किशोरावस्थासे ही अंग्रेजों की जेलोंमें यात्रा करने के अभ्यासी रहे हैं। देश विभाजनके अनन्तर आप दैनिक उर्दू तथा हिन्दी मिलापका सफल सञ्चालन जालन्धरसे कर रहे हैं। पंजाब मंत्री-मण्डलमें शिक्षामन्त्री पदारूढ़ रह चुके हैं। आप उत्तम लेखक, गम्भीर विचारक और तेजस्वी वक्ता हैं।

(ध) श्री लाला जगत्नारायणजी—

आप प्रसिद्ध आर्य परिवारके सुपुत्र हैं, दीर्घकाल तक पंजाब कांग्रेसके मन्त्री-पदारूढ़ रहे हैं, कैरों मिनिस्ट्रीमें आप शिक्षामंत्रीका कार्यभार सम्भाले रहे हैं। राज्यसभाके सदस्यके रूपमें आपने अमूल्य एवं चिरस्मरणीय सेवाएं भी की हैं। देश विभाजनके उपरान्त आप जालन्धरसे दैनिक 'हिन्दसमाचार' उर्दु और 'पंजाब केसरी' हिन्दी का सञ्चालन कर रहे हैं। आपके बड़े सुपुत्र श्री रमेशजी बी. ए. जी. के गम्भीर लेखोंपर प्रसन्नता प्रकट करते हुए स्वर्गवासी श्री महाशय कृष्णजी ने एक बार लिखा था, 'अज़ीज़ रमेश ऐसा उत्तम लेख लिखते हैं, मेरा मन चाहता है कि उनके क़लम को चूम लूं।' उत्तम लेखनका इससे बढ़कर और कोई प्रमाण-पत्र नहीं हो सकता। छोटे चि० विजयजी भी

समाचार पत्रोंमें अपने पूज्य पिताजी और आदरणीय ज्येष्ठ भ्राता जीका हाथ बटाते रहते हैं, दोनों नवयुवक आर्य वातावरणमें पलकर परवान चढ़े हैं। उनसे समाज और राष्ट्र को बड़ी-बड़ी आशाएं हो सकती हैं।

(न) श्री अलगूराय शास्त्रीजी--

भूतपूर्व रेलमंत्री केन्द्रीय सरकार, संस्थापक गुरुकुल डरोली, श्री लाला लाजपतराय द्वारा संस्थापित लोक-सेवा-संघके आजन्म सदस्य, मेरठ आश्रमके संचालक आरम्भसे ही आर्य सामाजिक वातावरणमें पले, फूले और फले, अनेक बार ब्रिटिश जेलोंकी यात्रा की। जब आप रेल मंत्री थे तो एक रेल-दुर्घटना होनेपर आपने त्यागपत्र देकर दूसरे मंत्रियोंके लिये उदाहरण उपस्थित किया था।

(प) श्री चौधरी चरणसिंहजी—

आप मेरठ ज़िलेसे स्वतंत्रता आंदोलनमें विशेष भाग लेते रहे। कई वर्ष तक उत्तर प्रदेशके प्रधानमंत्रीका भार सम्भाले रहे। १९६९ के दिसम्बर मासमें महर्षि दयानंदकी 'शास्त्रार्थ शताब्दि' वाराणसीके डी. ए. वी इण्टर कालेजके विशाल प्राङ्गणमें सोत्साह मनाई गई थी। आप सब सरकारी कामोंमेंसे समय निकालकर वहां सम्मिलित हुए थे और अपने घण्टे-भरके व्याख्यानमें अनेक बार अपने आर्य समाजी होनेपर गर्व प्रकट करते हुए महर्षि दयानंदको बार-बार श्रद्धाञ्जलि भेंट करते रहे।

(फ) श्री चन्द्रभानु गुप्ता—

आप भी उत्तरप्रदेश सरकारके प्रधान मंत्री रहे हैं। आप किशोरावस्था-में आर्य कुमारसभा लखीमपुरके मंत्री और तत्पश्चात् लखनऊके गणेशगंज आर्य कुमारसभाके कर्मठ कार्यकर्त्ता रहे हैं। स्वतंत्रता संग्राममें भाग लेनेके अपराधमें आपने अनेक बार जेल यात्रा भी की है। आज भी उत्तर प्रदेशमें सबसे बढ़कर प्रभाव रखने वाले सज्जन हैं। आपके इशारेपर धनपतियोंकी तिजौरियोंके मुंह खुल जाते और लाखोंकी धनराशि आपके समक्ष ढेरकर दी जाती है।

(ब) श्री पं० गोविन्द वल्लभ पन्त—

आप यौवनावस्थामें आर्यसमाज नैनीतालके विशेष कार्यकर्त्ता रहे हैं। आर्य पुत्री पाठशाला नैनीतालके आप ही संरक्षक थे। आप उच्चकोटिके संस्कृतज्ञ और धार्मिक मनोवृत्तिके महानुभाव थे, आप भारतकी केन्द्रीय सरकारके गृहमंत्रीके रूपमें देशकी अमूल्य सेवा करते रहे हैं।

(भ) श्री महावीर त्यागी—

आपका रहन-सहन बहुत सादा था। ग्रीष्मऋतुमें प्रायः घरपर रहते केवल यज्ञोपवीत और धोती ही पहना करते थे। आप बचपनसे ही आर्य समाजी वातावरणमें विचरण करते रहे।

देहलीकी केन्द्रीय आर्य सभाने १६६४ ई० की दीपावलीपर महर्षि निर्वाणोत्सवमें अपने विचार व्यक्त करनेके लिये पुनर्वास मंत्री श्री महावीर त्यागी और उपविदेश मंत्री श्री दिनेशसिंहजीको भी निमन्त्रित किया था। दोनों मंत्री महानुभावोंने महर्षिको श्रद्धाभरी श्रद्धाञ्जलि प्रस्तुत की। श्री त्यागीजी ने कहा कि उन्होंने बचपनसे ही आर्य समाजकी शिक्षासे उत्साह पाया था और उसी से प्रेरित होकर कांग्रेसमें शामिल हुए थे। महर्षिने ही स्वराज्यका बीज बोया था। सत्याग्रहके दिनों सत्याग्रहियोंके निरीक्षणार्थ मौ० हसरत मोहानीको नियुक्त किया गया था। सारी जेलोंका निरीक्षण कर लेनेके बाद उन्होंने जो अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी उसमें आर्य समाजियोंके विषयमें जो कुछ लिखा उसका भाव यह था —'आज महात्मा गांधीके आदेशपर देशकी स्वाधीनताके लिये गोराशाहीकी जेलोंमें बन्द जो लोग कठिन कष्ट भोग रहे हैं, उनमें लगभग ८० प्रतिशत आर्य समाजी विचारधारा के हैं।'

(भा. स्वा. सं. में आर्यसमाज का योगदान पृष्ट, ६१)

(म) श्री लाल बहादुर शास्त्रीजी

आप आरम्भ कालमें आर्यसमाजसे सम्बद्ध रहे और आर्यसमाजकी ओरसे शुद्धि कार्य में रत रहे। आपने श्री ला. लाजपतरायजी की सर्वेंट्स आफ़ पीपल सोसाइटी (लोक सेवा संघ) के आजीवन सदस्यके रूपमें अमूल्य सेवायें कीं और इसी सोपानसे आप आगे बढ़ पाए। आपने भारतके प्रधान मन्त्री आसनको ग्रहण किया। १६६५ ई० में पाकिस्तान हमारे देशपर आक्रमण करनेकी मूर्खता कर बैठा। आपकी देख-रेख, निर्देशन एवं आदेशानुसार भारतीय वीरोंने अमरीका-प्रदत्त पेटन टैंकों और साबर जैट तथा अनेक प्रकारके अन्य वायुयानोंका भुर्ता बना दिया। एकसौ से अधिक टैंक भिक्खीविंड जिला अमृतसरमें महीनों प्रदर्शनीके रूपमें पड़े रहे। समस्त रण-क्षेत्रोंमें विजयलक्ष्मीने भारतका वरण किया; परन्तु कूट-नीतिज्ञ रूसियोंके जालमें फंसकर आप जीती हुई बाजी हार गये और सम्पूर्ण विजित प्रान्त पाकिस्तान-को लौटा देनेकी ग्लानि और अपयशके कारण आप संदिग्ध अवस्थामें परदेशमें ही स्वर्ग सिधार गये।

(य) श्री कुँवर सुखलालजी 'आर्य मुसाफ़िर'

आप अरनियाँ ज़िला बुलन्दशहरके निवासी हैं। आप श्री पं. भोजदत्त जीं द्वारा संस्थापित आर्य मुसाफ़िर विद्यालय आगराके स्नातक हैं। इस आर्य-वीर ने उत्तर भारतमें अपने ओजपूर्ण भाषणों, सुरीले भजनों और उत्तम कविताओं द्वारा जो जागृति पैदा कर दी है, यह आपही का हिस्सा है। पंजाब तथा पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्तमें अंग्रेज़ी सरकारने आपका प्रवेश निषिद्ध कर दिया। परन्तु जनताकी उत्कट इच्छाका ध्यान करते हुए आपने इस निषेध आज्ञाका भंग कर दिया। पंजाबमें प्रविष्ट होनेपर आप पकड़ लिये गये। अंग्रेज मैजिस्ट्रेटकी अदालतमें आपको पेश किया गया। मैजिस्ट्रेटने पूछा— 'तुम कहांके रहने वाले हो? उत्तर में उत्तर प्रदेश का नाम सुनकर मैजिस्ट्रेट बोला —"तुम इतनी दूरसे इस फ्रण्टियरमें प्रचार करने आते हो, तुम्हें अपने आस-पास प्रचारके लिये कोई स्थान नहीं मिला"? यह सुनकर कुवंर साहब ने पूछा—"साहब! आपकी जन्म भूमि कहां है?" जब, उसने इंग्लैंड का नाम लिया तब कुँवर साहबने तपाकसे जवाब दिया—"साहब! आप सात हज़ार मीलसे यहां अधिकार जमाने आ पहुंचे हैं क्या, आपको शासनके लिए अपने पास कोई और देश नहीं मिला था? जब आप इतनी दूरसे यहाँ राज्य करने आ सकते हो तो कुछ सौ मीलकी दूरी से अपने ही देशमें मेरे प्रचार करने में क्या आपत्ति आयेगी?" यह कड़ाकेदार जवाब सुनकर क्रोधमें भरके उस न्यायाधीशने पोलीसको कहा—'यह बहुत बदमाश तथा गुस्ताख़ है, इसको ले जाकर जेलमें डाल दो।' उग्र देश भक्तिकी भावनाओंके कारण आपको अनेकों बार पोलीस द्वारा मार-पीट, लाठी की मार और जेल के गले-सड़े भोजन एवं अनेकों यातनाएं सहन करनी पड़ीं। परिणामतः आपका शरीर शनैः-शनैः दुर्बल होते-होते अब केवल नर-कंकाल मात्र रह गया है; परन्तु वाणीमें वही ओज, आवाजमें वही गर्ज और भावोंमें वही गम्भीरता है, जो आजसे ५०-५५ वर्ष लेखक पहले देखता, सुनता और अनुभव करता रहा है। आपने आयुभर राष्ट्रकी निस्स्वार्थ सेवा की है अर्थात् आप खून देने वाले मजनूं हैं दूध पीने वाले मजनूं नहीं! कुछ वर्ष पूर्व सरकारने पोलिटिकल सहायता देनेका प्रस्ताव किया तो आपने इसे ठुकराते हुए स्पष्ट कह दिया कि 'मैंने अपनी देशसेवा का मूल्य लेनेका संकल्प कभी किया ही नहीं था।'

(र) श्री चन्द्रसिंहजी गढ़वाली—

१६३० ई० में पश्चिमोत्तर, प्रान्तकी राजधानी पेशावरमें स्वतंत्रता की मांग करने वाला एक भारी जलूस निकला। अंग्रेज़ी सरकारने इस अहिंसक

भीड़पर गोली चलानेकी आज्ञा दे दी। सर्व प्रथम श्री चन्द्रसिंहने अपने चार -पांच साथियों समेत पंक्तिसे निकलकर अपने कमांडरका आदेश माननेसे, यह कह कर कि हमें किसी दुश्मन पर गोली चलाने का आदेश दीजिये अपने निर्दोष अहिंसक भाइयोंपर हम गोली नहीं चलायेंगे, इन्कार कर दिया। उसके परिणाम स्वरूप इन्हें कारागारमें डालकर कड़ा दण्ड दिया गया और साथ ही नौकरीसे भी हटा दिया गया। जब यह बरेली जेलमें दण्ड भुगत रहे थे, तब वहाँ भी कैदियोंमें आर्य समाज का प्रचार किया करते थे।

(सिंहावलोकन भाग ६, पृष्ट १७१-१७२ उद्धृत—भा. स्वा. सं. में आर्य समाज का योगदान, पृष्ट ९६)

मोहनाश्रम हरद्वारके सञ्चालक श्री स्वामी सच्चिदानंद जी महाराजने, जो स्वयं गढ़वाली हैं और श्री महात्मा हंसराजजीके आदेशसे यहां आर्य समाजका प्रचार कार्य वर्षों करते रहे हैं, बताया कि श्री चन्द्रसिंहजी लैंसडौन आर्य समाजके सदस्य थे।

आर्य स्वराज्य सभा लाहौर

सन् १९२१ के लगभग पंजाबकी राजधानी लाहौरमें राष्ट्रीय विचार-धाराके कुछ आर्यसमाजी सज्जनोंने 'आर्य स्वराज्य सभा' के नामसे एक संस्थाका संस्थापन किया जिसके प्रमुख थे :—

(१) श्री पं० रामगोपालजी शास्त्री वैद्य—

आप आर्यसमाजके ख्यातनामा विद्वान्, डी. ए. वी. कालेजके प्रसिद्ध रीसर्च स्कालर हैं। ईश्वर कृपासे आप आजभी आर्यसमाजरोड करौलबाग, नई दिल्लीमें रोगी जनताकी चिकित्सा, धर्म पिपासुओंकी ज्ञान पिपासा और विद्या-प्रेमियोंकी हर प्रकारकी जिज्ञासाका निरन्तर समाधान करते रहते हैं। आपने पाश्चात्य-पद्धतिसे अनुसन्धान करनेका दम भरनेवाले तथा-कथित देशी-विदेशी विद्वानोंके समक्ष 'आर्यों और दस्युओंके परस्पर युद्ध' विषयक एक अद्वितीय ग्रन्थका निर्माण करके उन्हें इस विषय पर मौखिक अथवा लिखित विचार-विमर्श करनेकी चुनौती भी दी है। हर्ष का विषय है कि अभीतक किसीने भी उत्तर देने अथवा आपके सामने आनेका साहस नहीं किया। आपने इस वृद्धावस्थामें भी आर्य विद्वानोंकी 'आर्य विद्वद् परिषद्' का संगठन किया है जिसकी गोष्ठियोंमें विवादास्पद विषयोंपर मौखिक व्याख्यान, लिखित पत्र और अनेक सुझाव विचारार्थ उपस्थित होते रहते हैं। आपके दूसरे प्रमुख साथी थे—

(ल) **श्री अजीतसिंहजी 'सत्यार्थी'**—

आप आर्यसमाजके प्रचार-प्रेमी थे। स्थान-स्थान पर उत्सवों-व्याख्यानों और विशेष योजनाओंके अवसरपर पहुंचते और आर्यसिद्धान्तोंकी विशद व्याख्याके साथ महर्षि दयानंद एवं आर्यसमाजके राष्ट्रीय पक्षको जनताके समक्ष अपनी ओजस्विनी भाषामें अत्यन्त रोचक और आकर्षक ढंगसे रखा करते थे।

सन् १९४३ में अखिल भारत हिन्दुमहासभाका रजत-जयन्ति महोत्सव अमृतसरमें मनाया गया। उन दिनों सिंधकी मुस्लिम लीगी सरकारने 'सत्यार्थ प्रकाश' पर प्रतिबन्ध लगानेकी घोषणा की हुई थी। अधिवेशनमें 'सत्यार्थ प्रकाश रक्षा सम्मेलन' का आयोजन किया गया। लाऊडस्पीकर वाले दुकान-दारको प्रबन्धकोंने कामसे हटा दिया था। रात्रि का समय और लग-भग एक लाख का जनसमुदाय। उस समय श्री अजीतसिंहजी 'सत्यार्थी' श्री शिवराम सेवक' सञ्चालक पंजाब महावीर दल तथा इन पंक्तियोंके लेखकने बगैर लाऊडस्पीकरकी सहायताके उक्त सम्मेलनको दो-अढ़ाई घण्टोंके लिए मन्त्र-मुग्ध किये रखा। श्री सत्यार्थी जी की सिंह गर्जना इर्द–गिर्दकी अट्टालिकाओं-के साथ टकराकर अद्भुत गूंज पैदा करती रही।

देश विभाजन के बाद आप जालन्धर शहरमें बस गये और वहीं आप-का देहान्त हो गया। स्वराज्य सभाकी त्रिमूर्तिके तीसरे देवता थे—

(व) **श्री चौधरी वेदव्रतजी**—

आप राष्ट्रीय आन्दोलनोंमें भाग लेनेके कारण प्रायः जेलमें ही रहा करते थे। एक जेल यात्राके दौरान आपकी धर्मपत्नी और एक मात्र कन्याको भयंकर राजयक्ष्मा रोग ने घेर लिया। यद्यपि मित्र कुछ सहायता करते रहे तथापि उचित उपचार न हो सकनेके कारण दोनोंका देहान्त चौधरी साहब-की अनुपस्थितिमें ही हो गया। यह दुःखद समाचार जेलमें सुनकर भी स्थित-प्रज्ञ महात्मा चौधरी वेदव्रत के माथेपर शिकन नहीं आई और 'तेरा भाणा मीठा लागे' कहते हुए और 'हम उसमें ही हैं राज़ी, जिसमें तेरी रज़ा है' का मन्त्र पढ़कर शान्त हो गये।

महर्षि दयानन्दके साथ उन्हें अद्वितीय प्रेम और उनके सिद्धान्तों में असीम श्रद्धा थी। इसी लिये अपने आपको 'दयानन्दी' कहकर आप विशेष गर्व तथा प्रसन्नता अनुभव किया करते थे। चौधरी वेदव्रतजी जैसा निर्भीक योद्धा, ओजस्वी वक्ता, गम्भीर विचारक, निःस्वार्थ सेवक, निष्ठावान् प्रचारक भी समाजकी अवहेलना और लापरवाईके कारण रोग-ग्रस्त होकर स्वर्ग सिधार गया।

स्वदेशके लिये स्वराज्य प्राप्तिके यत्नके साथ, दलितोद्धार, पतित-परावर्त्तन, अपहृत स्त्री-बालकोंकी पुनः प्राप्ति और आर्यसमाज एवं महर्षि दयानन्दके राष्ट्रीय पक्षको उजागर करना आर्य स्वराज्य सभाके मुख्य उद्देश्य थे, जिनके लिये वे अहर्निश प्रयत्नशील थी। इसका पहला सफल सम्मेलन प्रसिद्ध राष्ट्रीय आर्य नेता श्री कुंवर चांदकरण शारदा की अध्यक्षतामें ब्रैडला हाल लाहौरमें सन् १९१६ में सम्पन्न हुआ था। अमृतसर के कौमीलीडर मधुर वक्ता श्री डाक्टर सत्यपालजी स्वागताध्यक्ष थे।

पंजाब केसरी श्री ला० लाजपतरायजीके स्वर्गारोहणके पश्चात् आर्य स्वराज्य सभाने आपकी मूर्ति स्थापित करनेका संकल्प किया और धन-संग्रह के लिये जुट गई। विशेषतः श्री अजीतसिंह सत्यार्थीजीने तो लम्बी कफ़नी पहन कर फकीरोंका वेष बनाकर 'फक़ीर क़ौमके आते हैं झोलियाँ भर दो' की सदाॅ लगाते–लगाते रात-दिन एक कर दिया और जिस कांग्रेस द्वारा आयोजित साइमन कमीशन विरोधी प्रदर्शनका नेतृत्व करते श्री पंजाब केसरी लाला लाजपतराय जी मर्माहत होनेके कारण स्वर्गारोहण कर गये, उसे अपने कर्त्तव्यकी अवहेलना करते देख आर्य स्वराज्य सभाके इन वीरोंने लाहौरकी माल रोड पर श्री लालाजी की मूर्ति स्थापित कर दी, जो देश-विभाजनके बाद शिमलामें मालरोडपर 'रिज' नामक स्थानपर आजभी खड़ी आते-जाते हजारों लोगोंको अपनी उंगलीके इशारेसे सन्मार्ग प्रदर्शन कर रही है।

निष्कर्ष

(क) **महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी**—शिष्य थे गोखलेजीके, साथ ही अनुयायी थे दादाभाई नौरोजीके, गोखलेजी प्रभावितथे जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडेजी से और रानाडे महोदय शिष्य थे श्री स्वामी दयानन्दजी के, इसी प्रकार दादाभाई नोरौजी प्रेरणा लेते थे सत्यार्थप्रकाशसे, इसके अतिरिक्त महात्माजीके शब्दोंमें वह स्वामीजी द्वारा निर्धारित कार्यक्रम को ही पूरा कर रहे थे अतः महात्माजीके प्रेरणा-स्रोत भी थे—महर्षि दयानन्द

ख से व तक स्वामी श्रद्धानंद, डा० सत्यपाल, म० रत्न चन्द, चौ० बुग्गामल, स्वामी अनुभवानन्द, पं० दीनानाथ, पं० कोटूमल बा. नारायणदास खन्ना, डा० गुरबक्षराय और ला. दुनीचन्द ऐडवोकेट अम्बालवी—सब—तथा

श्री भीमसेन सच्चर, श्री डा० गोपीचन्द भार्गव

श्री महात्मा देवीचन्द एम. ए., श्री प्रबोधचन्द्र एम. ए.

श्री महाशय कृष्णजी बी. ए., श्री वीरेन्द्रजी एम. ए.
श्री यशजी बी. ए., श्री ला० जगत् नारायणजी
श्री अलगुराय शास्त्री, श्री चौ० चरण सिंहजी
श्री चन्द्रभानु गुप्ता, श्री पं० गोविन्द वल्लभ पन्त,
श्री महावीर त्यागी, श्री लाल बहादुर शास्त्री
श्री कुँवर सुखलालजी 'आर्य मुसाफिर'
श्री चन्द्रसिंहजी गढ़वाली, श्री पं० रामगोपाल शास्त्री वैद्य
श्री अजीतसिंह 'सत्यार्थी' और चौधरी वेदव्रतजी—सब

आर्यसमाजके सर्व सम्मानित नेता, वरिष्ठ अधिकारी एवं कर्मठ कार्यकर्त्ता थे और हैं। अतः इन सबके भी प्रेरणा स्रोत थे—महर्षि दयानन्द

(१४) ग

स्वदेश, स्वधर्म, स्वदेशी, स्वावलम्बन एवं स्वतन्त्रताके पंच-सूत्री प्रोग्राम को समक्ष रखनेवाले सर्वस्व बलिदानी वीर क्रान्तिकारी

इस चतुर्थ श्रेणीके सर्वस्व बलिदानी वीरोंमें क्रान्तिकारियोंके आदि गुरु (१) श्री पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा, (२) स्वातन्त्र्य वीर विनायक दामोदर सावरकर, (३) श्री मदनलाल ढींगरा ऐन्जीनियर, (४) श्रीनेताजी सुभाषचन्द्र बोस, (५) श्री बाबू रास बिहारी बोस, (६) श्री पं रामप्रसादजी 'बिस्मिल' (७) श्री ठाकुर रोशनसिंह, (८) श्री पं गेंदालाल दीक्षित, (९) श्रीअशफ़ाकुल्ला खान, (१०) श्री पं चन्द्रशेखर आज़ाद, (११) श्री भाई परमानन्द एम० ए० (१२) श्री मास्टर अमीरचन्द, (१३) श्री मास्टर अवध बिहारी (१४) श्री भाई बालमुकन्द (१५) श्रीमती राम रक्खी देवी, (१६) श्री पं सोहनलाल पाठक (१७) श्री बलराज भल्ला, (१८) श्री हरिकृष्ण, (१९) श्री रणवीर बी० ए०, (२०) श्री खुशीराम, (२१) श्री पं हरिश्चन्द्र, (२२) श्री सरदार भक्तसिंह, (२३) श्री सुखदेव आदि कुछ देश-भक्तोंके नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने देश-हित में असह्य यातनाएं सहनकीं, अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया; परन्तु अपने निर्धारित पथसे विचलित नहीं हुए ।

(१) श्री पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा—

आप महर्षि दयानन्दके पट्ट-शिष्य थे । आप महाराणा उदयपुरके

प्रथम आमात्य थे। संस्कृतके धुरन्धर विद्वान् होनेके कारण महर्षि दयानन्दने आपको संस्कृत और विशेषत: वेदके अध्यापनके लिये आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी (इग्लैंड) में भेजा था। लण्डनमें रहते हुए आपने 'इण्डिया हाऊस' की स्थापना की। उच्च शिक्षा ग्रहणार्थ जो हिन्दुस्थानी विद्यार्थी इग्लैंडमें जाते थे, उनके निवासका प्रबन्ध वहां किया जाता था। आप महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा संस्थापित परोपकारिणी सभाके माननीय सदस्य थे। आप विदेशसे अंग्रेज सरकारके विरुद्ध प्रमुख आर्य्योंको राजनीतिक साहित्य प्रचुर मात्रामें भेजते थे। आप मुक्तकण्ठसे कहा करते थे कि मैंने राष्ट्र, जाति तथा समाजकी जो भी सेवाकी है, उसका श्रेय महर्षि दयानन्द को प्राप्त है। मैंने जो कुछ प्राप्त किया है, उसमें सबसे बड़ा हाथ उस सर्वहितैषी, वेदज्ञ, तेजस्वी युगद्रष्टाका है। मुझे उस स्वतन्त्र विचारक का शिष्य होनेमें गर्व है।"

Mazzini of India :—

"......Prague was aware of the existance of the Journal "Indian Sociologist." later banned, whose publication is bound up with the name of an outstanding figure in the Indian National resisatnce, Shyamji Krishna Verma, described by Maxim Gorky as the "Mazzini of India".[1]

अर्थात्—"प्रेग (चैकोस्लोवाकिया की राजधानी) 'इण्डियन सोश्यालोजिस्ट' नामी पत्रिकाके अस्तित्व के साथ भली-भांति परिचित था। इसका प्रकाशन बादमें बन्द कर दिया गया था। इसके प्रकाशनके साथ भारतीय प्रतिरोध आन्दोलनके सुविख्यात सेनानी श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा का शुभनाम सम्बद्ध है जिसे श्री मैक्सिम गोरकीने "भारतीय मैज्जनी" के नामसे स्मरण किया है।"

अपनी आलौकिक प्रतिभा, अद्वितीय देश-प्रेम तथा सब प्रकारकी योग्यताओंके कारण वीर सावरकर पण्डितजी के विश्वास-पात्र बन गये, तब इण्डिया हाऊस का सम्पूर्ण प्रबन्ध उनके (सावरकरजीके) सुपुर्द करके पण्डितजी स्वयं फ्रांस चले गये और आयु-भर विदेशोंमें बैठकर हिन्दुस्थानके स्वराज्यकी लड़ाई लड़ते रहे।

(२) स्वातन्त्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर—

आप महाराष्ट्र प्रान्तान्तर्गत नासिक जिलेके भगौड़ ग्राम निवासी थे।

आपका जन्म चित्त-पावन ब्राह्मण परिवारमें २८ मई, १८८३ ई० को हुआ था। बाल्यावस्थामें ही इनके मस्तिष्कमें क्रान्तिकी भावनाएं बद्ध-मूल हो गई थीं। अपने सम-वयस्क बालकोंको इकट्ठा करके सेनाओंको संगठित करना और परस्पर युद्धाभियान चलाते रहना इनके स्वभावमें प्रविष्ट हो चुका था। सोलह वर्ष की किशोरावस्थामें ही अपनी कुल-देवी—भगवती दुर्गाकी मूर्तिके समक्ष उपस्थित होकर आपने वर मांगा था कि—"मां! मुझे शक्ति प्रदान करो कि मैं स्वदेशके स्वातन्त्र्यके लिये सशस्त्र-क्रान्तिका ध्वज थामकर शत्रुओंका नाश करता हुआ अन्तिम श्वास तक संग्राम-रत रहूं।"

हाई स्कूलकी शिक्षा समाप्त करके आप जनवरी १९०२ में पूनाके फर्ग्यूसन कालिजमें प्रविष्ट हुए। वहां उन्हें लोकमान्य श्री बाल गंगाधर तिलकजी जैसे क्रान्तिकारी गुरुके चरणोंमें बैठकर शिक्षा प्राप्त करनेका अवसर मिला। देश-प्रेमकी तीव्र भावनाओंके कारण आपको कालिजसे निकाल दिया गया। तब तिलक महाराजकी सत्प्रेरणासे आपने इंग्लैंडमें जाकर बैरिस्टरी पास करनेका संकल्प किया। छात्रवृत्ति प्राप्त करनेके लिये आपने श्री पं० श्यामजी कृष्ण वर्माको प्रार्थना पत्रमें लिखा—

> "Independence and liberty, I look upon as the very pulse and breath of Nation. From my boyhood, dear sir, upto this moment of my youth, the loss of independence of my country and the possibility of regaining it, form the only theme which I dreamt at night and on which I mused by day.[2]"

अर्थात्—"स्वतन्त्रता तथा स्वाधीनताको मैं राष्ट्रका नाड़ीका स्पन्दन एवं श्वास-प्रश्वास समझता हूं। अपने बालकपनसे आज यौवनावस्था तक, प्रियवर! स्वदेशके स्वातन्त्र्यका ह्रास तथा उसकी पुनः प्राप्ति ही ऐसा विषय है जिसके स्वप्न मुझे रातको आते और इसी पर मैं दिन-भर सोच विचार करता रहता हूं।"

स्वातन्त्र्य वीर सावरकरने भारतमें होते ही 'अभिनव भारत' नामकी संस्था स्थापित की थी। इंग्लैंडमें जाकर भी यह चलती रही और इसमें निम्न-लिखित महानुभावोंको दीक्षित किया गया था—

सर्वश्री (१) वारीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, (२) पी. वी. एम. अय्यर, (३) सरदारसिंहजी राणा, (४) ज्ञानचन्द जी वर्मा, (५) मैडम कामा, (६) मदन लाल ढींगरा, (७) डा० राजन, (८) शुक्लः, (९) सुखसागर, (१०) सिकन्दर हयात् खां (सर), (११) राजकुमार नाभा आदि।

आपकी इस 'अभिनव भारत' संस्थामें जहां देशभक्ति, राष्ट्र-प्रेम एवं बलिदानकी भावनाओंको प्रोत्हासन प्राप्त होता था, वहां चरित्र निर्माणका भी पाठ पढ़ाया जाता था। इसमें सावरकरजीको आशातीत सफलता हो रही थी। इंग्लैंडसे आपने इस सफलताके सम्बन्धमें अपने भाई साहबको १९०८ में निम्न पत्र लिखा था—

"...Those who were drinking liquor are giving it up, those who indulged in carnal pleasures are now passing wakeful nights in temple of Ram, those who had come here to appear for the Civil Service Examination have besmeared their bodies with ashes and become sanyasis. Such is the transformation in London. Now the days of return to my country have arrived.... The duty during my stay in London has been well performed".[३]

अर्थात्"......जो मद्य-पान करते थे, वे इसका परित्याग कर रहे हैं, विषय-भोगोंमें रत रहने वाले भगवान् रामके मन्दिरमें रातों जागरण कर रहे हैं, जो सज्जन यहां सिविल सर्विसकी परीक्षा उत्तीर्ण करनेके उद्देश्यसे आये थे, वे शरीरोंपर भस्म रमाकर संन्यासी बन गये हैं। लण्डनमें इतना भारी परिवर्तन (क्रान्ति) हो गया है! अब स्वदेश लौटनेके दिन आ गये हैं...

"लण्डन-वासके समय जो कर्त्तव्य था, वह अच्छी तरह से सम्पन्न हो गया है......।"

वीरसावरकरजी के जीवनकी कुछ एक घटनाओंकी संक्षिप्त तालिका—

आप—१. पहले छात्र थे, जिन्हें स्वदेश भक्तिके अपराधमें कॉलिजसे निष्कासित किया गया था।

२. पहले युवक नेता थे, जिन्होंने १८९६ में ही (बंग-भंग में विदेशी-वस्तु बहिष्कार से १० वर्ष और गांधीजीके स्वदेशी आन्दोलनसे प्रायः २५ वर्ष पूर्व) पूनामें विदेशी-वस्त्रोंकी भारी होली जलाकर अपने प्राध्यापक भगवान् तिलकको भी चकित कर दिया था।

३. पहले विद्यार्थी थे, जिन्हें बैरिस्टरी पास कर लेनेपर भी प्रमाण-पत्र नहीं दिया गया; क्योंकि आपने ब्रिटिश सरकारका वफ़ादार रहनेकी शपथ ग्रहण करनेसे साफ इन्कार कर दिया था।

४. पहले इतिहासज्ञ थे, जिन्होंने स्वयं अंग्रेजके घरमें बैठकर १८५७

के तथा-कथित 'ग़दर' को हिन्दुस्थानका प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम सिद्ध करके १९०७ में उसकी अर्द्ध-शताब्दि सार्वजनक रूपमें (लण्डनमें ही) मनाई थी।

५. पहले लेखक थे, जिनकी उक्त पुस्तक 'हिन्दुस्थानका प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम' प्रकाशित होनेसे पूर्व ज़ब्त कर ली गई थी। इसकी एक प्रति दक्षिण अमरीकाके ब्राजील नामी देशमें दो-सौ रूपयेमें बिकी थी। जिसे शहीद सरदार भक्तसिंहने और बादमें नेताजी सुभाषचन्द्र बोसने भी प्रकाशित किया था और जिसे 'क्रान्तिकारियोंकी धर्म-पुस्तक' (बाईबल) के नामसे पुकारा जाता था।

६. पहले महावीर थे जिन्होंने बन्दूकका पहरा होते हुए भी, जबकि आपको लण्डनसे बन्दी बनाकर 'मोरिया' नामी जल-पोतमें मुकद्दमा चलानेके उद्देश्यसे हिन्दुस्थान लाया जा रहा था, ८ जुलाई, १९१० को समुद्रकी उत्ताल तरंगोंमें कूद पड़नेका साहस किया था। जलपोतके अंग्रेज पहरेदारों द्वारा सनसनाती हुई गोली-वर्षा होनेपर भी तैरकर फ्रांसके सागरतट (मार्सेल्ज़) पर पहुंच गये थे, जहांसे अंग्रेजी और फ्रांसीसी-पोलीसकी मिली-भगतसे दुबारा गरिफ़तार करके २२ जुलाई, १९१० को बम्बई लाये गये थे।

७. पहले अभियुक्त थे जिनका मुकद्दमा हेगके अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में लड़ा गया था।

८. पहले देश-भक्त थे जिन्होंने अपने विरुद्ध मुकद्दमोंकी कार्यवाहीका यह कहकर कि 'मुझे ब्रिटिश सरकारसे न्याय की कोई आशा नहीं' बायकाट कर दिया था।

९. पहले 'अपराधी' थे जिन्हें अंग्रेजी सरकारने दो जन्म-कैदों (पचास वर्ष) का कड़ा दण्ड देकर अण्डेमन (कालेपानी) में भेज दिया था।

नोट—पहला दण्ड २३-१०-१९१० को और दूसरा ३०-११-१९११ को सुनाया गया था।

१०. पहले भविष्यवक्ता थे, जिन्होंने अण्डेमान जेलके सुपरिण्टेंडैट मिस्टर बारीके, इनके गलेमें पचास वर्ष कैदकी तख्ती देखकर व्यङ्गसे कहने पर, कि 'हमारी दयालु सरकार १९६० में तुम्हें मुक्तकर देगी', छूटते ही उसके मुंहपर कह दिया था कि "हां, तब तक तुम्हारी सरकार रहेगी तभी न ?"

११. पहले अद्भुत कवि थे, जिन्होंने, कागज, कलम-दवात आदिकी सुविधा उपलब्ध न होनेपर भी, कील, कंकर अथवा ठीकरीकी नोकसे, अपनी

जेलकी कोठरीकी दीवारोंपर लिखकर और तदनंतर कण्ठस्थ करके दस हज़ार पैरे (पद्यांश) वृहद् वाङ्.मयके रूपमें प्रस्तुत करके संसार-भरको अचम्भेमें डाल दिया था।

१२. पहले क्रान्तिकारी महामानव थे, जिन्होंने १४ वर्ष अण्डेमनकी जेलमें नारियल छीला, मूंज कूटकर उसकी रस्सियाँ बटीं, कोल्हूमें जुतकर तेल पेला और चक्कीमें चूना पीसा, अत्याचारी जमादारोंके कोड़ोंकी मार खाई और वहांसे आकर १३ वर्ष तक रत्नगिरीमें नज़र बन्दीके दिन काटे, जहां हरिजनों के उद्धारके विचारसे 'पतित-पावन-मन्दिर' बनवाया और अनेकों सहभोजोंकी योजनाओंको कार्यान्वित किया, जिनमें ब्राह्मणसे अन्त्यजतक एक पंक्तिमें भोजन करते थे।

१३. पहले बलिदानी परिवारके मान्य सदस्य थे जिसके तीनों पुत्र देश-सेवाकी बलिवेदि पर समर्पित हुए—

(क) सबसे बड़े बाबाराओ गणेश दामोदर सावरकर, जिन्हें देश-भक्तिके अपराधमें आजन्म कालेपानीका दण्ड मिला।

(ख) मंझले तातिया विनायक दामोदर सावरकर जिन्हें दो जन्म-कैदों (पचास साल) का कालापानीका दण्ड दिया गया था।

(ग) छोटे डा० नारायण दामोदर सावरकर, जिन्हें कई बगावतके मुकद्दमोंमें जेल काटना पड़ी और जिन्हें पं० नत्थूराम गोडसे द्वारा गांधीजीके वधसे उत्तेजित अहिंसाका डिंडिमघोष करनेवाले हुल्लड़बाज़ कांग्रेसियोंकी भारी भीड़ने केवल ब्राह्मण होनेके अपराधमें मार-मारकर शहीद कर दिया था।

नोट—श्री जमनादास मेहता, मन्त्री बम्बई प्रान्तीय सरकारके प्रयत्नसे श्री स्वातन्त्र्य वीर सावरकर १० जुलाई, १९३७ को कारा मुक्त हुए थे।

श्री सावरकरजीके विचार—

१. स्वातन्त्र्यवीर सावरकर महोदयने, धार्मिक क्रान्तिके सूत्रधार महर्षि दयानन्द द्वारा गुजराती होते हुए भी हिन्दीमें सत्यार्थप्रकाश लिखनेकी स्वर्णिम पद्धतिकोभी सराहा था।"[4]

२. "अछूतोद्धारका एक मार्ग महर्षि दयानन्दका है। यह जन्मसे जाति-पाति नहीं मानते थे। आर्यसमाजने अनेकों तथा-कथित अस्पृश्योंको ही संस्कृत एवं वैदिक-ज्ञानसे धनवान् बनाकर पंडित बना दिया है। यह अपने-आपमें बड़ी महत्वपूर्ण बात है।"[5]

(३) श्रीसावरकरजी विदेशियों की दृष्टिमें—

"...............The Czech Press took notice of another revolutionary. likewise active in his European exile, Vinayak Damodar Savarkar, and of his exciting escape and arrest while being deported from Britain to India."[7]

अर्थात्—"चैक प्रेसने एक अन्य क्रान्तिकारी श्री विनायक दामोदर सावरकरके कार्य कलापोंका भी उल्लेख किया है जो कि अपने योरुप प्रवासके दिनों श्री श्यामजी कृष्णवर्माके समान निरन्तर कार्य-रत रहते थे। साथही इस बातको भी अंकित किया गया है कि जब उन्हें (सावरकर को) इंग्लैंडसे भारतकी ओर निर्वासित किया जारहा था, किस प्रकार यह चकित कर देने वाले ढंग से भाग खड़ा हुआ, और किस प्रकार पुनः गरिफ़तार कर लिया गया।"

४. स्वातन्त्र्य वीर विनायक दामोदर सावरकरने दीवानहाल देहलीके आर्यसमाजमन्दिरमें उपस्थित एक विशाल जन-समूहके समक्ष अपने व्याख्यानमें गर्वपूर्ण ओजस्विनी वाणीमें कहा था—**"मैं पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्माको गुरु और उनके आचार्य महर्षि स्वामी दयानन्दको अपना दादा-गुरु मानता हूं।"**

(५) स्वातन्त्र्य वीर सावरकर और सत्यार्थप्रकाश—

आपने अपनी पुस्तक 'आजन्म कारावास' में लिखा—

"......सत्यार्थप्रकाशकी ओर मैंने विशेष ध्यान दिलवाया। राजबन्दी भी उसे बार-बार पढ़ते रहे। स्वामी दयानन्दजीका वह ग्रन्थ कुछ अपवाद छोड़कर हिन्दु संस्कृतिके उच्चतत्व मनपर अंकित करता है, हिन्दू धर्मका राष्ट्रीय स्वरूप व्यक्त करता है। एक उत्साही छाती (थाती) का प्रचारक है।[6]

(आजन्म कारावास, पृष्ठ ५९९)

सावरकरजीने ८३ वर्ष की आयुमें यह अनुभव करके कि हिन्दुस्थानके पूर्ण स्वातन्त्र्यका जो प्रण मैंने किया था, वह पूर्ण हो गया है, अब इस रोग-ग्रस्त, जरा-जरित, जीर्ण-शीर्ण शरीरको धारण किये रखना नितान्त निष्प्रयोजन है, आत्म-समर्पणकी उदात्त भावनाओंसे प्रेरित होकर अन्न, जल, दूध, चाय, औषधि आदिका पूर्ण परित्याग करके, अपने निवास-स्थान 'सावरकर-सदन' शिवाजी पार्क, दादर बम्बई में २६ फरवरी, १९६६ को परलोक गमन किया।

(३) श्री मदनलाल ढींगरा, एञ्जीनियर—

आप अमृतसर (पंजाब) निवासी डा० साहिब दित्तामल ढींगरा जो कि नगरके एक अंग्रेज़ परस्त सम्पन्न सज्जन थे, के सुपुत्र थे। आपके दो भाई और थे। एक श्री चमनलाल ढींगरा जो कई वर्ष रियासत पटियालाके गृह-मन्त्री रहे और दूसरे श्री डा० बिहारीलाल ढींगरा, जो रियासत जींदमें प्रधान मन्त्री पदपर नियुक्त रहे। श्री मदनलाल ढींगरा ऐञ्जीनीयरिंगकी उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके लिये इंग्लैंड गये थे। वहां महर्षि दयानन्दके पट्ट-शिष्य श्री पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा स्थापित इण्डिया हाऊसमें रहने लगे। यहां आपको क्रान्तिकारी सम्राट् स्वातन्त्र्यवीर सावरकर महोदयकी प्रेरणासे कड़े परीक्षणके बाद 'अभिनवभारत' नामकी क्रान्तिकारी संस्थामें प्रवेश मिल गया। हिन्दुस्थानी देशभक्तवीरोंके शत्रु सर कर्जन वाईलीको, इम्पीरियल इन्स्टीच्यूट लण्डनमें आयोजित एक सार्वजनक सभामें १ जुलाई, १९०९ के दिन पिस्तौल द्वारा यमपुर भेजनेके अपराधमें आप गरिफ़तार कर लिये गये। सर कर्जन वाईलीके वधका समाचार सुनकर श्री मदनलाल ढींगराके सरकारपरस्त पिताने तार द्वारा घोषणा की कि मैं मदनलालसे सम्बन्ध विच्छेद करता हूं 'I disown Madanlal'.

तत्पश्चात् श्री मदनलाल ढींगराकी भर्त्सना करनेके लिये लण्डन के कैक्सटन हालमें सर आग़ाख़ाँकी अध्यक्षतामें सार्वजनक सभाका आयोजन किया गया। भाषण हुए, निन्दाका प्रस्तावभी पेश हुआ, परन्तु जब सभापतिने घोषणा करना चाही कि यह प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे स्वीकार हुआ तो वीर सावरकरजीके विरोधपर सभामें गड़बड़ हो गई और मीटिंग टूट गई, परिणामतः प्रस्ताव धरा-धराया रह गया। १० अगस्त, १९०८ को फांसीसे पूर्व न्यायालयमें आपने जो ब्यान दिया, वह स्वर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य है। पाठकोंकी जानकारीके लिये उसके उपलब्ध कुछ अंश नीचे दिये जाते हैं। यद्यपि सरकारने इसे छापनेका निषेध कर दिया था, तथापि वीर सावरकरका चमत्कार समझिये कि १६ अगस्त, १९०९ के डेली न्यूज़में यह छप गया।

"............I admit, the other day I attempted to shed English blood as an humble revenge forthinhuman hangings and deportations of patriotic Indian youths...... I believe that a nation held in bondage with the help of foreign bayonets is in a perpetual state of war......

"Since open battle is rendered impossible to a disarmed

race, I attacked by surprise. Since guns were denied to me I drew out my pistol and fired......"

"As a Hindu I feel that a wrong done to my country is an insult to God......

"The war of Independence will continue between India and England, so long as the English and Hindu races last (if this present unnatural relation does not cease)......

"Just as Germans have no right to occupy this country (England); so the English people have no right to occupy India; and it is perfectly justifiable on our part to kill the Englishman who is polluting our sacred land. I am surprised at the terrible hypocrisy, the farce and the mockery of the English people......

"My wish is that I should be born again of the same mother and that I should die the same death for her again. "Bande Mataram."

अर्थात्—"मैं स्वीकार करता हूं कि अगले दिन मैंने हिन्दुस्थानी युवकों की अमानुषिक फांसियों एवं देश-निष्कासनोंके अकिञ्चन प्रतिकार स्वरूप एक अंग्रेजका खून बहानेका प्रयास किया······

"मेरी दृढ़ धारणा है कि एक राष्ट्र, जिसे विदेशी संगीनोंके माध्यमसे बांधकर रक्खा गया हो, स्थायी रूपसे युद्ध क्षेत्रमें ही होता है। क्योंकि एक निःशस्त्र राष्ट्रके लिये सीधी टक्कर असम्भव बना दी जाती है, अतः मैंने अचानक आक्रमण कर दिया; और क्योंकि मुझे बन्दूकें देनेसे नकार कर दिया गया था अतः मैंने अपना पिस्तौल निकाला और गोली दाग़ दी······

"एक हिन्दू होनेके नाते मैं अनुभव करता हूं कि मेरे देशके साथ दुर्व्यवहार स्वयं परमात्माका अपमान है।

"हिन्दुस्थान तथा इङ्गलैंडके मध्यमें स्वातन्त्र्य संग्राम तबतक निरन्तर चालू रहेगा जबतक कि अंग्रेज़ और हिन्दु राष्ट्र जीवित हैं (यदि यह वर्तमान् का अप्राकृतिक सम्बन्ध-विच्छेद न हो गया तो)···जैसे कि जर्मन राष्ट्रका कोई अधिकार नहीं है कि इस देश (इंग्लैंड) पर अधिकार जमा ले, उसी प्रकार अंग्रेज़ोंका भी यह अधिकार नहीं है कि वे हिन्दुस्थानपर स्वत्व स्थापित किये रक्खें और हमारे लिये नितान्त उचित है कि हमारे देशको अपवित्र करनेवाले

अंग्रेज़की हत्या कर डालें। मैं तो अंग्रेज़ोंके छद्म-वेष धारण, धोखे-धड़ी और मज़ाकपर चकित हूं।......

"मेरी अभिलाषा है कि मैं पुनः इसी (भारत) मातासे जन्म धारण करूँ और फिर इसीकी सेवामें मृत्युका वरण करूँ। बन्दे मातरम।"

फांसीपर झूलनेसे पूर्व जेल अधिकारियों ने "आपकी अन्तिम इच्छा क्या है" पूछा तो आपने कहा—"**बन्दे मातरम**" और फांसीके रस्सेको चूमकर प्रसन्नतापूर्वक अपने गलेमें डाला और चन्द क्षणोंमें ही स्वर्गारोहण कर गये।

(४) श्री नेताजी सुभाष चन्द्र बोस—

द्वितीय विश्व-युद्धके दिनों, इण्डियन नेशनल कांग्रेसके प्रधानकी हैसियतसे आप मुस्लिम-लीगके नेता मिस्टर मुहम्मद अली जिन्नाहके साथ उनके निवास-स्थान मालाबार हिल, बम्बईमें हिन्दु-मुस्लिम समस्याका निपटारा करनेके उद्देश्यसे गये। मिस्टर जिन्नाहने यह कहकर कि "आप कांग्रेसके नेता हैं, हिन्दुओंके प्रतिनिधि नहीं हैं, अतः आपके साथ इस विषयपर बात करनेको मैं तय्यार नहीं हूं हां सावरकर चाहें तो बात हो सकती है," उन्हें खाली-हाथ लौटा दिया।

वहांसे श्री सुभाषचन्द्र बोस सीधे दादरमें स्थित शिवाजी पार्कके निकट सावरकर सदनमें पहुंचे। सावरकरजीके साथ साधारण औपचारिक शिष्टाचार और कुशल प्रश्नके अनन्तर आपने अपने बम्बई पधारने और उद्देश्यमें विफल होनेकी सब बात कह सुनाई और सावरकरजीके पूछनेपर अपना भावी कार्यक्रम कलकत्तेके हॉलवैल मैमोरियलको बार-बार तोड़ना और पुनपुर्नः जेल जाना बताया। स्वातन्त्र्यवीर सावरकरने उन्हें समझायाकि "इस बिल्ली-चूहेके खेलसे देशका कोई भला होने वाला नहीं है। आपकी प्रतिभा, आपकी देश-भक्तिकी भावना एवं संगठन-शक्तिका तभी देशको लाभ हो सकता है, यदि आप किसी प्रकार जर्मनी जाकर हरहिटलरसे भेंट करें, वहांसे जापान पहुंचें। वहाँकी हिन्दूमहासभाके प्रधान महान क्रान्तिकारी बाबू रासबिहारी बोसने 'इण्डियन नेशनल आर्मी'का संगठन कर रक्खा है। उन्हें मिलकर उक्त सेनाका नेतृत्व सम्भालिये, और ब्रह्माके मार्गसे अंग्रेज़ द्वारा पद-दलित हिन्दुस्थानपर आक्रमणकर दीजिये और इस प्रकार इसे दासताकी सांकुलोंसे विमुक्त कराइये।"

उस समय काँग्रेसी-भूत आपके सिरपर सवार था, इसलिये सावरकरजीका सत्परामर्श आपकी समझमें नहीं आया। अपने प्रोग्रामके अनुसार सुभाष

बाबू कलकत्तेमें गये, उक्त हॉलवैल मैमोरियलको तोड़नेका प्रयास किया, पकड़े गये और जेलमें ठोंस दिये गये। वहाँ एकान्तमें उन्हें सावरकरजीकी बातके मूल्यांकन करनेका अवसर प्राप्त हुआ। आपने रिहाई हासिल कर ली और बाहर आकर गुप्त रूपसे काबुलके मार्गसे जर्मनी पहुंचे। वहां कार्यक्रमानुसार हिटलरसे भेंट की और उसकी सहायतासे एक जर्मन पन-डुब्बीमें बैठ जापान जा पहुंचे। वहां श्री रासबिहारी बोस प्रधान जापान हिन्दुमहासभा द्वारा निर्मित इण्डियन नेशनल आर्मी (I.N.A.) की कमान संभाली और वीर सावरकरजी-के सुझावानुसार इम्फल आदि स्थानोंपर अंग्रेज़की फ़ौजोंके साथ घमासानकी लड़ाइयां लड़ीं। यही आन्दोलन अन्य कई घटनाओंके साथ मिलकर अन्ततः अंग्रेज़को भारत छोड़ जानेपर विवश करनेका मुख्य कारण बना।

नेताजीने २५ जून, १९४४ को आकाशवाणी सिंगापुरसे निम्न भाषण प्रसारित किया था।

"When due to misguided political whims and lack of vision almost all the leaders of Congress party have been decrying all the soldiers in Indian army as mercenaries, it is heartening to know that Veer Savarkar is fearlessly exhorting the youths of India to enlist themselves in the Armed Forces. These enlisted youths themselves provide us with trained men and soldiers of our Indian National Army."

अर्थात्—"जिन दिनों पथ-च्युत राजनैतिक भ्रान्त धारणाओं और दूर-दर्शिताके अभावके कारण कांग्रेसके समस्त नेता भारतीय सेनाके सम्पूर्ण सेनानियोंको भाड़ेके टट्टू कहकर अपमानित कर रहे हैं, यह जानना आह्लादका विषय है कि वीर सावरकर निर्भीक होकर हिन्दुस्थानी युवकोंको सशस्त्र सेनाओंमें प्रविष्ट होनेपर उत्साहित करते रहते हैं। यही स्वयं भर्ती हुए युवा सेनानी ही हमारी इण्डियन नेशनल आर्मीके लिये रंगरूट और सिपाही बनते हैं।" (क्रान्तिका नाद, पृष्ठ ९०)

(५) श्री बाबू रासबिहारी बोस—

आप देहरादून (उत्तर-प्रदेश) के बन विभागके "फॉरैस्ट रीसर्च इन्स्टीच्यूट" में सैक्शन सुपरिण्टैंडेंटके पदपर नियुक्त थे। आप परले दर्जेके क्रान्तिकारी देशभक्त थे। १९११ ईस्वीमें इंग्लैंडके किंग जार्ज पञ्चम द्वारा हिन्दुस्थानकी राजधानी कलकत्तेसे देहली लानेकी घोषणा हुई, इस उपलक्ष्यमें २३ दिसम्बर, १९१२ के दिन लार्ड हॉर्डिंग वायसराय हिन्दका भव्य जलूस

देहलीके बाज़ारोंमें निकाला गया। पोलीस और फौजका कड़ा प्रबन्ध था। जब वायसरायका सुसज्जित हाथी चांदनी चौकमें पहुंचा तो बाबू रासबिहारी बोसने उसपर बम्ब मारा। और स्वयं अदृश्य हो गये। सरकार द्वारा कड़ी निगरानी और ढूंढ-भाल होनेपर भी आप सरकारके हाथ नहीं आये।

तदनन्तर आपने देश-भरमें घूम-घूमकर क्रान्तिकारियोंका बलशाली संगठन स्थापित कर लिया। आपने ४ अगस्त, १९१४ को आरम्भ होने वाले विश्व युद्धसे थोड़ी देर पहले जबलपुरके निकट जर्मन सरकारके एक प्रतिनिधिसे भेंट कर के अंग्रेज़के विरुद्ध जर्मनी द्वारा सहायता और सहयोगका प्रबन्ध कर लिया था। इसके अनुसार बहुत-सा गोला-बारूद और शस्त्रास्त्र प्राप्त होनेके आश्वासन भी मिल गये थे। इसके अतिरिक्त रावलपिंडीसे ढाका और दक्षिणमें जबलपुर तक फौजी छावनियोंसे सम्पर्क स्थापित कर लिये गये थे। पहले २१ फरवरी, १९१५ को और किसी देशद्रोही द्वारा पोलीसपर रहस्यका उद्घाटन कर दिये जानेपर फिर १९ फरवरी को देश-भरकी छावनियोंमें क्रान्तिकी तीव्र ज्वालाएं धधकने लगतीं; परन्तु इस तारीखकी रिपोर्ट भी पोलीसको मिल गई। इस प्रकार यह विशाल योजना विफल हो गई, क्रान्तिकारियोंकी अन्धा-धुन्ध पकड़-धकड़ शुरू हो गई। बाबू रासबिहारीबोसकी गरिफ़तारीके लिये भारी इनाम की घोषणा की गई, मगर आप भरसक यत्न करनेपर भी पोलीसके हाथ नहीं लगे।

अब आपने विदेश जाकर देशकी स्वतन्त्रताकी योजना बनाई; परन्तु पास-पोर्टके बगैर देशसे बाहर जाना सम्भव नहीं था। दैवयोगसे उन दिनों विश्व-कवि श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर जापान जाने वाले थे। इस अवसरका लाभ उठाते हुए आपने अपने-आपको उनका भतीजा श्री पी. एन. टैगोर ज़ाहिर करके और यह कहकर कि मुझे उनसे पूर्व वहां पहुंचना है, पास-पोर्ट प्राप्त कर लिया और अंग्रेज तथा उसकी पोलीसकी आंखोंमें धूल झोंककर १२ मई, १९१५ ई० को एक जापानी जहाज़ द्वारा मातृ-भूमिको अन्तिम प्रणाम करके चल दिये।

जापानमें पहुंचनेपर आपका सम्पर्क सुविख्यात क्रान्तिकारी श्री हीरम्बा-लाल गुप्तके साथ हो गया। पंजाब केसरी श्री लाला लाजपतरायजी भी उन दिनों वहीं थे। १७ नवम्बर, १९१५ के दिन 'क्योटो' नामके नगरमें एक विशाल जनसभामें हिन्दुस्थानमें ब्रिटिश हथकण्डोंकी आपने कटु आलोचना की। अब अंग्रेज़ोंके जापानी दूतावासको निश्चयहो गया कि पी० एन० टैगोरके नाम-से हिन्दुस्थानमें ब्रिटिश सरकार और उसके पोलीस तथा पास-पोर्ट अधिकारियों-

को मूर्ख बनाकर जापानमें आ जानेवाला व्यक्ति रासबिहारी बोसके सिवा कोई नहीं, अतः ब्रिटिश दूतावासने जापान सरकारपर दबाव डाला कि उन तीनों ब्रिटिश साम्राज्य विरोधी क्रान्तिकारियों (सर्वश्री रासबिहारी बोस, हीरम्बा-लाल गुप्त तथा लाजपतराय) को उनके हवाले कर दे; परन्तु इसमें सफलता नहीं हुई, क्योंकि लाला लाजपतराय तो अमरीका चले गये और शेष दोनों वीर अदृश्य हो गये। बाबू रासबिहारी बोस आठ वर्ष तक भूमिगत (रू-पोश) रहे और २७ जुलाई, १९२३ ईस्वी को जापानी नागरिकता प्राप्त कर पाये।

आपने जापानमें ही विवाह कर लिया। जापानी भाषापर पूर्ण अधिकार प्राप्त करके उसी भाषामें आठ-दस पुस्तकें लिखकर जापानी जनता-के समक्ष अपना मन्तव्य सफलतापूर्वक व्यक्त किया, जिससे जापान निवासी आपके पक्ष-पोषक बन गये।

आपने जापानके अतिरिक्त सिंगापुर आदि स्थानोंपर भारतकी स्वतन्त्रता प्राप्तिके सम्बन्धमें ठोस योजनाएँ बनाईं और उनका अक्षरशः कार्यान्वियन किया। १५ जून, १९४२ के दिन आपकी अध्यक्षतामें बैंकाक महानगरमें एक महान् सम्मेलन हुआ, जिसमें पूर्व और दक्षिण-पूर्व एशियाके देश बर्मा, मलाया, स्याम (थाईलैंड), जापान, मंचूरिया, नानकिंग, शंघाई, कैण्टन, हांगकांग, अण्डेमन, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो आदिके प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इसी सम्मेलनके अवसर पर आपने भारतीय स्वातन्त्र्य संघ (Indian Independence League) का विधिवत् उद्घाटन करते हुए एक ओजस्वी भाषण दिया।

सन् १९३९ में दूसरा विश्वयुद्ध आरम्भ होनेपर जब जापानने संयुक्त शक्तियों (Allies) के विरुद्ध लड़नेकी घोषणा कर दी तो उससे पहले ही आपने अपनी भारतीय राष्ट्रीय सेना (I.N.A.) की कमान किसी प्रभावशाली हिन्दुस्थानी युवा देशभक्तके हाथमें सौंप देनेकी अभिलाषासे स्वातन्त्र्यवीर सावरकरजीके साथ सम्पर्क स्थापित किया और उन्हींकी प्रेरणासे श्री बाबू सुभाषचन्द्र बोस नाटकीय ढंगसे जापानमें पहुंच चुके थे। परिणामतः ४ जुलाई, १९४३ ई० के दिन बाबू रासबिहारी बोसने इण्डियन नेशनल आर्मीकी पैरेड कराई और सबके सामने अपने भाषणमें कहा—"वीर देशभक्त सैनिको! आपने मेरे आदेशानुसार देशकी स्वतन्त्रताके लिये जो अमूल्य सेवाएँ की हैं और अपना सर्वस्व देशपर न्यौछावर करनेका दृढ़ संकल्प कर रक्खा है, उसके लिये आपका धन्यवाद करता हुआ बधाई भी देता हूं। आप सज्जनोंने मेरा

साथ खूब निभाया है। अब मैं बूढ़ा हो गया हूं, अतः स्वदेश भक्त महावीर इन (सुभाष बाबू की ओर संकेत करके) को आपका नेतृत्व करनेके लिये मैंने हिन्दुस्थानसे आमन्त्रित किया है। आजसे ये आपके सुप्रीम (वरिष्ठ) कमाण्डर होंगे। मैं अपने समस्त अधिकार इन्हें सौंपता हूं।" उस दिनसे बाबू सुभाषचन्द्र बोस 'नेताजी' के नामसे विख्यात हुए और आपने 'चलो देहलीको' का घोष करते हुए ब्रह्माके मार्गसे अंग्रेज़ोंकी फौजोंपर आक्रमण कर दिया।

पर्याप्त समय तक रोग ग्रस्त रहने के पश्चात् हिन्दुस्तानी क्रान्तिकारियोंके मूर्धन्य नेता श्री बाबू रासबिहारी बोस २१ जनवरी, १९४५ के दिन अपना भौतिक कलेवर त्यागकर परलोक सिधार गये।

(६) श्री पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल'—

शाहजहांपुर (उत्तर प्रदेश) निवासी प्रेममूर्ति, दयालु स्वभाव एवं धर्मनिष्ट प्रकृति श्री पं० मुरलीधरजीके घरपर सन् १८९८ ई० में आपका जन्म हुआ। आप पढ़नेमें कमही रुचि लेते थे। आवारा-गर्द लड़कोंके साथ घूमना-फिरना आपको बहुत जचता था। आपकी माताजीको इससे बहुत दुःख होता था। सौभाग्यवश आपको मुन्शी इन्द्रजीत नामक आर्य-समाजी विद्वान्के सम्पर्कमें आने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने बालक रामप्रसादको कुसंगतिके दोष समझाकर, महर्षि दयानन्दका जीवन चरित्र और सत्यार्थप्रकाश पढ़नेको दिये। इन ग्रन्थोंके पाठने रामप्रसादका काया-कल्प कर दिया। ब्रह्मचर्य धारण और नियमित रूपसे व्यायाम करनेके कारण रामप्रसादका शरीर बलिष्ठ और बुद्धि प्रखर हो गई। आप प्रतिदिन सन्ध्या-वन्दन तथा हवन-यज्ञ करने लगे। अब तो उन्हें ऐसी लगन लगी कि आर्य समाज मन्दिर ही मानो उनका घर बन गया।

दैवयोगसे लाहौर (पंजाब) निवासी श्रीयुत ब्रजलाल चोपड़ा, जो एक निष्ठावान् आर्यसमाजी थे, और संन्यासाश्रम में प्रवेश करके स्वामी सोमदेव बन गये थे, स्थाई रूपसे आर्यसमाज मन्दिर शाहजहाँपुरमें रहने लगे। उनकी सत्संगतिने रामप्रसादको कुन्दन बना दिया। आत्म चरित्रमें पं० रामप्रसादने लिखा—

"सन् १९१६ ईस्वीमें लाहौर षड्यन्त्रका मामला चला। मैं समाचार पत्रोंमें उसका सब वृत्तान्त बड़े ध्यानसे पढ़ा करता था। श्रीयुत भाई परमानन्दजीमें मेरी बड़ी श्रद्धा थी, क्योंकि उनकी लिखी हुई पुस्तक 'तवारीखे हिन्द' पढ़कर मेरे हृदयपर बड़ा प्रभाव पड़ा था। लाहौर षड्यन्त्र केसका फ़ैसला

अखबारोंमें छपा । भाई परमानन्दजीको फांसीकी सजा पढ़कर मेरे सारे शरीरमें आग लग गई । मैंने विचारा कि "अंग्रेज़ बड़े पापी हैं, इनके राज्यमें न्याय नहीं, जो इतने बड़े महानुभावको फांसीकी सज़ाका हुक्म दिया है, मैंने प्रतिज्ञा की कि "मैं इसका बदला अवश्य लूँगा । जीवन भर अंग्रेज़के राज्यको विध्वंस करनेका प्रयत्न करता रहूंगा ।" इस प्रकारकी प्रतिज्ञा कर चुकनेके पश्चात् मैं स्वामी (सोमदेव) जीके पास आया । सब समाचार सुनाये और अख्बार दिया । अख्बार पढ़कर स्वामीजी बड़े दु:खी हुए । तब मैंने अपनी प्रतिज्ञाके सम्बन्धमें कहा स्वामीजी कहने लगे कि 'प्रतिज्ञा करना सरल है किन्तु उसपर दृढ़ रहना कठिन है' । मैंने स्वामीजीको प्रणाम करके उत्तर दिया कि 'यदि श्रीचरणोंकी कृपा बनी रही तो प्रतिज्ञा पूर्तिमें किसी प्रकारकी त्रुटि न करूँगा ।' उस दिनसे स्वामीजी कुछ-कुछ खुले । वे बहुत-सी बातें बताया करते थे । उसी दिनसे मेरे क्रान्तिकारी जीवनका सूत्रपात हुआ........."

"मुझमें जो कुछ धार्मिक तथा आत्मिक जीवनमें दृढ़ता उत्पन्न हुई वह स्वामीजी महाराजके सदुपदेशोंका परिणाम है..............."

आर्य समाजमें रहते हुए पण्डित रामप्रसादजी स्वामी सोमदेवजीकी सेवा बड़ी श्रद्धा पूर्वक करने लगे । धार्मिक एवं सामाजिक ज्ञानोपलब्धिके साथ-ही-साथ राजनैतिक समस्याओंके सम्बन्धमें भी उत्तम उपदेश प्राप्त होने लगे । स्वामीजी महाराज महर्षि दयानन्दके अनन्यभक्त थे, अत: उनकी नस-नसमें देशभक्तिकी उदात्तभावनाएँ कूट-कूटकर भरी हुई थीं । पण्डित राम प्रसादपर उनका गूढ़ा रंग चढ़ गया । निदान अपने गुरु स्वामी सोमदेवजीके समक्ष अंग्रेज़ी राज्यका विध्वंस करतें रहनेकी प्रतिज्ञाके अनन्तर आपने क्रान्तिकारीदलका संगठन किया । माताजीसे व्योपारके लिये कुछ रूपया प्राप्त करके 'अमरीकाको स्वतन्त्रता कैसे मिली ?' नामी पुस्तक लिखी और छपवाई । यह संस्करण शीघ्रही समाप्त हो गया । प्राप्त धनसे पार्टीके लिये हथियार ख़रीदे; परन्तु वह धन अपर्याप्त सिद्ध हुआ । ज़िला जौनपुरके डाकेमें भी कुछ धन मिगा; परन्तु यह भी काफी नहीं था । अन्ततोगत्वा काकोरीके क़रीब डाकगाड़ी खड़ी करके रेलवे का सरकारी ख़ज़ाना लूटा, जिससे दस हज़ार रुपया हाथ लगा । पोलीसने बड़ी दौड़-धूप करके आपको साथियों सहित गिरफ्तार कर लिया । जेलमें आपपर बहुत अत्याचार किये गये । काकोरी षड्यन्त्र केस चलाया गया, जिसमें आपको भारतीय दण्ड-विधानकी धारा १२१ अ तथा १२० ब के आधीन आजन्म काला पानी और धारा ३६६ के आधीन फाँसी की सज़ाएँ

सुनाई गई । १९ दिसम्बर, १९२७ को गोरखपुर जेलमें आपको फाँसीपर लटकानेसे पूर्व आपकी 'अन्तिम कामना' पूछी गई, जिसे सुनकर आर्य वीर पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने उच्च स्वरसे कहा—'अंग्रेज़ी साम्राज्यका नाश हो' यह मेरी 'अन्तिम कामना' है। तत्पश्चात् 'बन्दे मातरम्' का घोष करते हुए, उछलकर फांसीका फन्दा अपने गलेमें डाला और क़ौमी शहीदोंकी लम्बी परम्परामें सम्मिलित हो गये।

(७) श्री ठाकुर रोशन सिंह—

आप ज़िला शाहजहाँपुरके 'नवादा' ग्रामके निवासी थे। उन दिनों देहातमें पढ़ने-पढ़ानेका रिवाज बहुत ही कम होता था। अतः ठाकुर साहिबने तलवार, बन्दूक, लाठी, गतका, फरी आदिका खूब अभ्यास कर लिया। कुश्ती-कलामें भी आप सिद्ध-हस्त थे। अपने परिश्रमसे ही आपने हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ीका ज्ञान प्राप्त कर लिया था और कारावासके दिनों बंगला भी सीख ली थी।

विचारोंसे आप दृढ़ आर्य समाजी थे और पूर्ण निष्ठापूर्वक संध्या-हवन आदि पूजा-पाठ किया करते थे। आप आर्यसमाज आगराके सत्संगमें सम्मिलित हुआ करते थे और इसी माध्यमसे ये उत्तम संस्कार दृढ़ कर पाये थे।

आप अत्यन्त निस्पृह कार्यकर्त्ता थे। अपनी समस्त योग्यता, शक्ति, तत्परता और एकाग्रताके साथ आयुभर देशसेवाके कार्यमें लगे रहे।

स्वदेश-भक्तिसे प्रेरित होकर आपने श्री पं० रामप्रसादजी 'बिस्मिल' तथा अन्य कुछ सहयोगियोंके साथ मिलकर काकोरीके निकट डाक-गाड़ीमेंसे सरकारी खज़ाना लूटनेमें सहायता दी और 'काकोरी' षड्यन्त्र केसमें धर लिये गये।

मामला चलकर समाप्त भी हो गया और आपको प्राणदण्डकी सज़ा भी सुना दी गई; परन्तु श्रीमद्भगवद्गीतामें वर्णित 'स्थित-प्रज्ञ' की भाँति आप ऐसे अचल, अडिग, अच्युत और तटस्थ-से रहे कि आपके मनमें रञ्चक मात्र भी विकार उत्पन्न नहीं होने पाया।

फांसीपर झूलनेसे लग-भग एक सप्ताह पूर्व आपने अपने एक मित्रको निम्न पत्र लिखा—

"इस सप्ताहके भीतर फांसी होगी······

"मेरी मौत खुशीका बाइस होगी। दुनियामें पैदा होकर मरना ज़रूर

है। दुनियामें बद-फ़ेल (कुकर्म—पाप) करके मनुष्य अपनेको बदनाम (लाञ्छित) न करे और मरनेतक ईश्वरकी याद रहे—यही दो बातें होनी चाहियें। और ईश्वरकी कृपासे मेरे साथमें दोनों बातें हैं। इस लिये मेरी मौत किसी प्रकारके अफ़सोसके लाइक नहीं। दो वर्षोंसे मैं बाल-बच्चोंसे अलग हूं। इस बीच ईश्वर-भजनका खूब मौक़ा मिला। इससे मेरा मोह टूट गया और कोई वासना बाक़ी नहीं रही। मेरा पूरा विश्वास है कि दुनियाकी कष्ट-भरी यात्रा समाप्त करके अब मैं आरामकी ज़िन्दगीके लिये जा रहा हूं। हमारे शास्त्रमें लिखा है कि जो मनुष्य धर्म-युद्धमें प्राण देता है, उसकी वही गति होती है जो जंगलमें रहकर तपस्या करने वाले की।"

दूसरे साथियों समेत, आप भी 'काकोरी षड्यन्त्र केस' में सम्मिलित थे और भारतीय दण्ड-विधानकी धारा १२१ अ और १२० ब के आधीन आपको कालापानी और धारा ३९६ के आधीन मृत्यु-दण्ड दिया गया।

आप बड़े विनोद-प्रिय महानुभाव थे। ज़िंदादिली आपका स्वभावही बन गई थी। आप प्रायः पढ़ा करते थे—

"ज़िन्दगी ज़िन्दादिलीको तू जान ऐ 'रोशन,'
यूँ तो कितने ही हुए और फ़ना होते हैं।"

फांसी के दिन स्नान, संध्या, स्वाध्यायसे निबटकर आप पहले ही तैयार बैठे थे। बुलावा आते ही गीताकी पुस्तक हाथमें ले 'वन्दे मातरम्' का रष्ट्रीय-नाद गुञ्जाते और 'ओ३म्'का घोष करते हुए आप कूदकर फांसीके तख्ते पर चढ़ गये और फन्देको गलेमें डाल उसपर झूल गये। आपकी अन्तिम अभिलाषाके अनुसार आपका अन्त्येष्टि भी पूर्ण वैदिक (आर्यसमाजिक) रीति से सम्पन्न हुआ।

(८) श्री पं० गेंदालालजी दीक्षित—

आपका जन्म सन् १८८८ में यमुना-तट वासी श्री पं० भोलानाथ दीक्षितके घर वटेश्वरके निकट ग्राम 'मई' ज़िला आगरामें हुआ था। मैट्रिक उत्तीर्ण होनेके पश्चात् आप 'औरैय्या' ज़िला इटावाके डी० ए० वी० स्कूलमें अध्यापक नियत हुए। उन्हीं दिनों आपने 'शिवाजी समिति' को संगठित किया, जिसका उद्देश्य डाके डालकर धन-संचय करना और उससे हथियार खरीदकर अपने क्रान्तिकारी साथियोंमें वितरण करना था। आपने गुरुकुलके व्यायाम शिक्षकसे धनुष-बाण तथा अन्य शस्त्र चलानेकी शिक्षा ग्रहण की थी।

एक बार आप लोकमान्य बालगंगाधर तिलकके साथ भेंट करने पूना गये। वापसीपर देर हो जानेके कारण सेवासे मुक्तकर दिये गये। आप मैनपुरीके आर्यसमाजके कई वर्षोंतक मन्त्रीभी रहे और महर्षि दयानन्द प्रदर्शित विधि-विधानके अनुसार जन-सेवा करते रहे।

एक बार क्रान्तिकारी दलके अधिनायक श्री 'ब्रह्मचारी' जीको मिलने गये। उनके दलने एक दिन कहीं डाका डालने जाना था। किसी दूरस्थ स्थानमें किसी महाजनका घर इनका लक्ष्य था। अपनेमेंसे ही एक साथीको खाद्य-पदार्थ लानेका काम सौंपा गया। वह दुष्ट पोलीससे मिला हुआ था। उसकी प्रेरणासे 'ब्रह्मचारी' जीके दलको चारों ओरसे घेर लिया गया और पोलीस घातमें बैठ गई। वह व्यक्ति नगरसे पूरी बनवाकर ले आया। ब्रह्मचारीजी जो स्वयंपाकी (अपने हाथसे बनाकर भोजन खाने वाले) थे, उस दिन उन्होंनेभी एक पूरी खा ली। खाते ही उनकी जिह्वा ऐंठने लगी। उन्हें सन्देह हुआ कि ये पूरियां विष-मिश्रित हैं। पूरियां लानेवाला व्यक्ति पानी लानेके बहाने नदीकी ओर चल दिया। ब्रह्मचारीजीने उसपर गोली चला दी। उत्तरमें पोलीसकी ओरसे चारों तरफ़से दना-दन शुरू हो गई, जिससे दलके कई आदमी मारे गये। कुछ विष-मिश्रित पूरियां खानेके कारण प्राण गंवा बैठे। इस प्रकार 'ब्रह्मचारी' जीके दलके अस्सी क्रान्तिकारियोंमें से पैंतीस व्यक्ति गोलियोंसे शहीद होगये। एक छर्रा लगनेसे पण्डित गेंदालाल दीक्षितकी बाईं आंख जाती रही। पण्डितजी तथा 'ब्रह्मचारी' जी दोनों पकड़ लिये गये। शेष व्यक्ति अदृश्य हो गये। पण्डितजी ग्वालियरके क़िलेमें बन्द कर दिये गये, जहांकी जल-वायुकी प्रतिकूलताके कारण आपको राज-यक्ष्मा जैसे भयानक राज-रोगने दबा लिया। जब मैनपुरी षड्यन्त्र केस चला तो आपको भी उसमें धर लिया गया। पोलीस उन्हें ग्वालियरसे मैनपुरी जेलमें ले गई। वहां पण्डितजी ने एक अनूठी नीतिका अवलम्बन किया। तहकीकात करनेवाले पोलीस अधिकारियों को कहने लगे—"आपने इन छोटे-छोटे छोकरों पर व्यर्थ आशाएँ लगा रक्खी हैं। यह सोमदेवतो कलका छोकरा है, यह भला आपको क्या बतायेगा? मैंने आयुभर क्रान्तिकारियोंमें काम किया है। मैं जानता हूं कि हमारे काम का विस्तार यू. पी. अथवा राजस्थानमें ही नहीं अपितु महाराष्ट्र एवं बंगाल तक फैला हुआ है। अब मुझे विश्वासहो गया है कि क्रान्ति सफल नहीं हो सकती, अतः मैं अब हताश हो गया हूं। आप मुझे सरकारी गवाह बनालें, जो कुछ मैं आपको बताऊंगा, आप जानकर चकितहो जायेंगे।"

पोलीस अधिकारियोंको अपनी सफलता सामने नज़र आने लगी। वे प्रसन्नतासे फूल गये और पण्डितजीको जेलके सीखचोंमेंसे निकालकर एक अन्य सरकारी गवाह रामनारायणके साथ रख दिया।

दूसरे दिन उन दोनोंने मैजिस्ट्रेटके सामने अपने बयान देने थे। पण्डितजी-ने रामनारायणको समझाया कि 'सरकारी गवाह बनकर हम बच तो अवश्य जायेंगे; परन्तु जिधरसे गुज़रेंगे लोग नफ़रतसे हमारी तर्फ़ अंगुली उठायेंगे। अपमानित एवं घृणित होकर तथा नक्कू बनकर जीनेकी अपेक्षा तो मौत ही सौ गुणा अच्छी है। इसलिये आजकी रातही जेलसे पलायन कर जाना चाहिये, हमारे लिये यही श्रेयकर होगा।' यह बात रामनारायणको भी जच गई और रातके अन्धेरेमें दोनों जेलसे फ़रार हो गये।

इन प्रतिदिनकी मुसीबतोंके कारण आपका रोग बहुत बढ़ गया था। सिर छुपानेको कोई स्थानभी नहीं मिलता था। कोई अपने पास भी फटकने नहीं देता था। भूख, बीमारी और लम्बी पैदल यात्राओंके कारण आप मरणासन्न हुए जाते थे। गिरते-पड़ते आप किसी तरह अपने घर पहुंच गये; परन्तु घरवालेभी पोलीससे भयभीत थे। अतः इस विचारसे कि कहीं उनके कारण घरवालोंपर कोई विपत्ति न आ जाये, आप केवल तीन दिनके बाद पैत्रिक-गृहको छोड़कर पुनः अज्ञात यात्रापर निकल पड़े।

अपने घरसे कालेकोसोंकी मुसाफ़त तय करके आप देहली पहुंच गये। कोई आश्रय, कोई सहारा, कोई यारोमददगार नहीं था। विवश होकर पापी पेटमें भला-बुरा ईंधन डालनेके लिये एक प्याऊपर पानी पिलानेकी नौकरी कर ली। उद्देश्य यही था कि यहां कुछ अज्ञात लोगोंसे शनैः शनैः सम्पर्क स्थापित हो ही जायगा। समय आनेपर नये क्रान्तिकारी दलका संगठन कर लेंगे।'

स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन बिगड़ता जा रहा था। सौभाग्यसे देहलीमें आपका एक पूर्वपरिचित मित्र मिल गया। उसने यत्न करके घरसे आपकी पत्नी और छोटे भाईको देहलीमें बुला दिया। पैसा तो किसीके पास था नहीं। विचार यह था कि साधारण रोगीकी भाँति पण्डितजीको सरकारी हस्पतालके जनरल वार्डमें इलाजके लिये प्रविष्ट करा दिया जायगा। पण्डितजीकी पत्नी उनकी शोचनीय अवस्था देखकर रोने लगी, तो पण्डितजीने उसे समझाते हुए कहा—'देवी! तू तो मेरे लिये रोती है, क्योंकि तुम्हें मेरे दुःखसे दुःख है; परन्तु वास्तवमें मेरा दुःख तुम्हारे दुःखसे बहुत बड़ा है। इस लियेकि मैं सारे देश-

के लिये रोरहा हूं। मेरा शरीर समाप्तहो जायेगा; परन्तु मैं मोक्ष नहीं चाहता। मेरी अभिलाषा है कि पुन: पुन: भारत भूमिमें जन्म धारण करूं, और बार-बार इसीकी सेवा करता हुआ मरता रहूं, जबतक कि मेरी मातृभूमि दासताकी दृढ़ सांकुलोंसे पूर्णत: मुक्त न हो जाय।'

पण्डितजीके ये अन्तिम शब्द श्री पण्डित रामप्रसाद 'विस्मल' को ही विदित हुए थे और उन्होंने ही सबको बताये थे।

पण्डितजीके मित्र, भाई और पत्नीको, उनके स्वास्थ्यकी गिरती हुई दशाको देखकर यह विश्वासहो गया कि अब ये थोड़ी ही देरके मेहमान हैं। अत: पोलीसके आतंकसे भयभीत ये तीनों व्यक्ति यथा-तथा आपको सरकारी हस्तपतालमें छोड़कर चले गये, ताकि उन्हें कोई पहचान न ले। एक कारण यह भी था कि पण्डितजीका अन्त्येष्टि संस्कार करनेके लिये किसीके पास पैसे भी तो नहीं थे। इसप्रकार महान् क्रान्तिकारी पण्डित गेंदालाल दीक्षितकी निस्सहाय अवस्थामें सरकारी हस्पतालमें ही ३१ दिसम्बर, १९२९ के दिन मृत्यु हो गई, किसीने लाशकी भी मांग नहीं की, इसलिये सरकारी नियमानुसार उन्हें मिट्टीका तेल डालकर फूंक दिया गया। इतने बड़े क्रान्तिकारी देशभक्त नेताकी मृत्युकी खबरभी अखबारोंमें नहीं छपसकी, परन्तु जबतक आकाशमें सूर्य, चन्द्र और तारे चमकते हैं, तबतक श्री पण्डित गेंदालाल दीक्षितका नाम एक देदीप्यमान नक्षत्रकी तरह चमकता रहेगा।

(९) श्री अशफ़ाकुल्ला खाँ—

क्रान्तिकारी-युवक-दलको संगठित करते समय श्री पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' की पैनी आंख एक हृष्ट-पुष्ट तेजस्वी मुसलमान युवक श्री अशफ़ाकुल्लाखां पर ठहर गई। इसका बड़ा भाई पण्डितजीका सहपाठी था। छोटे भाईके नाते यह युवकभी पण्डितजीकी मित्रताका अभिलाषी हुआ। पण्डितजी प्राय: आर्यसमाज मन्दिरमें ही रहा करते थे। यह नव-युवक भी बिला झिझक उनके पास जाता और घण्टों बैठा रहता। इस प्रकार दोनोंकी घनिष्टता दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई और अशफ़ाकुल्ला खां ने पण्डितजीको अपना गुरु बना लिया। पण्डितजीने भी उसे देश-भक्तिकी भावनाओंसे रंग दिया। अपने आत्म-चरित्रमें पण्डितजीने लिखा—"अशफ़ाकुल्ला खां!······तुम आर्यसमाज मन्दिर-में मेरे पास आया जाया करते थे······तुमने स्वदेश भक्तिके भावोंको भली-भांति समझनेके लिये ही हिन्दीका अच्छा अभ्यास किया। अपने घरपर भी अपनी माताजी तथा भ्राताजीसे बात-चीत करते थे, तो तुम्हारे मुँहसे हिन्दीके

शब्द निकल जाते थे, जिससे सबको बड़ा आश्चर्य होता था''''''अन्तमें इस प्रेम, प्रीति तथा मित्रताका परिणाम क्या हुआ ? मेरे विचारोंके रंगमें तुमभी रंग गये''''''"।

शाहजहानपुरमें हिन्दु-मुस्लिम दंगा हो रहा था। श्री अशफ़ाकुल्ला-खां उस समय आर्यसमाज मन्दिरमें श्री पं० रामप्रसादजी 'बिस्मिल' के साथ बैठे थे। दंगाई मुसलमानोंने आर्यसमाज मन्दिरको तोड़ना चाहा। इस समय आपने (अशफ़ाकुल्ला खां ने) अपना पिस्तौल तानकर सिंह गर्जना की—'सुनो, समाज मन्दिरकी एक-एक ईंट मुझे प्राणसे प्यारी है। यदि किसीने इधर टेढ़ी आंख उठानेका भी दुःसाहस किया तो वह मेरी गोलीका निशाना बनेगा।" इतना सुनते ही फ़सादी भीड़ तितर-बितर हो गई।

काकोरीके निकट डाक गाड़ीसे सरकारी खज़ाना लूटनेके समय आपभी श्री पं० रामप्रसाद जी 'बिस्मिल' तथा अन्य क्रान्तिकारियोंके साथ ही थे। काकोरी षड्यन्त्र केसमें गरिफ़तार हो गये, आपको भी फांसीका दण्ड दिया गया और १६ दिसम्बर १६२७ के हत्यारे दिन श्री पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' और श्री ठाकुर रोशनसिंहके साथ-साथ आपभी मातृ-वेदिपर बलिदान हो गये।

(१०) श्री पं० चन्द्र शेखर 'आज़ाद'—

आप उन्नाव ज़िला निवासी पं० सीताराम तिवारी और वीर-प्रसविनी माता जयराणीके लाडले थे। आपका जन्म भावरा ग्राम (मध्य प्रदेश) में हुआ था। अभावग्रस्त वातावरणमें ही आपका बाल्यकाल व्यतीत हुआ। अपने चचा पं० देवकी नन्दन पहलवानको देखकर आपकोभी व्यायामका शौक पैदा हुआ। निरन्तर अभ्यास और परिश्रमके कारण आप अत्यन्त सुन्दर, बलिष्ठ, आकर्षक-आकृति और गठीले डील-डौल वाले नव-युवक बन गये। इनका दृढ़ शरीर देखकर ही मैजिस्ट्रेटने इन्हें जेल न भेजकर १५ बेंतोंकी सज़ा दी थी, जिसे इन्होंने हंसी-खुशी सहन कर लिया। 'ज्ञानवापी' के स्वागत समारोहमें बाबू भगवान्‌दासजीके सुपुत्र श्री श्रीप्रकाशजीने आपको 'आज़ाद' नामसे प्रतिष्ठित किया था। तत्पश्चात् आप श्री पण्डित रामप्रसादजी 'बिस्मिल' के क्रान्तिकारी दलमें सम्मिलित हो गये। आपके फुर्तीले कृत्योंको देखकर'बिस्मिल' जी कहा करते थे कि यह 'क्विकसिल्वर (Quick silver-पारा-की तरह बेचैन) ही पहले गरिफ़तार होगा।" उत्तरमें आप कहते—"गुरुदेव ! विश्वास रखिये कि जबतक मेरा पिस्तौल मेरे हाथमें है और गोली-सिक्का धोखा

नहीं दे जाता, किसकी मां ने ऐसे पुत्रको दूध पिलाया है, जो मुझे जीते जी गरिफ़तार कर सके ।" अन्तमें यह बात सोलहों आने दुरुस्त सिद्ध हुई ।

९ अगस्त, १९२५ को श्री पं० रामप्रसादजी 'बिस्मिल' के नेतृत्वमें काकोरी स्टेशनके निकट सरकारी ख़जानेको लूटनेके समय आपभी क्रान्तिकारी दलमें सक्रिय थे । जहां काकोरी अभियोगके प्रायः सभी अभियुक्त पकड़ लिये गये, वहाँ पण्डित चन्द्रशेखर 'आज़ाद', श्री अशफ़ाकुल्ला खां और शचीन्द्रनाथ बख्शी अदृश्य हो गये । बादमें श्री अशफ़ाक़ुल्लाखाँको भागलपुरसे और शचीन्द्र बख्शीको देहलीसे गरिफ़तार कर लिया गया; परन्तु 'आज़ाद' महोदय वर्षों तक 'आज़ाद' ही घूमते रहे और पोलीस द्वारा भरपूर यत्न करनेपर भी उसके हाथ नहीं आ सके ।

काकोरीके डाकेके बाद आपने झांसीको अपना केन्द्र बनाया और नदीके तटपर कुटिया बनाकर 'हरिशंकर ब्रह्मचारी' बनकर कार्यरत हो गये । झांसी-की एक धनाढ्य विधवाके घर डाका डालने गये । पार्टीके सदस्य धन बटोरनेमें लगे थे कि उनमेंसे एक व्यक्तिने विधवाकी नवयुवती कन्याको कुदृष्टिसे निहारा । 'आज़ाद'जीकी भवें तन गईं और उनका हाथ बर-बस पिस्तौलके घोड़ेपर पहुंचा । गम्भीर स्वरसे कहने लगे—"दुष्ट ! हम गरिफ़तार, क़ैद, कालापानी और फांसीको तो प्रसन्तापूर्वक आह्वान कर सकते हैं, परन्तु दुश्चरित्रताको सहन नहीं कर सकते, इसे किसीभी दशामें प्रश्रय नहीं दे सकते । तेरे अपराधका दण्ड तो मृत्यु है; परन्तु ये मां-बेटी यदि तुम्हें क्षमा कर दें, तब तेरी जान बच सकती है ?" उस दुष्टने जब 'आज़ाद' जीकी दृढ़ता देखी तो, उसके तोते उड़ गये, हाथ जोड़ अपने पापके लिये मां-बेटीसे क्षमा याचना की । क्षमा प्रदान करनेके बाद उस विधवाने पण्डितजीको सम्बोधित करके कहा –"बेटा ! तेरे जैसे उच्च आचारका व्यक्ति डाके जैसे घृणित काममें क्यों पड़ गया है, मुझे इस बातका अचम्भा है ।" आंखोंमें प्रेमाश्रु भरकर पण्डित 'आज़ाद' जीने कहा—"मां ! आप कहती तो ठीक हैं; परन्तु हमारे देशपर अत्याचारी अंग्रेज़ने बलात् कब्ज़ा जमा रखा है, हम भारतमाताकी ग़ुलामीकी जंजीरोंको काटनेके लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर करनेपर कृत-संकल्प हैं । इस कामके लिये हमें हथियारोंकी आवश्यकता है और हथियार बग़ैर रुपयेके हस्तगत नहीं हो सकते । आपका धन हम उसी कार्यमें लगायेंगे, अपने स्वार्थमें खर्च नहीं करेंगे ।" माता-का हृदय भी भर आया और आंसू थामती हुई बोली—"बेटा ! तुम्हारा लक्ष्य ऊंचा है, भावनायें निःस्वार्थ हैं; परन्तु अपनी इस बहनके विवाहका कुछ प्रबन्ध अवश्य करते जाओ ।" माताकी दर्दभरी अपीलपर द्रवित-हृदय 'आज़ाद'-

ने सारा लूटा हुआ धन माताकी झोलीमें डाल दिया और खाली हाथ चलने लगे; परन्तु उस राष्ट्र-हितैषिणी देवीने उसमेंसे बहुत थोड़ा धन जिससे साधारणतौर पर लड़कीका विवाह मात्र हो जाय, अपने पास रक्खा और शेष सब 'आज़ाद' को थमाकर आशीर्वाद दी कि 'जाओ, बेटा ! परमात्मा तुम्हें अपने उद्देश्यमें सफलता प्रदान करें ।'

अन्ततः २७ जनवरी, १६३१ (काकोरी डाकेमें अदृश्य होनेके लगभग साढ़े-पांच वर्ष बाद) प्रयागके अल्फ्रेड पार्कमें पोलीस मुक़ाबलेमें आप एक बट-वृक्षका सहारा लेकर निरन्तर गोलीवर्षा कर रहे थे कि पोलीसकी एक गोली आपके पांवमें लगी, जिससे आप ज़ख्मी हो गये, उधर आपका गोली-भण्डार भी समाप्त हो गया । इसलिये अपनी अन्तिम गोलीसे अपनी इह-लीला समाप्त करते हुए अपनी प्रतिज्ञा कि 'मुझे कोई जीते-जी गरिफ़तार नहीं कर सकेगा' अक्षरशः सिद्ध कर दी ।

आपके अचूक लक्ष्यभेद (निशानाबाज़ी) और बलिष्ट शरीरका इतना आतंक था कि 'आज़ाद' की ओरसे गोली-बारी बन्द हो जानेपर निश्चित रूप-से यह समझते हुए भी कि अवश्य 'आज़ाद' की मृत्यु हो गई होगी, बड़े-बड़े पोलीस अधिकारी उनके शवके पास जानेका साहस नहीं बटोर सके । धन्य हैं भारतमाताके ऐसे लाल, जिन्होंने अपना रूप-यौवन, मान-मर्यादा, धन-ऐश्वर्य—सर्वस्व—माताके पवित्र चरणोंमें न्यौछावर करनेमें ही अपना गौरव समझा ।

(११) देवता स्वरूप श्री भाई परमानन्द जी—

श्री गुरु तेग़ बहादुरजीके साथ देहलीके चांदनी चौकमें, अत्याचारी मदान्ध मुसलमान बादशाह औरंगज़ेबके हुक्मसे धर्म और देशपर आत्म-बली चढ़ाने वाले श्री भाई मतिदासजीके वंशमें श्री भाई ताराचन्दजी करियाला ज़िला जेहलम निवासीके घरमें श्री भाई परमानन्दजी का जन्म हुआ । पैत्रिक सम्पत्तिके रूपमें धर्म और देशकी बलि-वेदिपर आत्माहुति देनेकी भावना प्राप्त हुई । एम० ए० की उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके अनन्तर, महर्षि दयानन्द सरस्वतीजीकी पुण्यस्मृतिमें स्थापित डी०ए०वी० कॉलिज लाहौर (पंजाब) में अध्यापनका कार्य्य करने लगे । आर्य धर्म एवं भारतीय संस्कृतिका प्रचार करनेकी उदात्त भावनाओंसे प्रेरित होकर आपने अफ्रीका, अमरीका और इङ्गलेंड आदि दूरस्थ विदेशोंकी यात्रा की ।

इतिहासके आप लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान् थे । इङ्गलेंड प्रवासके दिनों आपने स्वातन्त्र्यवीर सावरकरजीसे भी सम्पर्क स्थापित किया और श्री ला०

हरदयालजी एम० ए० को, जोकि विरक्त होकर जीवन व्यतीत करनेके लिये कृत-संकल्प थे देशभक्तिका ऐसा अनूठा पाठ पढ़ाया कि आप हिन्दुस्थानी क्रान्तिकारियोंके वरिष्ठ नेता बन गये। इंग्लैंडके विशाल पुस्तकालयोंमें दीर्घ-कालतक गम्भीर स्वाध्याय करके 'भारतवर्ष का इतिहास' नामका एक बृहद् ग्रन्थ लिखा, जो अंग्रेज़ों द्वारा लिखित इतिहासकी पुस्तकोंसे एकदम विलक्षण था। अंग्रेज़ सत्ता-धारियोंको यह इतिहास रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ।

श्री भाईजी अमरीका चले गये। वहाँ से वापसीपर अंग्रेज़ी सरकारने बग़ावत और बादशाहके विरुद्ध जंग करने आदिकी अनेक धाराओंके अनुसार आपपर मुक़द्दमा चलाया। यह लाहौर षड्यन्त्र केसके नामसे विख्यात् है। इस मुकद्दमेका सूत्रपात २६ जनवरी, १६१६ को हुआ था। (स्मरणीय हैं कि इसी तारीख़को ठीक ३४ वर्ष बाद अर्थात् २६ जनवरी, १६५० को स्वतन्त्र भारतका संविधान लागू किया गया था।) साप्ताहिक उर्दू पत्र 'प्रकाश' जिसके संस्थापक-सम्पादक श्री महाशय कृष्णजी थे, में इसकी कार्यवाही प्रकाशित की गई थी। मिस्टर हैरिसन स्पैशल जजकी अदालतमें इसकी सुनाई हुई थी। मिस्टर पिटमैन सरकारकी ओरसे वकील थे और श्रीरघुनाथसहायजी श्री भाईजीकी ओरसे पैरवी कर रहे थे। ला० मनसाराम ड्राफ्टमैनकी गवाही हुई, जिन्होंने उस मकानका नक्शा बनाया था, जिसकी तलाशीपर कुछ अशया (वस्तुएं) बरामद हुई थीं, जिनकी बिनापर मुकद्दमा चल रहा था। इसके बाद मिस्टर बी. टी. सिटी सुपरिण्टेंडैंट पोलीसकी शहादत हुई, जिसमें उन्होंने मकानकी तलाशीके हालात बताये। आपकी शहादतके अनुसार उस मकानसे बम्बका मसविदा (नुस्खा), जंग १८५७ के सम्बन्धमें किताबें, भाई परमानन्दजीका वह मज़मून जो उन्होंने लण्डनमें एल एल. डी. की डिग्री हासिल करनेके लिये लिखा था और वे काग़ज़ात जो सरकारी वकीलने पेश किये, बरामद हुए (निकले)।

काग़ज़ातका मज़मून

वक्फ़े (विश्राम) के बाद मिस्टर पिटमैनने एक-एक करके **चार पुर्जे** पढ़कर सुनाए, जिसमें इस्तग़ासेका दावा था कि भाई परमानन्दने इण्डियन ऐम्पायरकी बनावटके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट किये थे। इस इण्डियन ऐम्पायरकी राजधानी नेपालमें बनाई गई है। **पहले पुर्जे** में लिखा है कि एक हाऊस ऑफ़ कामन्स होगा, जिसमें तीन हज़ार प्रतिनिधि होंगे। और एक हाऊस आफ़ लार्ड्स होगा जिसमें बीस रियासतोंके राजा लोग मेम्बर होंगे। राजे और

दूसरे फ़र्मारवाँ (शासकवर्ग) जो इन्क़लाब (क्रान्ति) में मदद देंगे, उनके सुपुर्द वही इलाके किये जायेंगे जिनपर वे अंग्रेजी हकूमतके मातहत काबिज़ थे। अटकके पार जो इलाक़ा है वह अमीर क़ाबुलके सुपुर्द कर दिया जायगा; पालियामैंटके दोनों हाऊस तीन मासके लिये शिमलामें और शेष आठ मासके लिये देहलीमें इजलास किया करेंगे।

दूसरे पुर्जे में लिखा हुआ था कि इनकी अपनी अलहदा अदालतें होंगी और अपनी अलहदाही यूनिवर्सिटियां होंगी जो डिग्रियाँ और डिप्लोमे दिया करेंगी। वे अपना एक पन्द्रह रोज़ा अख़बार 'भारतमाता' के नामका निकालेंगे जो एक क़ौमी यूनिवर्सिटीके सम्बन्धमें उनके विचारोंका प्रचार करेगा।

तीसरे पुर्जे पर जिसे मि० पिटमैंनने आजकलकी क़त्ल की वारदातोंकी वजहसे बहुतही ज़रुरी बताया, यह लिखा था कि लड़कोंकी बुलन्दख़याली एक उम्दा निशान है। हिन्दुस्थानके हर एक शहरमें एक सराय और एक धर्मार्थ स्थान होगा, जिसमें हर शख्स बग़ैर फीस रह सकेगा। इतिहास पहला विषय पढ़ाया जायगा। सबसे पहले इतिहासकी पुस्तकोंका अनुवाद किया जायगा। मि० पिटमैंनने कहा जो हिस्से पढ़े नहीं जाते वह छोड़ दिये गये हैं। इसके बाद मि० पिटमैंनने नेपालके एक व्यक्ति कार्त्तिक प्रसादकी एक चिठ्ठी तारीख ३ भादों पढ़ी। यह भाई जीके नाम थी जिससे भाई परमानंद मुराद है। चिट्ठीमें लिखा था कि मैंने सुना है कि आप नेपालमें कोई मुलाज़मत चाहते हैं। एक स्कूल मास्टरकी जगह ख़ाली है। आप उसके लिये दरख्वास्त कर दीजिये। इसके बाद मि० पिटमैंनने बी. डी. सरकारकी चिट्ठी पढ़ी जो अजीतसिंहके नाम थी और जिसमें उनके कामकी तारीफ़ की गई थी। मि० पिटमैंनने कहा, यह चिट्ठी बहुत ज़रूरी है क्योंकि इससे परमानन्द और अजीतसिंहके सम्बन्ध साफ़ नज़र आते हैं। ला० लाजपत रायकी चिट्ठी भी पढ़कर सुनाई गई। मि० पिटमैंनने कहा कि जो काग़ज़ात मैंने पेश किये हैं, इनसे साफ़ साबित होता है कि मुल्ज़िम इन्क़लाब बपा करना चाहता था। देशके इन्तज़ामकेलिये उसने पूरी तज्वीज़ बना ली थी। काग़ज़ातसे मालूम होता है कि इस उद्देश्यको प्राप्त करनेके लिये वह कौनसे वसीले काममें लाना चाहता था।[10]

इस मुकद्दमेमें श्री भाईजीको फाँसीका दण्ड दिया गया। जब यह समाचार पत्रोंमें छपा तो इससे देशभरमें तहलका मच गया। जनता

दाँतों तले अंगुली दाबकर सोचने लगी कि क्या भाई परमानन्द जैसे देवता स्वरूप सज्जनको भी निर्दयता पूर्ण मृत्युदण्ड दिया जा सकता है ? शाहजहाँपुर (यू. पी.) के आर्यसमाज मन्दिरमें रहने वाले आर्य संन्यासी श्री स्वामी सोमदेव जीके शिष्य श्री पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल'ने जब यह समाचार पढ़ा तो उनका खून मानो खौलने लगा। उन्होंने विचार किया कि 'भारतवर्षका इतिहास' जैसी पुस्तकके विद्वान् लेखक, सदाचारके पुतले, देशभक्त शिरोमणि, श्री भाई परमानन्द जीकी हत्या करने वाली नृशंस अंग्रेजी सरकारका जितनी जल्दी सर्वनाश हो भारतका उतना ही शीघ्र कल्याण है। अतः उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली कि "मैं इस अत्याचारका बदला अवश्य लूंगा। जीवनभर अंग्रेज़ी राज्यके विध्वंसके लिये प्रयत्न करता रहूंगा।' उसी दिनसे पण्डित रामप्रसाद जी 'बिस्मिल' के क्रान्तिकारी जीवनका सूत्र-पात हुआ।

भाईजीकी फाँसीकी सज़ा बादमें आजन्म कालापानीमें बदल दी गई। भाईजीकी गरिफ़तारीके बाद पोलीसने उनके घरकी हर-एक चीज़को ज़ब्त कर लिया, यहां तक कि कड़कड़ाती सर्दीके दिनों उनकी धर्मपत्नी तथा नन्हे नन्हे बच्चोंके पहनने-ओढ़नेके वस्त्र और खाना पकानेके वर्तन भी नहीं छोड़े गये।

कालेपानीकी जेलमें होनेवाले अमानुषिक व्यवहारसे तंग आकर आपने आमरण अनशन व्रत रख लिया। इसकारण पादरी सी. एफ. ऐंड्रयूज़के प्रयत्नसे आप सम्वत् १९२० में कारा-मुक्त कर दिये गये।

उन दिनों गांधीजीके असहयोग आंदोलनके कारण सरकारी यूनिवर्सिटी-का बहिष्कार करके नैशनल यूनिवर्सिटीकी स्थापना लाहौरमें की गई थी। श्रीभाईजी इसके अवैतनिक कुलपति (चान्सलर) नियत किये गये; परन्तु कांग्रेसकी मुस्लिम तुष्टिकरणकी नीतिसे दुःखी होकर आप हिन्दू, हिन्दी और हिन्दुस्थानकी सेवामें तत्पर हो गये और अन्तिम श्वासतक पूर्ण निष्ठासे उक्त सेवामें संलग्न रहे। १९३३ ईस्वीमें दीवालीके अवसरपर अजमेरमें श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीकी निर्वाण अर्ध शताब्दि मनाई गई। अखिल भारत हिन्दुमहा-सभाने उसी स्थानपर अपना वार्षिक सम्मेलन रखा। श्री भाईजी इसके अध्यक्ष मनोनीत हुए। आपका अध्यक्षीयभाषण हिन्दु-हिन्दी-हिन्दुस्थानके कल्याणके लिये आजतक अद्वितीय पथ-प्रदर्शक समझा जाता है।

श्री भाईजीकी अन्तर्वेदना की अन्तिम अभिव्यक्ति—

भारतवर्ष १५ अगस्त १९४७ को स्वतन्त्र हो गया। वाघासे पश्चिम-की ओरका पजाब पाकिस्तानमें चला गया। लाहौर भी हमसे छिन गया।

अतः अन्य लाखों हिन्दुओंके साथ श्री भाईजीको भी लाहौर छोड़कर इधर आना पड़ा । आप जालन्धरमें अड्डा बस्तियातमें रहते थे । देश-विभाजन, हिन्दुओंकी दुर्दशा और कांग्रेसकी दुर्नीतियोंके कारण आप रोगशय्यारूढ़ हो गये । औषधि-उपचारका कोई लाभ नहीं हो रहा था । ९ दिसम्बर, १९४७ को आपने अपने जीवनका अन्तिम श्वास लिया । तब आपके श्री मुखसे बार-बार ये शब्द निकलते थे—

"हा ! जिन हिन्दुओंके लिये जीवन-भर कार्य किया, जिनके हितोंकी रक्षाके लिये आजन्म संघर्ष-रत रहा, जिन्हें भ्रममूलक राजनीति और ग़लत नेताओंके पंजेसे निकालनेके लिये बार-बार चेतावनी देता रहा । यश-अपयश, मान-अपमान की परवाह किये बग़ैर जिन्हें लगातार सावधान करता रहा; परन्तु दुर्भाग्यवश जिन्होंने अपने और परायेकी पहचान न की, मित्र और शत्रुमें भेद न किया और इन तमाम भ्रान्त-धारणाओंके कारण जब वही हिन्दू लुट गये, पिट गये और मर गये तब **अब मैं जीवित रहकर क्या करूँगा ?**" उक्त हार्दिक उद्गार व्यक्त करते-करते आपने प्राण त्याग दिये ।

इतना दर्द, इतनी टीस थी हिन्दुकेलिये उनके हृदयमें, इसीलिये वे सार्वजनिक सभाओंमें भी पढ़ा करते थे—

अगर हमदर्दिये हिन्दु निशानी कुफ्रकी ठहरे,
मुझे यह कुफ्र देता जा मेरा ईमान लेता जा ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जीकी राजनैतिक सूझ-बूझ के सम्बन्धमें श्री भाई परमानन्दजीने अपने एक व्याख्यानमें बताया—

"उदयपुरके महाराणा सज्जनसिंहजी जी. सी. एम. आई. महर्षि दयानन्द सरस्वतीके अनन्य भक्त थे । महर्षिकी भी उनपर विशेष कृपा दृष्टि रहती थी । महाराणाकी श्रद्धासे आकर्षित महर्षि भी बार-बार उदयपुर पधारनेकी कृपा करते रहते थे । एक दिन महर्षिने महाराणाको उद्विग्न मन, खामोश-सा बैठे देखा । चकित होकर उनकी स्वभाव विरुद्ध असाधारण उद्विग्नताका कारण पूछा । महाराणाने भी गुरुदेवके समक्ष अपना हृदय खोलकर रख दिया और कहा—"महाराज ! अंग्रेज़ी सरकार मेरे पूर्वजोंकी बहुमूल्य धरोहर 'चित्तौड़गढ़'पर क़ब्जा करना चाहती है । स्पष्ट शब्दोंमें रेज़ीडेंटने इसकी आग्रह पूर्वक मांग भी करदी है । अब मैं असमञ्जसमें हूं— यदि उसकी मांग स्वीकार करता हूं, तो देश-द्रोही, वंश द्रोही और कुल-मर्यादा-द्रोही बनता हूं । यदि नहीं मानता तो अंग्रेज़की वक्र दृष्टि का पात्र बनता हूं ।

गुरुदेव ! साँप-छछूँदरकी-सी मेरी स्थिति बन गई है। कुछ समझमें नहीं आ रहा कि क्या करूँ और क्या न करूँ। इसी लिये किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना बैठा हूं। यही कारण है मेरी उदासी का।"

नीति-निपुण महर्षि दयानन्दजीने सान्त्वना देते हुए कहा— "महाराणा ! नीतिसे काम लीजिये और वह यूं कि अपने राज्यके लब्ध-प्रतिष्ठ वृद्ध सरदारोंको बुलाकर समझा दीजिये कि वे एक-एक करके और शिष्ट-मण्डलोंके रूपमें भी, सैकड़ोंकी संख्यामें रैज़ीडेंट साहबके पास जाकर अपनी तलवारोंकी मूठपर हाथ रखकर कहें--"साहब बहादुर ! हमारा महाराणा केवल अपने क्यों प्रत्युत हम समस्त राजपूतों और समुच्चय राजस्थानके पूर्वजोंका नेक-नाम डुबो देनेपर उतारू हो रहा है। हमें पता चला है कि वह हमारे पुरुषाओंकी बहुमूल्य धरोहर 'चित्तौड़गढ़' आपको दे डालनेपर उद्यत हो रहा है। यह दुर्भेद्यगढ़ केवल उसीकी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं, सम्पूर्ण राजपूतोंकी समान मल्कियत है। अतः हम इसकी रक्षार्थ उसी तरह केसरिया-बाणा पहनकर पुनः जौहरकी प्रथाको ताज़ा करते हुए पुर्ज़ा-पुर्ज़ा कट मरेंगे, जैसा कि मुग़लोंके राज्यसे हमारी परम्परा चली आती है; परन्तु चित्तौड़गढ़के बेच डालनेकी महाराणाको छूट नहीं देंगे। हमारा बच्चा-बच्चा बलिदान देगा; परन्तु जबतक एक भी राजपूत जीवित है, तबतक चाहे ख़ूनकी नदियाँ बहती रहें, 'चित्तौड़गढ़' पर किसी अन्यका अधिकार सहन नहीं करेंगे।"

उदयपुर राज्य-निवासी राजपूतोंने ऐसा ही किया। इसलिये ख़ून-ख़राबाके भयसे अंग्रेज़ने अपना कुत्सित संकल्प बदल लिया और आजभी चित्तौड़गढ़ उदयपुरका ही है।

श्री ला० हरदयाल एम० ए० को सन्मार्ग प्रदर्शन—

एक दिन श्रीभाई परमानन्दजी प्रातः कालीन भ्रमणके अनन्तर अपने स्थानको लौट रहे थे कि श्री डाक्टर सर गोकुलचन्द नारंग उन्हें मिलनेके लिये पधारे। बातों-बातोंमें श्रीडाक्टर महोदयने श्रीभाईजीको बताया कि ला० हरदयाल एम. ए. मैथ्यू ऑर्नल्ड लिखित पुस्तक Light of Asia (एशिया की ज्योति) से अत्यन्त प्रभावित हुए हैं। यह महात्मा बुद्धकी जीवन कथा है। और कि लाला हरदयालने संसारसे मुंह मोड़कर घण्टों आत्म-चिन्तन और तपश्चरणमें व्यतीत करना आरम्भ कर रक्खा है।"

श्रीभाई परमानन्दजी, जो कि लाला हरदयालके लिये गुरुके समान थे, अमरीका प्रवासके दिनों उन्हें मिले। और पूछा—"प्रियवर ! आपकी घोर तपस्यासे क्या लाभ होगा? इससे भारतका और मानव जातिका कल्याण कैसे होगा? क्या आप एक नया मज़हब चलाना चाहते हैं ? छोड़ो इस झञ्झट को। पहले ही पर्याप्त संख्यामें मत-मतान्तर फैल रहे हैं। आप हिन्दु-धर्मका महत्व जनताके हृदयोंपर अंकित करनेका प्रयत्न करो। ऐसा प्रबन्ध करो कि लोग प्राचीन-ऋषि-मुनियोंके त्याग और तपस्याको हृदयङ्गम कर सकें।"

भाईजीके उपदेशका यथोचित सुन्दर परिणाम निकला और श्रीलाला हरदयालजी जीवन-भर अपने सम्पर्कमें आनेवाले हज़ारों देशवासियोंको उग्र-देश-भक्तिके साँचेमें ढालनेमें सफल हुए।

(१२) श्री मास्टर अमीरचन्दजी
(१३) श्री मास्टर अवधबिहारीजी
(१४) श्री भाई बालमुकुन्दजी
(१५) श्रीमती राम रक्खीदेवीजी

देहली षड्यन्त्रकेसमें जिन क्रान्तिकारियोंपर मुकद्मा चलाया गया था, श्रीमास्टर अमीरचन्दजी उनके नेता थे। वे स्वयं और उनके सहयोगी-साथी मास्टर अवधबिहारीजी तथा श्री भाई बालमुकन्दजी महर्षि स्वामी दयानन्दजी सरस्वतीके अनन्य भक्त थे। इन तीनों महानुभावोंको फाँसीका दण्ड दिया गया था।

श्री भाई बालमुकुन्दजी, सुविख्यात राष्ट्रीय नेता और महान् क्रान्तिकारी श्री भाई परमानन्दजीके ही परिवारमेंसे थे।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती रामरक्खी देवीजी थीं। वे जेलमें अपने पतिदेवके साथ भेंट करने गईं, वहाँ उन्हें पता चला कि भाई बालमुकुन्दजीको दो कम्बल—एक नीचे के लिये और एक ऊपरके लिये—मिलते हैं। रेत तथा मिट्टी मिली रोटी खानी पड़ती है। आपने अपने घर करियाला ज़िला जेहलम-में वापस जाकर अपने पतिदेव जैसा ही रहन-सहन, खान-पान-पहिरान आरम्भ कर दिया। कुछ समयके पश्चात् मुकद्मेका ड्रामा खत्म होनेपर जब भाई बालमुकुन्दजीको फाँसीपर लटकाये जानेका समाचार मिला, तो आप रोने-धोनेके स्थानपर स्नान-सन्ध्यासे निवृत्त होकर अपने स्वच्छ वस्त्रों और उपलब्ध आभूषणोंको पहनकर इस प्रकार तय्यार होने लगीं जैसे कोई सती-साध्वी

पतिव्रता ललना अपने प्राण-प्रिय पतिदेवको मिलनेके लिये उत्सुक हो उठी है। अोस-पड़ोसके देखनेवाले स्त्री-पुरुष चकित होकर सोचने लगे कि स्यात् पतिकी मृत्युके असह्य आघातसे इसका मस्तिष्क विचलित हो गया है, यह पागल हो गई है। परन्तु वह देवी पूरी तरहसे तय्यार होकर पृथ्वीपर गोबरसे लेपन लगा, पवित्र आसन बिछा, उसपर ध्यानावस्थित योगीकी भाँति बैठ गई और कुछ देर बाद लोगोंने हैरानीसे देखा कि देवीके प्राण-पखेरू उड़ गये हैं। धन्य है वह देवी जिसने पतिव्रताओंकी पुरातन कथाओंको इस ज़मानेमें भी सत्य सिद्ध कर दिखाया है!

(१६) श्री पं० सोहनलाल पाठकजी—

आपका जन्म श्री पण्डित चन्दारामजी पाठक, पट्टी ज़िला अमृतसरके गृहमें ७ जनवरी १८८३ को हुआ था। यह एक निर्धन परिवार था। जन्म समय से ही यह नवजात शिशु अत्यन्त दुर्बल था। पट्टीके वर्नेक्यूलर मिडल स्कूल की पाञ्चवीं श्रेणी तक आपकी फीस माफ़ रही। आप प्राइमरीमें प्रथम रहे और दो रुपये मासिक छात्रवृत्ति प्राप्त कर पाये। वर्नेक्यूलर मिडल पास करके आप छः रुपये मासिक पर नहर विभागमें पन्साल नवीसी करने लगे। तत्पश्चात् चविण्डा प्राइमरी स्कूलमें अध्यापक लग गये। लाहौरमें नार्मल स्कूल पास कर लिया।

उन दिनों प्रिन्सिपल महात्मा हंसराज जी डी. ए. वी. कालिज लाहौर-का सञ्चालन कर रहे थे। उन्होंने आयु-भर निःशुल्क सेवाका व्रत ले रखा था। उन दिनों विविध सम्प्रदायोंमें परस्पर धार्मिक शास्त्रार्थ बहुत हुआ करते थे। महात्मा हंसराजजीके त्यागमय जीवनने पण्डित सोहनलाल पाठकको आकृष्ट किया। आप शास्त्रार्थोंमें निरन्तर भाग लेने लगे।

१९०५-०७ में आर्यसमाजके महान् नेता श्री लाला लाजपतराय तथा उनके सहकारी सरदार अजीतसिंहजीने पंजाबमें अंग्रेज़के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन चला रखा था। हमारे नवयुवक पण्डित सोहनलाल पाठकपर इसका बहुत प्रभाव पड़ा और मन-ही-मन आपने देश-सेवाकी प्रतिज्ञा कर ली।

लालाजी आपसे बहुत प्रेम करते थे। अतः उनके प्रयत्नसे आप डी. ए. वी. स्कूल लाहौरमें किण्डरगार्टनके अध्यापक लग गये।

एक दिन ख़लीफ़ा इमादुद्दीन असिस्टैंट इंस्पैक्टर और बड़े मिस्टर क्रास स्कूलका निरीक्षण करने आये। ख़लीफ़ा साहबने बच्चोंसे कोई नज़्म सुन-

वानेको कहा । पाठकजीके आदेशसे लड़कोंने वीर हकीक़तसे सम्बद्ध निम्न नज़्म आरम्भ की—

"मुसलमाँ होनेको ऐ क़िबला मैं तय्यार नहीं
आपकी नज़र है यह सिर ज़रा इन्कार नहीं ।"

ज्यूँ ज्यूं बच्चे गाते थे, इन्स्पैक्टर साहिबका पारा चढ़ता जाता था । अन्ततः उनके लिये यह गायन असह्य हो उठा और वे कमरेसे बाहर चले गये । इसी संदर्भमें पाठकजीको त्याग पत्र देना पड़ा ।

स्वनाम धन्य श्री लाला हरदयाल एम. ए., जो आई. सी. एस. की परीक्षार्थ लण्डन गये हुए थे भी, देश सेवाके भावसे उक्त परीक्षाका बहिष्कार करके वापस लाहौर आ गये । श्री पाठकजीका उनके पास आना-जाना शुरू हो गया और क्रान्तिकारी भावनाएं अधिक तीव्रतासे उनके हृदयमें तरंगित हो उठीं ।

उन ही दिनों श्री ला० लाजपतरायजीने मुज़ङ्ग (लाहौर) में दयानन्द ब्रह्मचारी आश्रम खोला और पाठकजीको उसमें अध्यापक नियुक्त कर दिया । परन्तु देशसेवाके आकर्षणके कारण वहाँसे भी आपने त्यागपत्र दे दिया और अपना जीवन देशके अर्पण कर देनेका संकल्प लेकर विदेश यात्रापर चल निकले । आप बर्मा, हाँगकाँग, मनीला आदिसे होते हुए अमरीका जा पहुंचे । क्रान्तिकारी मित्रोंके लिये शस्त्रास्त्र इकट्ठे करते रहे । देवता स्वरूप श्री भाई परमानन्द जी भी और श्री लाला हरदयाल जी एम. ए. भी उन दिनों अमरीकामें ही थे । श्री भाई जीने पं० सोहनलाल पाठकको ओरिगन स्टेट कॉलिजमें फार्मेसीका काम सीखनेके लिये प्रविष्ट करा दिया । १९१३ में अमरीकामें ग़दर पार्टी स्थापित की गई । बाबा सोहनसिंह भकना इसके प्रधान और ला० हरदयाल मन्त्री, पं० जगत् राम हरयानवी प्रचार मन्त्री, पं० काशीराम कोषाध्यक्ष और श्री कर्त्तार सिंह सराभा 'ग़दर' नामी समाचार पत्रके प्रेसमें काम करनेपर नियुक्त हुए । पार्टीके आह्वानपर पाठक महोदय कॉलिजकी पढ़ाई छोड़कर सान्फ्रांसिस्कोमें पहुंच गये । ४ अगस्त १९१४ को प्रथम विश्व युद्ध आरम्भ होनेपर ग़दरपार्टीके सहस्रों नवयुवक बर्मा तथा हिन्दुस्थानमें आकर अंग्रेज़ी फौजोंमें बग़ावतका प्रचार करनेकेलिये वापस लौटनेको तय्यार हो गये । बर्मा भेजे जाने वाली पार्टीके नेता श्री पं० सोहन लाल पाठक नियुक्त हुए । ग़दरपार्टीने सिंगापुरकी दो हज़ार मिलिट्री पोलीसको बग़ावतपर तय्यार कर लिया, जिनमेंसे १००० का स्थानान्तरण कर दिया गया । शेष १०००

जवानोंने १४, १५, १६ मार्च १९१४ को बग़ावतका झण्डा उठाये रखा और वस्तुतः चौदह दिनतक बागियोंका सिंगापुरपर राज्य रहा। पाठक महोदय बर्मा पहुंच गये और मेमो (बर्मा) की छावनीमें सिपाहियोंको उपदेश दे रहे थे— "दासताकी दशामें आप लोग अपमानित और तिरस्कृत ही होते रहेंगे, यदि अंग्रेज़ोंका वध करके आप स्वतन्त्र हो गये तो कर्नल, जनरल तथा कमाण्डर-इन-चीफ़ आदि पदवियाँ प्राप्त करोगे, इत्यादि।" आप छावनीसे वापस आ रहे थे कि १५ अगस्त १९१५ को पकड़ लिये गये और जामा तलाशीपर बहुत सा बागियाना साहित्य, ग़दर अख़बारका पर्चा, तीन स्वचालित पिस्तौल और २८३ गोलियाँ निकलीं। आपको माण्डले (बर्मा) क़िलेकी जेलमें बन्द कर दिया गया। आप पर निम्न जुर्म लगा कर निम्न प्रकार की सज़ाएँ दी गईं—

१. शाहनशाह की सेना पर आक्रमण	—	फाँसी
२. फौजों को भड़काना	—	फाँसी
३. बादशाहकी प्रजाको उत्तेजित करना	—	फाँसी
४. क्रान्तिकारी साहित्य तथा शस्त्रास्त्र निकलना	—	आजन्म कालापानी

फाँसीका हुक्म सुननेपर आपको इतनी प्रसन्नता हुई कि आपका वज़न बढ़ना शुरू हो गया और १० फरवरी १९१६, प्रातः ६ बजे आपको फाँसीके स्थानपर ले जानेसे पूर्व आपने सिंह गर्जना करते हुए कहा—"आज मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं कि मैं भारतमाताकी स्वतन्त्रताकी बलिवेदीपर कुर्बान होने जा रहा हूं, इस प्रकार यदि मैं हज़ारों बारभी लटकाया जाता रहूं तो भी माताका ऋण नहीं उतार सकता। अच्छा, यदि इस जन्ममें माताकी दासताकी साँकुलोंको नहीं काट सका, तो दोबारा जन्म लेकर पुनः अंग्रेज़ी राज्यके विध्वंस-का यत्न करूँगा।"* जब आपके गलेमें फाँसीका फन्दा डालनेसे पूर्व नियमा-नुसार आपकी अन्तिम इच्छा पूछी गई, तो आपने कहा—"बर्मामें मृत शरीरों-को गाड़नेकी प्रथा है, मेरे शरीरको वैदिक धर्मानुसार अग्निके सुपुर्द करना। अच्छा, बन्देमातरम्।" यह कहा और गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते हुए फाँसी पर झूल गये।

---

* अँग्रेज मैजिस्ट्रेट, डाक्टर, पादरी, जल्लाद, सुपरिण्टैण्डैण्ट जेल तथा पोलीसकी विद्यमानता में मैजिस्ट्रेटने कहा—"पण्डित जी! हमें विशेष आदेश आया है कि यदि आप मौखिक क्षमा मांग लें तो फांसी रुक सकती है।" पण्डितजी ने उत्तर दिया—'अत्याचार अँग्रेज़ करें और क्षमा मैं मांगू? मुआफ़ी तो तुम्हें मांगनी चाहिये।'

(१७) श्री बलराज भल्ला—

आप, आर्यसमाजके वरिष्ट नेता, पंजाब भरमें विद्या प्रचारकोंके अग्रगण्य, सादगी-सरलता-सौजन्य-सौम्यताकी प्रतिमूर्ति, त्याग-तपस्याके प्रतीक श्री महात्मा हंसराजजीके बड़े सुपुत्र थे। क्रान्तिकारियोंके साथ सम्पर्कके कारण आपपर देहली षड्यन्त्र केसमें अभियोग चला और सरकारी सूत्रोंसे महात्माजीको इशारा दिया गया कि यदि आप गवर्नरको मिलें तो बलराजकी रिहाई सम्भव है। परन्तु उस स्थित-प्रज्ञ महात्माने इसके बाद वलराजजीको पत्र लिखा कि "आपने जो कुछ किया है उसके परिणामको प्रसन्नता पूर्वक भुगतने के लिये तय्यार रहो।" सरकारी अदालतके हुक्मसे आपको सात सालकी कड़ीकैद भुगतनी पड़ी। देश विभाजनके बाद आप डी. ए. वी. कालिज प्रबन्ध-कर्तृसभाके प्रधान और पञ्जाब भारतीय जन-संघके अध्यक्ष भी रहे।

(१८) श्री हरिकृष्ण जी—

२३ दिसम्बर, १९३० के दिन पंजाबके गवर्नर सर जाफ़री मौंटमोरेंसी पंजाब यूनिवर्सिटीकी कॉन्वोकेशनके अवसरपर अपना भाषण दे रहे थे उन्हें लक्ष्य रखकर उपस्थित भीड़मेंसे एक सनसनाती हुई गोली आई। यद्यपि निशाना चूक गया; परन्तु एक सुन्दर नव युवकको इस सन्दर्भमें गरिफ़तार करके उसपर मुकद्दमा चलाया गया। पोलीसने उसपर बहुत अत्याचार किये ताकि तंग होकर वह अपने किसी साथीका नाम बता दे; परन्तु वह बिल्कुल नहीं माना। दिसम्बरके दिनों लाहौरमें असह्य सर्दी होती है। उस कड़कती ठण्डीमें अभियुक्त हरिकृष्णको बर्फ़की बड़ी-बड़ी सिलोंपर लिटाया गया; परन्तु उस वीरपर इस अमानुषिक अत्याचारका भी कोई प्रभाव नहीं हुआ, वह हिमालयकी भांति अडिग रहा। २६ जनवरी, १९३१ को उसे फाँसीका दण्ड दिया गया। फाँसीसे एक दिन पूर्व उसके सम्बन्धी उसे मिलनेके लिये जेलमें आये। उनके सामने वीर हरिकृष्णने निम्न वक्तव्य दिया—"मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूं कि मैं एक बार फिर इस देशमें जन्म लूँ, ताकि विदेशी लुटेरोंके विरुद्ध मैं जंगको जारी रख सकूँ और इन्हें इस पवित्र भूमिसे निकाल वाहर करके अपनी मातृ-भूमिको स्वतन्त्र करा सकूं। मुझे विश्वास है कि ब्रिटिश शासक मेरी लाश आप (सम्बन्धियों) को नहीं देंगे। परन्तु यदि वे दे दें तो मेरा मृतक संस्कार सत्लुजके किनारे उसी मुकामपर किया जाय जहाँ कि शहीद सरदार भक्तसिंह, शहीद श्री राजगुरु और शहीद सुखदेवका अंतिम

संस्कार किया गया था और उन शहीदोंकी अस्थियों को जलप्रवाह किया गया था ।"[13]

(१९) **श्री रणवीरजी बी. ए.—**

पंजाबमें पोलिटिकल जागरण जोकि ला० लाजपतराय और सरदार अजीत सिंह, तथा आर्यसमाजके अन्य कर्मठ कार्यकर्त्ताओंके नेतृत्वमें व्यापक रूप धारण कर गया था, उस विप्लवी वर्ष १९०७ में आपका जन्म हुआ था।

आप, महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीसे साक्षात् प्रेरणा-प्राप्त आर्य्य-समाजकी पहली पीढ़ीके कर्मठ वयोवृद्ध महानुभाव श्री मुन्शी गणेशदासजी, जलालपुर जट्टां (पंजाब) निवासीजीके पौत्र, आर्य्यसमाजके समस्त सार्वजनिक अभियानोंमें सिरधड़की बाज़ी लगा देने वाले प्रसिद्ध आर्य नेता श्री महात्मा खुशहालचन्द 'खुर्सन्द' जो आजकल आर्यसमाजके महान् तपस्वी संन्यासी महात्मा स्वनामधन्य श्रीमहात्मा आनन्दस्वामी सरस्वतीके रूपमें विश्वभरमें अपनी चित्ताकर्षक मधुर वाणी द्वारा वैदिकधर्मके प्रचारमें रात-दिन एक किये हुए हैं, के ज्येष्ठ पुत्र हैं। आप डी. ए. वी. स्कूल और डी. ए. वी. कॉलिज लाहौरके योग्य स्नातक हैं। आप लाहौर विद्यार्थी परिषद् के १९२६ से १९३० तक मन्त्री रहे थे। श्री (बादमें नेताजी) सुभाषचन्द्र बोस इसके प्रधान थे। पंजाब यूनिवर्सिटी कान्वोकेशन १९३० के अवसरपर पंजाबके गवर्नर पर गोली चलानेके अभियोगमें फाँसी पाने वाले श्री हरिकिशनजीके साथ आपपर भी मामला चलाया गया था, जिसमें अंग्रेज़ सैशनजज ने १९३१ में मृत्यु दण्ड दिया था। लाहौरकी सैंट्रल जेलमें फाँसीकी कोठड़ीमें आपको आठ मास तक रखा गया था। पंजाब हाईकोर्टने आपको मार्च, १९३२ में कारा-मुक्त कर दिया था। पुनः सितम्बर १९३२ में पंजाब सुरक्षा विधेयकके अनुसार बन्दी बनाया गया और बंगाल रैगूलेशन III १८१८ के आधीन नज़रबन्द कर दिया गया था। श्री पंडित रामप्रसाद 'बिस्मिल', श्री पं० चन्द्र शेखर 'आज़ाद', श्री सरदार भक्त सिंहजी तथा श्री अशफाकुल्लाखानकी हिन्दुस्थान रीपब्लिकन आर्मीके प्रमुख कार्यकर्ता रहे। १९३४ से आपने दैनिक मिलापमें लेख लिखना आरम्भ किये। महात्मा आनन्द स्वामीजीने इन्हें १९५३ से मिलापका मुख्य सम्पादकत्व सौंप रखा है। आप उतम कहानी लेखक तथा उपन्यास कर्त्ता हैं और लग-भग चार दर्जन पुस्तकोंके सम्पादक हैं। भारतवर्षकी लम्बी यात्राओं-के अतिरिक्त आपने योरुप, अमरीका और एशियाके २०-२५ देशोंका भ्रमण भी किया है।

(२०) **श्री खुशीरामजी—**

आप ग्राम पिण्डी सैदपुर, ज़िला जेहलम (अब पाकिस्तानमें) के श्री भगवानदास अरोड़ाके सुपुत्र थे । किशोरावस्थामेंही आपके सिरसे पिताका साया उठ गया । परिणामतः आपको आर्य अनाथालय लाहौरमें प्रविष्ट होना पड़ा । वहाँ विधिवत् पालन-पोषणके साथ ही आपको वैदिक धर्मकी दीक्षा भी प्राप्त होती रही । मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करनेके बाद आप डी. ए. वी. कॉलिज लाहौरमें प्रविष्ट हुए । आपका शरीर व्यायाम एवं ब्रह्मचर्य सेवनके कारण हृष्ट-पुष्ट तथा सुडौल बन गया था, जिस कारण आपको 'भीम' के उपनाम से स्मरण किया जाता था ।

भारतकी सैण्ट्रल ऐसेम्बलीने क्रान्तिकारी आन्दोलनोंको दबानेके लिये रऊलेट-एक्ट नामका कुख्यात् विधायक स्वीकृत किया था, जिसमें 'न वकील, न दलील, न अपील'—कुछ भी नहीं होता था । पंजाबमें भी इसके विरुद्ध सार्वजनिक आन्दोलन भड़क उठा । ६ अप्रैल, १९१९ को लाहौरके विद्यार्थियों-का पहला भारी जलूस निकला । तदुपरांत १२ अप्रैल के जलूसका नेतृत्व हाथमें झण्डा उठाये श्री खुशीराम कर रहे थे । सरकारी सेना वहां सन्नद्ध खड़ी थी । कमाण्डरने गोली चला दी; परन्तु वीर खुशीराम अबाध गतिसे आगे-ही-आगे बढ़ते गये । पहली गोली लगनेपर ही आपने सिंह गर्जना करते हुए कहा—"मरना तो एक बार ही है, फिर पीछे क्यों हटें, वीरों-की तरह क्यों न मरें ?" फ़ौजियोंने निरन्तर गोली वर्षा जारी रखी । नौ गोलियाँ खाकर यह वीर शहीद होकर वीरगति को प्राप्त हुआ । शहीद होते समय इनकी आयु केवल १९ वर्ष की थी ।

(२१) **श्री पण्डित हरिश्चन्द्रजी—**

आप श्री महात्मा मुन्शी राम जी, गवर्नर गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, (बादमें हुतात्मा श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी) के ज्येष्ठ सुपुत्र थे । आप उक्त विश्वविद्यालयके प्रथम स्नातक थे । आप प्रचण्ड विचारोंके क्रान्तिकारी युवक थे । इसी क्रममें आप विदेश चले गये और ऐसे अदृश्य हुए कि आपकी धर्म-पत्नीने संसारका पत्ता-पत्ता छान मारा; परन्तु वे कहीं नहीं मिले । अनुमान है कि कहीं विदेशमें ही शहीद कर दिये गये होंगे ।

(२२) **श्री सरदार भक्तसिंह जी—**

आप ग्राम खटकर-कलां-झण्डाजी ज़िला जालन्धर (पंजाब) के रहने वाले थे । आपके पूज्य पितामह सरदार अर्जुन सिंहजी महर्षि स्वामी दयानन्द

जीके उपदेशोंसे प्रभावित होकर आर्य समाजमें सम्मिलित हुए थे। आपने एक पुस्तक लिखकर सिद्ध किया था कि दसों गुरु साहिबान यज्ञोपवीतधारी पक्के हिन्दु थे। आपके सुपुत्र (श्री सरदार भक्तसिंहजीके पूज्य पिता) सरदार किशनसिंहजीपर महर्षि दयानन्द और आर्यसमाजका ऐसा रंग चढ़ा कि आप आर्यसमाजके प्रचारक ही बन गये। और आर्यसमाज द्वारा स्थापित अनाथाश्रम लाहौरके सुपरिदर्शक का काम भी करते रहे। आपके भाई (सरदार भक्तसिंह जीके चचा) सरदार अजीतसिंहजी भी दृढ़ आर्यसमाजी थे। महर्षि तथा आर्य-समाजकी शिक्षाओंसे ही आपने देशभक्तिका पाठ पढ़ा था और १९०७ ई० में पंजाब केसरी ला० लाजपतराय जैसे प्रसिद्ध आर्यनेताके साथ मिलकर पंजाब भरमें क्रान्तिकी ज्वाला प्रचण्ड की थी। आप विदेश चले गये और आयु-भर भारतकी स्वतन्त्रताकी लड़ाई विदेशोंमें बैठकर लड़ते रहे। देशकी स्वतन्त्रतासे कुछ ही समय पूर्व वे स्वदेशसे लौटे और थोड़ी ही देर बाद डलहौजीमें स्वर्गवास हो गये। आपके छोटे भाई सुवर्णसिंह भी आर्यसमाजके विचारों वाले महानुभाव थे।

ऐसे दृढ़ आर्य परिवारमें जन्म लेकर आपने होश सम्भाला और डी. ए. वी. हाई स्कूल लाहौरमें शिक्षा ग्रहण की। आप आर्ययुवक समाज लाहौरके मन्त्री भी रहे। आर्यसमाजके महोपदेशक, शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्कभास्कर ने आपको यज्ञोपवीत और गुरुमन्त्र दिया।

ब्रिटिश सरकार द्वारा स्थापित साईमन कमिशन जब लाहौर पहुंचा, तो उसके विरोधमें पंजाब केसरी श्री लाला लाजपतरायजीके नेतृत्वमें एक भारी जलूस निकला जिसने रेलवे स्टेशनपर उक्त कमिशनके विरुद्ध प्रदर्शन किया। जलूसपर बे-तहाशा लाठीवर्षा की गई। अंग्रेज़ कप्तान पोलीस स्कॉट-ने स्वयं श्री लालाजीपर लाठी-प्रहार किये। इसपर पंजाब केसरीने भविष्य-वाणी की कि 'मेरे शरीरपर लगने वाली लाठियाँ अंग्रेज़ी साम्राज्यके ताबूतमें अन्तिम कील सिद्ध होंगी।'

अपने महान् नेताका यह अपमान सहन न करते हुए क्रान्तिकारियोंके हृदयोंमें प्रतिकारकी भावनाएँ धधक उठीं। निर्णयानुसार सरदार भक्तसिंहजी तथा उनके सहयोगी वीरवर श्री सुखदेव जी तथा श्री राजगुरु जी एवं पं० चन्द्रशेखर 'आज़ाद'ने बदलेकी भावनासे प्रेरित होकर स्कॉटकी हत्याका संकल्प कर लिया। नियत समयपर वे वीर इस प्रतीक्षामें थे कि साहब अपने कार्यालय से, जो कि डी. ए. वी. कॉलिज लाहौरके सामने ही था, बाहर निकले और ये

चारों क्रान्तिकारी अपने हृदयोंमें प्रज्वलित प्रतिकाराग्निको उसके गर्म-गर्म लहू-से शांत करें। सांयकालके धुंधलकेमें एक साहब सरकारी वर्दी पहने नियत समयपर ऑफिससे बाहर निकला। निकलते ही राजगुरुने उसे रिवाल्वरका निशाना बना दिया। दुर्भाग्यसे वह स्कॉट नहीं, सांडर्स था। अपराधीको दण्ड देकर ये वीर अदृश्य हो गये। चन्नणसिंह जो इन वीरोंका पीछा कर रहा था, श्री आज़ादके माऊज़रका निशाना बना।

रू-पोशीके दिनों आप तीन मासतक आर्यसमाज मन्दिर कार्नवालिस-स्ट्रीट, कलकत्तामें रहे। उनके चले जानेके बाद समाजके सेवक तुलसीरामने बताया कि जाते समय अपना परिचय देते हुए आप अपनी थाली और कटोरा यह कहकर छोड़ गये थे कि 'देश-धर्मकी सेवा करने वाले जो सज्जन यहां ठहरें, यह बताते हुए कि 'ये बर्तन भक्तसिंहके हैं, उन्हें इनमें भोजन खिलाया करना।'

आपने अपने क्रान्तिदलकी ओरसे स्वातन्त्र्य वीर सावरकर द्वारा लिखित सुविख्यात ग्रन्थ "भारतका प्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम' (जिसे सरकारने छपने से पूर्व ही ज़ब्त कर रखा था) जिसे क्रान्तिकारियों की गीता कहा जाता था, सरकारी आज्ञाके प्रतिकूल छपवाया और अपने सदस्योंमें वितरित किया।

रू-पोशीके दिनों देहलीकी सैण्ट्रल ऐसेम्बलीमें, जिसके अध्यक्ष श्री विट्ठल-भाई पटेल थे, अपने मित्र श्री बटुकेश्वर दत्तके सहयोगसे इजलासके मध्यमें बम्ब फैंके और उच्च स्वरसे घोषणा की कि "हमने ये बम्ब किसीको क्षति पहुंचानेके लिये नहीं फैंके, प्रत्युत कानोंसे बहरी सरकारतक अपनी आवाज़ पहुंचानेके लिये यह साहस किया है।" असेम्बलीमें हर तरफ़ भगदड़ मच गई; परन्तु ये दोनों वीर अविचल समाधिमें मग्न योगीकी भाँति अपने स्थानपर डटे रहे और हँसी-खुशी अपनी गरिफ्तारी दे दी।

सांडर्स हत्याके अभियोगमें आपपर मय अपने दोनों सहयोगियों—श्री सुखदेवजी और श्री राजगुरुजी — लाहौरकी सैण्ट्रल जेलमें मुकद्दमा चलाया गया। पं० चन्द्र शेखर 'आज़ाद' तो पोलीसके हाथ नहीं आये थे। यह मुकद्दमा आपने कुछ इस ढंगसे लड़ा कि देशभरमें क्रान्तिकी ज्वालाएँ तीव्रतर हो उठीं।

इन तीनों देशभक्त युवकोंको फाँसीका दण्ड दिया गया। इन फांसियों-के विरोधमें सारा देश आन्दोलित हो उठा। जनताकी तीव्र इच्छा थी कि किसीभी प्रकार इन बहुमूल्य जीवनोंकी रक्षा की जाय। उन्हीं दिनों गाँधी-इर्विन पैक्ट (समझौता) होने जा रहा था। पब्लिकने महात्मा गांधी से अनु-

रोध पूर्वक निवेदन किया कि समझौतेकी शर्तोंमें इन तीनों युवकोंकी रिहाईकी शर्त भी अवश्य रक्खें। विश्वस्त सूत्रोंके आधारपर यह आम चर्चा थी कि वाइसराय लार्ड इर्विन यह शर्त माननेको उद्यत भी थे; परन्तु महात्मा गांधीने अपनी भ्रान्त धारणाओंपर आधारित झूठी अहिंसाको समक्ष रखते हुए और यह कहते हुए कि 'हिंसावादी लोगोंकी मैं सहायता नहीं कर सकता,' लोगोंकी सर्वसम्मत माँगको तिरस्कार पूर्वक ठुकरा दिया था। परिणामतः तीनों क्रांति-कारी वीर योद्धाओंको, जिन्होंने देशको "इन्कलाब ज़िन्दाबाद अर्थात् क्रान्ति अमर रहे" का सूत्र दिया था, २३ मार्च, सन् १९३१ के दिन सैण्ट्रल जेल लाहौरमें फाँसीपर लटका दिया गया। जनताकी तीव्र प्रतिक्रियासे भयभीत होकर जेलकी पिछली दीवार फाड़ी गई और तीनोंके शव पोलीसकी गाड़ीमें बाहर निकाले गये और रातके अंधेरेमें फीरोज़पुर-पुलके निकट सत्लुज नदीके पश्चिमी (दायें) तटपर मिट्टीका तेल डालकर तीनोंको जला कर उनकी अस्थि-भस्म आदिको नदीकी उत्ताल तरंगोंमें बहा दिया गया। अब लोकमतसे प्रभावित होकर 'अहिंसावादी' कांग्रेस सरकारने उक्त तीनों शहीदों का एक स्मारक निर्मित तो कर दिया है परन्तुवह इनकी शान के योग्य नहीं है। श्री बी. के. दत्तकी समाधि भी वहाँ पर ही बना दी गई है।

ये शहीद अदालतमें पेशीपर जाते हुए नित्यप्रति श्री पण्डित राम प्रसाद 'बिस्मिल' का निम्न गीत गाते जाया करते थे—

शहीदों की चिताओंपर लगेंगे हर बरस मेले
वतनपर मरनेवालोंका यही दायम निशाँ होगा।

अब उक्त भविष्यवाणीके अनुसार शहादतके दिन २३ मार्चको वहाँ भारी मेला भरता है, जिसमें देशके विभिन्न भागोंसे हज़ारों लोग श्रद्धाञ्जलि भेंट करने पहुंचते है।

(२३) **श्री सुखदेवजी**—

आप प्रसिद्ध आर्यसमाजी थापर परिवार के रत्न थे। आप हर बातमें सरदार भक्तसिहजीके क्रान्तिकारी दलमें पूरा सहयोग देने वाले, सांडर्सके वधके समयभी उनके साथी, मुकद्दमेमें भी शामिल, फाँसी तथा अन्त्येष्टिमें भी साथ ही रहने वाले आर्य-विचारोंके बलिदानी युवक थे। देश, धर्म और जाति को इसी प्रकारके नर-रत्नोंपर सदा गर्व रहा करता है। धन्य हैं वे वीर-प्रसविनी माताएँ जो इस प्रकारके देश-हितैषी, धर्म-प्रेमी, जाति-हितचिन्तक सुपूतोंको जन्म देकर अपनी कोखको समुज्ज्वल करती हुई देश, धर्म और जाति-

को अमरत्व प्रदान करने का माध्यम बनती हैं। प्रभु हमारे देशमें ऐसी माताएँ और उनकी ऐसी सन्तानें उत्पन्न करते रहें ताकि देशका भविष्य उज्जवल बन सके।

(२४) श्री यशपालजी—

आप कांगड़ा निवासी हैं। आपकी विधवा माताजी आपको मुल्तान ले आई। इनका परिवार आरम्भसे ही आर्य समाजी था। इनकी माताजी आर्य-कन्या-पाठशालामें पढ़ाती थीं। आपको शिक्षा प्राप्त्यर्थ गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वारमें प्रविष्ट करा दिया गया, जहाँ इन्हें निःशुल्क शिक्षा मिलती थी। गुरुकुल वासके कारण आपके विचार दृढ़ हो गये। यहाँकी जल-वायु इन्हें अनुकूल नहीं बैठी, इसलिये पढ़ाई छोड़कर इन्हें वापस लौटना पड़ा। इनकी पूज्यमाताजी अब लाहौरमें आर्य कन्यापाठशालाकी अध्यापिका बन गई थीं। अतः इन्हें लाहौरके नैशनल कॉलिजमें भर्ती करा दिया गया। लाहौरसे इनकी माताजी फीरोज़पुरकी आर्यकन्यापाठशालामें पढ़ाने लगीं, यशपालजीभी कुछ समयके लिये अपनी माताजीके पास चले गये और वहाँ आर्यसमाज और आर्यकुमार सभाके कार्यक्रमोंमें रुचिपूर्वक भाग लेते रहे। आप क्रान्तिकारी दलमें सम्मिलिय हो गये और पार्टीके आदेशानुसार वायसरायकी स्पैशल ट्रेनको उड़ानेकी योजनाको कार्यान्वित करनेका भार आपको सौंपा गया। आप साधुवेषमें दीर्घ-कालतक कुटिया बनाकर पुराना किला दिल्लीके निकट रहते रहे। दिनभर 'भक्तों' से सम्पर्क और रातको योजनाके कार्यान्वियनमें संलग्नता—दूरतक ज़मीन खोदना, उसमें बिजलीकीतारों को दबाना, रेलवेकी पटड़ीके नीचे बम्बों तथा अन्य विस्फोटक द्रव्योंका गाड़ना और तारद्वारा अपनी कुटियाके अन्दर स्विच आदिका प्रबन्ध करना आदि। वायसरायकी स्पैशल ट्रेन आई कुटियामें-से यशपालजीने स्विच दबाया और ट्रेनका पिछला भाग उड़ गया। वायसराय बच गये क्योंकि वे अगले डिब्बोंमें थे। इस घटनाके तुरन्त बाद आपने पोलीस अफ़सरकी यूनिफ़ार्म पहनी और खटा-खट करते शहरको चल दिये। पोलीसको रेल-दुर्घटनाका पता चला तो वह सदल-बल घटना-स्थलको आ रही थी कि आप उन्हें मार्गमें मिल गये। पोलीस अफ़सरकी वर्दीमें सुसज्जित यशपालको देखकर सिपाहियोंने उन्हें सलूट मारा। आपभी विधिवत् उसे स्वीकार कर आगे चल दिये। तत्पश्चात् आप भूमिगत् हो गये। इसीअज्ञातावस्थामें इलाहाबादमें एक मकानमें आपकी पोलीसके साथ भिड़न्त हो गई। दोनों ओरसे गोलियाँ चलती रहीं। अन्ततः आप गरिफ्तार कर लिये गये और आजन्म कारावासके दण्डके भागी बने। परन्तु कांग्रेसका मन्त्रीमण्डल बननेपर आप विमुक्त कर दिये गये।

(२५) श्री हंसराज वायरलैस—

आप लायलपुरके रहने वाले हैं। आपकी पूज्या माताजी बचपनमेंही अनाथ हो गई थीं। श्री स्वामी श्रद्धानन्दजीने उसे आर्यकन्या महाविद्यालय जालन्धरमें पढ़ाया और शिक्षाकी समाप्तिपर उसका विवाहभी श्री स्वामीजीने ही कराया था। "माताजी प्रतिदिन हवन करतीं तथा आर्यसमाजके कार्योंमें बढ़-चढ़कर भाग लिया करती थीं। एक पुत्रको उन्होंने गृहस्थ बनाकर दूसरोंका आश्रय बनाया; दूसरेको धर्मकी सेवाका कार्य सौंपा और मुझे राष्ट्रकी सेवामें अर्पण कर दिया। वह मुझको आर्यसमाजमें ले जाया करती थीं और मुझे कहा करती थीं कि तू अधिक से अधिक आर्यसमाजका सम्पर्क कर; क्योंकि उससे नवजीवन मिलेगा। अन्तमें आपने कहा कि आर्यसमाजने नजाने मुझ जैसे कितने युवकोंको देश-धर्मके दीवाने बना दिया।"

(भा. स्वा. सं. में आर्य समाजका योगदान, पृष्ठ १८०)

आप पंजाबके यशस्वी क्रान्तिकारी आन्दोलनमें जी-जानसे सम्मिलित हो गये। बचपनसे ही आपकी रुचि वैज्ञानिक परीक्षणोंकी तरफ़ थीं। दुनियाने सम्भवतः अभी बेतार-बर्क़ी (Wireless) का नाम भी न सुना था जब कि आपने अपनी घरेलू प्रयोगशालामें इस अद्भुत् वैज्ञानिक तथ्यका अनुसन्धान कर लिया था। आपने कई छोटे-छोटे यन्त्रोंका आविष्कारभी कर डाला था। कई स्थानों-पर इनका प्रदर्शनभी किया करते थे। आपके दलने निर्णय किया कि गुप्त रूपमें ब्रिटिश सरकारको आंतकित करनेका कोई उत्तम उपाय बनाइये। इसके लिये आपने टाइम-बम्ब (निश्चित समयपर स्वयमेव विस्फोटित होजाने वाला गोला) का आविष्कार कर दिया और ऐसा प्रबन्ध किया गया कि एक निश्चित समय पर अनेक स्थानोंपर यह विस्फोट हो जाय। तदनुसार अमृतसर, लाहौर और रावलपिण्डीमें एकही समयपर ये बम्ब फटे और कोई गरिफ़्तारी भी नहीं हो सकी; क्योंकि ये बम्ब बन्द कोठड़ियोंमें फटे थे। तत्पश्चात् कई चमत्कार पूर्ण आविष्कारोंका प्रदर्शन करनेके बाद आप भी शेष साथियोंके साथ अदृश्य हुए, पकड़े गये और जेल यातनाएँ सहन करते रहे। कुछ समयसे आप जालन्धरमें रहने लगे हैं।

(२६) श्रीपण्डित जगदीशचन्द्र जी शास्त्री—

प्रथम विश्वयुद्धकी ज्वालाएँ शान्त हुईं तो संसारमें इन्फ्लूएन्ज़ाका घातक रोग फैल गया, जिससे लाखों प्राणी देह त्याग गये। अमृतसरपर भी इसका घोर आक्रमण हुआ। उस अवसरपर जन-सेवाके विचारसे कुछ आर्य

महानुभावोंने परस्पर विचार-विमर्शके बाद 'आर्य सर्व हितकारिणी सभा' का संगठन किया। सर्वप्रथम इसके आधीन 'श्रीमद्दयानन्द फ्री औषधालय' खोला गया जो आजतक निरन्तर सेवा कार्यमें संलग्न हैं। कुछ समय बाद एक फ्री रात्रि पाठशालाका आयोजन किया गया, जिसमें आर्ययुवक समाज लोहगढ़के सदस्य निःशुल्क अध्यापन कार्य किया करते थे। और फिर गण्डासिंहवाला ग्राममें संस्कृत पाठशाला और अन्ततः श्रीमद्दयानन्द अरबी संस्कृत महाविद्यालय-की स्थापना की गई। श्री पं० जगदीशचन्द्रशास्त्री दर्शनाचार्य इसके आचार्य-पदको सुशोभित करते रहे। आप अरबी, फ़ारसी, संस्कृत तथा अंग्रेज़ीके प्रगल्भ विद्वान् थे।

आर्यसमाजके समस्त विरोधियों और विशेषतः मुसलमानोंके साथ शास्त्रार्थ किया करते थे। रमदास ज़िला अमृतसरके पास एक छोटे-से ग्राम घोनेवालामें आपने अहमदी प्रचारकके साथ 'वेद इल्हामी या क़ुरआन' के विषयपर शास्त्रार्थ किया और लगभग दस-बारह हज़ार हिन्दु-मुसलमानोंकी हाज़रीमें मिर्ज़ाई मौल्वीको वह पटखनी दी कि वह फिर किसी आर्य विद्वान्के साथ शास्त्रार्थ करनेका साहस ही नहीं बटोर सका। यह शास्त्रार्थ लेखकके प्रधानत्वमें हुआ था। आचार्य पं० देवप्रकाशजी, ठाकुर अमर-सिंहजी आर्य मुसाफ़िर (आजकल महात्मा अमर स्वामी), स्वर्गवासी मौलाना सत्यदेव आदि कई अन्य विद्वान् भी उपस्थित थे।

महाविद्यालयमें अध्यापन कार्य छोड़कर आप क्वेटे (बलोचिस्तान) चले गये और चिकित्साका कार्य करने लगे। आप श्री पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' सरदार भक्तसिंह, श्री सुखदेव और राजगुरु आदि शहीदोंके मित्र थे। इन सब-की फाँसीके पश्चात् कुछ मनचले युवकोंने क्वेटामेंही इनके नेतृत्वमें क्रान्तिकारी दलका संगठन किया। शस्त्रास्त्र आपने ही सबको दिला दिये और शस्त्र-संचालन भी स्वयंमेव सिखाया। निश्चय हुआ कि कोई भारी ऐक्शन किया जाय। औषधालय बन्द करके आप दलके युवकोंके साथ प्रस्थान करनेपर उद्यत हो गये; परन्तु किसी गुप्तचरकी रिपोर्टपर वहाँ ही पकड़ लिये गये। रेलमें बिठा-कर पोलीस इस क्रान्तिकारी दलको स्यालकोट ले जा रही थी कि इन्होंने आंखोंके इशारोंसे ही तय कर लिया कि स्यालकोट पहुंचनेसे पहलेही पोलीसपर दना-दन करके स्वयं भाग खड़े हों। ५ मई, १९३१ के दिन ऐसा ही किया गया। गोली-बारीमें एक-दो सिपाही हताहत हुए और ये लोग अदृश्य हो गये। एक साथी गाड़ीमें ही रह गया, वह पकड़ा गया और उसने सबके नाम-पते बता

दिये। सबके वारण्ट निकल गये और पकड़ने-पकड़ाने वालोंकेलिये इनामकी भी घोषणा हो गई। यत्न करनेपर भी ये लोग पोलीसके हाथ नहीं आये।

भूमिगत् रहते हुए आपको पता चला कि श्री पं० मुक्तिरामजी (आचार्य गुरुकुल चोहा भक्तां जो बादमें रावलपिण्डीमें ले जाई गई थीं) भी क्रान्तिकारी विचारोंके महात्मा हैं। आप अज्ञातवासके कुछ दिन सुविधापूर्वक काटनेके लिये वहां गये। उन्हें यह भी पता चला कि सरदार भक्तसिंह तथा श्री सुखदेवको क्रान्तिका मार्ग दर्शाने वाले यही महात्मा हैं। पोलीस उक्त गुरुकुलके पीछे पड़ी हुई थी, अतः वहाँ रुकना उपयुक्त नहीं था। चलते समय आपने एकसौ रुपया आचार्य जीको दिया ताकि उनके परिवारको पहुंचा दें। कितने साहसका काम है कि श्री आचार्यजी स्वयं रावलपिण्डीसे जण्डियाला गुरु, ज़िला अमृरसर गये और सान्त्वना देते हुए वह रकम भी आपकी स्त्रीको भेंट कर आये।

पुराने घनिष्ट सम्बन्धोंके कारण पण्डितजी अज्ञातवासके दिनों भी कभी-कभी लेखकको उसके आर्यप्रेस हाल बाज़ार अमृतसरमें दर्शन दे जाया करते थे। सफ़ैद कपड़ों वाले साधुके वेशमें, दाढ़ी और सिरके बाल बढ़े हुए, थैलेमें पिस्तौल या रिवाल्वर, रहस्यमयी आकृति। आपकी धर्मपत्नी अपने मायके जण्डियाला गुरु (अमृतसर) में रहा करती थीं। आप कभी-कभी वहाँ भी पहुंच जाया करते थे। उत्तरा-खण्ड, कांगड़ा आदि प्रान्तोंका भ्रमण करते-करते मध्य-प्रदेश स्थित 'बिलासपुर' नगरमें जा पहुंचे। यहाँ आप विद्यारत्न न्यायभूषणके नामसे अध्यापनका कार्य करते थे। उनकी एक नन्हीं-मुन्नी कन्या थी। आपकी आज्ञानुसार उनकी धर्मपत्नीको मय उसकी गोदवाली कन्याके (एक सिलाई मशीनका पहलेही प्रबन्ध कर दिया गया था ताकि उनकी धर्म-पत्नीका हाथ चलता रहे) बिलासपुर भेज दिया गया।

अखिल भारत हिन्दुमहासभाका वार्षिक अधिवेशन सम्भवतः १९४४ में स्वर्गवासी डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जीकी अध्यक्षतामें बिलासपुरमें हुआ। लेखक भी उक्त अधिवेशनमें सम्मिलित हुआ और पण्डितजीके गृहपर उनके दर्शनार्थ उपस्थित होता रहा।

स्वतन्त्रता प्राप्तिके उपरान्त जब पुराने वारण्ट आदि रद्द हुए तब आप जगाधरी (यमुनानगर) में स्थाई रूपसे रहने लगे। कुछ वर्ष पूर्व सार्व-देशिक आर्य प्रतिनिधिसभाके माननीय प्रधान श्री सेठ प्रतापसिंहजी-शूरजी वल्लभदास बम्बईके महान् यज्ञमें सम्मिलित हुए। वहाँ दिलका दौरा पड़ा और यह देव-पुरुष हमसे छिन गये।

४–निष्कर्ष

चतुर्थ श्रेणीके स्वदेश, स्वधर्म, स्वदेशी, स्वावलम्बन और स्वातन्त्र्यके पंच-सूत्री प्रोग्रामको लक्ष्य रखकर सर्वस्व बलिदानी क्रान्तिकारी वीरोंमें

(१) श्री पं० श्यामजी कृष्णवर्मा—

महर्षिके अनन्यभक्त, पट्ट शिष्य, उनकी परोपकारिणीसभाके वरिष्ट सदस्य और उनहीकी प्रेरणा तथा आदेशसे संस्कृत और वेदका अध्यापन करनेके लिये विदेशों (इङ्गलैण्ड) में गये थे, अतः निस्सेन्देह आपके प्रेरणास्रोत सीधे तौर पर थे— **महर्षि दयानन्द**

(२) श्री स्वातन्त्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर—

पं० श्यामजी कृष्ण वर्माके शिष्य और उन्हींके द्वारा स्थापित इण्डिया हाऊस लण्डन का प्रबन्ध करने और उन्हींकी प्रेरणासे अन्य हिन्दुस्थानी युवकों को देशभक्तिकी तीव्र भावनाओं का पाठ पढ़ाने वाले स्वामी दयानन्दको दादा-गुरु मानने वाले थे अतः सावरकरजीके पं० श्यामजी द्वारा प्रेरणा-स्रोत थे— **महर्षि दयानन्द**

(३) श्रीमदनलाल ढींगरा ऐञ्जीनियर—

पं० श्यामजी द्वारा स्थापित इण्डिया हाऊसमें श्री वीर सावरकरकी शिक्षा-दीक्षामें रहने वाले, उन्हींसे प्रेरणा प्राप्त और पं० जी महर्षिके शिष्य, अतः ऐञ्जीनियर महोदयके प्रेरणा-स्रोत भी थे— **महर्षि दयानन्द**

(४) नेताजी सुभाष चन्द्र बोस—

स्वातन्त्र्यवीर सावरकरकी सीधी प्रेरणासे विदेशों (जर्मनी-जापान) में गये और अंग्रेजोंकी हिन्दुस्थानी फ़ौजोंपर आक्रमण किया। सावरकर जी पं० श्यामजी से और पं० श्यामजी महर्षिके शिष्य अतः नेताजी सुभाषचन्द्रके प्रेरणा स्रोत भी थे— **महर्षि दयानन्द**

(५) श्री बा. रासबिहारीबोस—

सावरकर जीके अभिन्नमित्र, उन्हींके परामर्शसे इण्डियन नैशनल आर्मी (I. N. A.) के संस्थापक, आपकी प्रेरणासे ही सावरकर जीने सुभाष बाबू को विदेश भेजा और सावरकर पं० श्यामजी के शिष्य, अतः उनके भी प्रेरणा-स्रोत थे— **महर्षि दयानन्द**

(६) श्री पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल'
(७) श्री ठा. रोशनसिंह
(८) श्री पं० गेंदालाल
(९) श्री पं० चन्द्रशेखर 'आज़ाद'*

सब आर्यसमाजसे प्रेरणा-प्राप्त अतः उनके प्रेरणा स्रोत तो थे ही— **महर्षि दयानन्द**

(१०) **श्री अशफ़ाकुल्लाखाँ**—

आर्यसमाजके अनन्यभक्त श्री पं० राम प्रसाद 'बिस्मिल'के शिष्य, प्रायः आर्य समाजमन्दिरमें जाने और पं० जीसे देशभक्ति एव क्रान्तिकारी विचारोंकी शिक्षा लेने वाले और पण्डितजी महर्षि दयानन्द और उनकी शिक्षाओंको कार्यान्वित करने वाले, अतः खाँ साहिबके प्रेरणा-स्रोत भी श्री पण्डित जीके माध्यमसे ठहरते हैं— **महर्षि दयानन्द**

(११) **देवता स्वरूप श्री भाई परमानन्दजी**—

आर्य समाजके नेता, डी. ए. वी. कॉलिज लाहौरके प्राध्यापक (आजीवन सदस्य) देश-विदेशमें आर्यसमाज और महर्षिकी विचारधाराके प्रचारक थे, अतः उनके प्रेरणा-स्रोत भी थे— **महर्षि दयानन्द**

(१२) **श्री मास्टर अमीरचन्द जी**
(१३) **श्री मास्टर अवध बिहारी जी**
(१४) **श्री भाई बालमुकन्द जी**
(१५) **श्रीमती राम रक्खी देवी जी**

***आज़ाद जीकी निर्भीक विनोद–प्रियता**

काकोरी डाकाके बाद आप भूमि-गत् हो गये थे। आपको पकड़ने-पकड़वाने वालोंके लिये भारी इनामकी घोषणाएँ हो चुकी थीं। पोलीस थानोंमें इश्तहार लग चुके थे। एक दिन आप अपने कुछ सहकारियोंके साथ एक थानेमें जा घुसे और इश्तहार पढ़ने लगे। पढ़ते-पढ़ते साथियोंको कहने लगे—'यार! मूंगफलीके व्यापारमें तीन हज़ारका टोटा पड़ गया है; पता जले तो इस सालेको पकड़वा दें ताकि घाटा पूरा हो सके।' एक साथी बोला— 'यदि उसने गोली मार दी, तब क्या करोगे?' पास बैठा पोलीस अधिकारी बोल उठा —'भाई! यही तो मुसीबत है उसकी गोलीके अचूक निशानेके डरके मारे ही अभी तक उसे पकड़ा नहीं जा सका अन्यथा कबका उसे पकड़ लिया गया होता!' इतना डर था आपकी अचूक निशाना-बाज़ीका!

ये सब आर्यसमाजी थे, अत: इन सबके और श्री भाई परमानन्दके भाई श्री भाई बालमुकुन्दकी धर्मपत्नीके प्रेरणा-स्रोत थे— **महर्षि दयानन्द**

(१६) श्री पं० सोहनलाल जी पाठक—

श्री महात्मा हंसराजजी तथा श्री ला० लाजपतराय जी से प्रभावित, डी. ए. वी. हाई स्कूल तथा आर्य विद्यार्थी आश्रम लाहौरके अध्यापक। अत: आपके प्रेरणा-स्रोत भी थे— **महर्षि दयानन्द**

(१७) श्री बलराज जी बल्ला—

श्री महात्मा हंसराजजीके ज्येष्ठ सुपुत्र (बादमें डी. ए. वी. कॉलिज प्रबन्ध कर्त्रीसभाके प्रधान) महात्माजी स्वयं महर्षि के उपासक अत: बलराजजी के प्रेरणा-स्रोत भी थे— **महर्षि दयानन्द**

(१८) श्री हरिकिशन जी—

श्री (१९) रणवीरजी के साथी, सहयोगी जो महात्मा आनन्द स्वामी जीके ज्येष्ठ पुत्र, आर्य परिवार के लाल, अत: श्री हरिकिशनजीके भी प्रेरणा-स्रोत थे— **महर्षि दयानन्द**

(१९) श्री रणवीर जी—

महर्षि दयानन्दसे साक्षात् प्रभावित श्री स्वामी नित्यानन्दजीके शिष्य श्री मुन्शी गणेशदासजीके पौत्र, आर्य समाजके तपस्वी संन्यासी, देश-विदेशमें महर्षिके मिशनके प्रचारक श्री महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वतीके ज्येष्ठ पुत्र। अत: उनके प्रेरणा-स्रोत भी— **महर्षि दयानन्द**

(२०) श्री खुशीराम जी—

आर्य अनाथालय लाहौरमें पालित-पोषित, डी. ए. वी. कॉलिजके विद्यार्थी तथा वहाँके विद्यार्थी आन्दोलनके नेता अत: उनके प्रेरणा-स्रोत भी— **महर्षि दयानन्द**

(२१) श्री पं० हरिश्चन्द्र जी—

श्री महात्मा मुन्शीराम जी(बादमें स्वामी श्रद्धानन्द जी)के ज्येष्ठ सुपुत्र, गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वारके प्रथम स्नातक। अत: उनके प्रेरणा-स्रोत भी थे— **महर्षि दयानन्द**

(२२) श्री सरदार भक्तसिंह जी—

महर्षिसे दीक्षित सरदार अर्जुनसिंह जीके पौत्र, आर्यसमाजके वरिष्ठ प्राचीन प्रचारक स० किशनसिंह जीके सुपुत्र, विश्व विख्यात आर्य समाजी

देशभक्त सरदार अजीतसिंहजीके भतीजे, स्वयं डी. ए. वी. हाई स्कूल लाहौर के विद्यार्थी, आर्य युवक समाजके मन्त्री, आर्य महोपदेशक श्री पं० लोकनाथजी के हाथसे यज्ञोपवीत धारण करने वाले, जन्मसेही आर्य विचारोंके वातावरण- में पालित-पोषित । अतः उनके प्रेरणा-स्रोतभी निस्सेन्देह थे— **महर्षि दयानन्द**

(२३) **श्री सुखदेवजी**—

प्रसिद्ध थापर आर्य परिवारके सुपूत, परिपक्व आर्य विचारोंके नवयुवक, हुतात्मा श्री सरदार भक्तसिंह जीके संगी-साथी, समस्त क्रान्तिकारी कार्योंमें उनके सहयोगी और अन्तमें उनके साथही बलिवेदीपर न्योछावर होने वाले शहीद अतः उनकेभी प्रेरणा-स्रोत थे— **महर्षि दयानन्द**

(२४) **श्री यशपालजी**

आर्य परिवारके रत्न, विविध आर्य कन्या पाठशालाओंमें आर्यं कन्याओं- को शिक्षा देनेवाली पूज्या माताके सुपूत, गुरुकुल कांगड़ीके विद्यार्थी, देवता स्वरूप भाई परमानन्दजीकी देखरेखमें नैशनल कालिजमें शिक्षा प्राप्त करने वाले आर्य युवक थे । अतः आपके प्रेरणा स्रोत थे— **महर्षि दयानन्द**

(२५) **श्री हंसराज वायरलैस**—

श्री स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा कन्या महाविद्यालय जालन्धरमें शिक्षाप्राप्त, प्रतिदिन हवन यज्ञ करने वाली माताके सुपूत थे । अपनी माताजीकी प्रेरणासे राष्ट्रसेवामें संलग्न आर्यसामजके अनुगृहीत नर-रत्न हैं । अतः आपके प्रेरणा स्रोत थे— **महर्षि दयानन्द**

(२६) **श्री पं० जगदीशचन्द्रशास्त्री न्याय-रत्न**—

श्री मद्दयानन्द अ़रबी-संस्कृत महाविद्यालय अमृतसरके आचार्य, वैदिक- धर्मके प्रकाण्ड-प्रचारक, शास्त्रार्थ महारथी थे । अन्तमें सार्वदेशिक आर्य प्रति- निधि सभाके प्रधान श्री सेठ प्रतापसिंहजी (शूरजी वल्लभदास) द्वारा आयोजित वेद पारायण यज्ञमें भाग ले रहे थे कि बम्बई में उनका देहान्त हो गया । अतः उनके प्रेरणा-स्रोत भी थे— **महर्षि दयानन्द**

उद्धरण स्रोत

१४ (क) नरम-दल के माडरेट

(1) Dadabhai Naoroji—R. P. Masani, PP 520
(2) Ibid PP 522
(3) ,, 509
(4) Sainik Samachar 20 October, 1968
(A Govt. of India Publication)
(5) Dadabhai Naoroji—R. P. Masani, page 380
(6) भारतीय स्वातन्त्र्य संग्रामका इतिहास
(7) आर्य समाजका इतिहास, पृष्ठ ६२
(8) भारतीय स्वातन्त्र्यका इतिहास, पृष्ट १०
(9) Organiser, 15-8-1065

१४ (ख) गरम-दलके ऐक्स्ट्रीमिस्ट

(1) British journalist Novinsons Statement
(2) सरदार अजीतसिंह का स्प्रिंग हाऊस डलहौजी से पत्र १०-८-१९४८
—प्रताप जालन्धर १२-१०-१९६८

१४ (ग) कांग्रेसी

(1) Sainik Samachar, dated 20th Oct., 1968
(2) Ibid
(3) Amritsar Conspiracy cases 1919

१४ (घ) क्रान्तिकारी

"Looking To India" by Miloslav Printed in Czecho Slovakia, PP 87 O R B S/Prague
(1) Organiser May 30, 1970
(2) Savaskar's letter to his brother—1908
(3) क्रान्तिका नाद—वीर सावरकर पृष्ठ ३४
(4) उक्त पुस्तक पृष्ठ ३९
(4A) Looking to India जैसा ऊंपर (क) में है
(5) Madanlal Dhingra's Statement
(6) Netaji Subhash Chandra's Broadcast—25-6-1944
(क्रान्तिका नाद, पृष्ठ ९०)
(7) उर्दू साप्ताहिक प्रकाश सम्पादक म. कृष्ण जी
(8) हिन्दुसंगठन साप्ताहिक अमृतसर ८-१-१९७१
(9) पुस्तक पं० सोहनलाल पाठक

१५

अन्तिम निवेदन

हमने पूर्व-पृष्ठोंमें यह सिद्ध करनेका यत्न किया है कि हिन्दुस्थानकी दासताकी सुदृढ़ साङ्कलोंको काटनेके लिये अगणित महानुभावों, अनेक संस्थाओं, विविध संगठनों एवं पृथक्-पृथक् विधि-विधानों द्वारा यत्न किये जाते रहे हैं। किसी भी व्यक्ति अथवा समष्टिने इस सन्दर्भमें जितना भी सहयोग दिया, उसे उतना श्रेय अवश्य मिलना चाहिये। परन्तु क्योंकि **मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना** के अनुसार सबके मस्तिष्कोंका विकास एक ही प्रकारसे नहीं होता, सबकी विचार-सरणी एक ही मार्गका अनुसरण नहीं करती, अतः राष्ट्रके प्रत्येक घटकसे यह आशा रखना कि वह एकही ढंगसे सोचेगा, एक ही प्रकारके संकल्प-विकल्प-तरंग उसके हृदय सागरमें उठेंगे और परिणामतः वह एक ही निष्कर्ष पर पहुंचनेके लिये, एक ही मार्गका अवलम्बन करेगा, मानो मनो-विज्ञानसे अपनी अज्ञानताका परिचय देना है, विज्ञानका मुंह चिढ़ाना है और मानव-प्रकृतिसे अपनी अनभिज्ञताका ढिण्डोरा पीटना हैं। अतः हमारी सुनिश्चित धारणा है कि जिस-जिसने, जितना-जितना, जहाँ-जहाँ तक, जिस-जिसरीति-नीतिसे; राष्ट्रोत्थानके पवित्र लक्ष्यसे कार्य्य किया; अपने-अपने ढंगसे, अपनी-अपनी शक्ति एवं सामर्थ्यके अनुरूप, अपने-अपने बुद्धि कौशल तथा सूझ-बूझके अनुकूल व्रत-धारण करके उसे कार्यान्वित किया, उसके लिये हम उन्हें धन्यवादके पात्र समझते हुए आभार व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य मानते हैं।

इन समस्त तत्त्वोंको स्वीकार करते हुए भी हमारा पक्ष यह है कि यदि हम गहरा अन्वेषण करेंगे, तो देशको स्वतन्त्र करानेका प्रयत्न करनेवाले समस्त व्यक्तियों, संगठनों, सभाओं, सोसाइटियों अथवा आन्दोलनोंका कमसे कम इस विषय में **प्रेरणाका मूल-स्रोत** प्रायः **महर्षि दयानन्द**को ही पायेंगे। यही सिद्ध करना हमारा लक्ष्य रहा है। इसमें हम कहाँ तक सफल हुए हैं, यह तो विज्ञ पाठक ही कह सकेंगे। हमारा कर्त्तव्य तो अपने विचार पूरी आस्था, श्रद्धा एवं निश्चयात्मक बुद्धिसे प्रस्तुत करनेका था और इसमें हमने यथा-मति कोई कोर-कसर रहने नहीं दी।

आरम्भमें महर्षिके स्व-वर्णित जीवन चरित्र और तत्पश्चात् अन्य स्रोतोंसे प्राप्त सामग्रीके आधारपर श्री स्वा० सम्पूर्णानन्द (कन्खल) से क्रान्तिकारी संस्कार प्राप्त करके भावी विप्लवके नेताओंकी सम्पर्क-सहयोग-परामर्श एवं

क्रियात्मक योगदान आदि तथ्योंका उल्लेख करनेके अनन्तर विप्लवकी विफलताके उपरान्त स्वामी विरजानन्दसे विद्या प्राप्तिका वर्णन किया गया हैं। तत्पश्चात् इसी संदर्भमें हमने महर्षि दयानन्दके कार्य-क्षेत्रमें अवतीर्ण होनेसे पूर्वसमयका चित्र खेंचनेका यत्न किया है कि किस प्रकार विदेशी एवं विधर्मी सरकार तथा लेखकोंके निरन्तर मौखिक एवं लेख-बद्ध प्रचारके कारण हिन्दुस्थानियोंके हृदयोंमें हीन-भावनाओंका आधिपत्य होजानेकेकारण स्वराज्य-प्राप्तिकी भावनाएँ लुप्त प्राय हो गई थीं, कि अपने समाजमें, अपने ही देशके मत-मतान्तरोंने स्त्रिशिक्षा बन्द करके तथा-मातृशक्तिको हीनावस्थामें पहुंचाकर, जातिके बड़े भागको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखकर, उन्हें अछूत-अस्पृश्य आदि नामोंसे पुकारकर, इसाई-मुसलमानोंको प्रोत्साहित किया कि वे इन्हें इनकी दीन-हीन दशाका लाभ उठाते हुए धर्म-च्युत होनेकी प्रेरणा कर सकें; ईसाई प्रचारक तथा पाश्चात्य विद्वान् हिन्दु-समाजकी उक्त भयावह स्थितिको समक्ष रखते हुए उन्हें कुछ ही वर्षोंमें ईसाई बना लेनेके स्वप्न देखने लगे थे; कि उन लोगोंके प्रचारसे बा. केशवचन्द्र सेन जैसे बड़े विद्वान् नेताभी प्रभावित होनेसे नहीं बचे थे, यहाँ तक कि पं० नीलकण्ठ शास्त्री जैसे संस्कृतके दिग्गज पण्डित भी ईसाई मतमें सम्मिलित हो गये और कहते हैं उन्होंने ही बाईबलका संस्कृत-में भाषान्तर कर दिया था; कि विदेशी और विधर्मी लोगोंने वेदके सम्बन्धमें महा अनर्गल भावनाएँ फैला रखी थीं कि ये तो असभ्य गडरियोंके गीत ही हैं, इससे अधिक इनका कुछभी मूल्य नहीं है। साथही यह भी कि जैसे मुग़ल, पठान, फ्राँसीसी, अंग्रेज़ आदि जातियाँ बाहरसे आई हैं, वैसे ही आर्य लोग भी मध्य एशिया आदि देशोंसे यहाँ आये हैं, ये यहाँके आदि वासी नहीं, प्रत्युत कोई और थे; कि महर्षि दयानन्दने उक्त सम्पूर्ण भ्रान्त-धारणाओं एवं हीन-भावनाओंका निराकरण करके स्वराज्यकी भावनाको पुनः देश-वासियोंके हृदयोंमें जागृत किया; कि महर्षिने भारतवर्षकी महिमाका गान करते हुए इसे संसारभरके देशोंका मुकुट-मणि घोषित किया, इसे पारसमणि कहा जिसे छूते-के साथ ही दरिद्र-विदेशी धनाढय् हो जाते हैं। इस प्रकार आपने अपने देशके वैभवका सिक्का अपनों-बेगानोंके दिलोंपर बिठानेका यथार्थ एवं सफल प्रयत्न किया; कि महर्षिने विनाशके हेतुओंकी गणना करते हुए परस्परकी ईर्ष्या-द्वेष, कलह-क्लेश और फूटको सबसे भयानक शत्रु घोषित किया और गोत्र-हत्यारे दुर्योधनकी भरपूर-भर्त्सना करते हुए दुष्टाचार, भ्रष्टाचार, अनाचार एवं अत्या-चारसे बचनेका आग्रह किया; कि महर्षि दयानन्द सरस्वती सर्वस्व-त्यागी संन्यासी होते हुए और अठारह घण्टेकी अविरल योग-समाधिका अवर्णनीय

आनन्द और मुक्तिकी अभिलाषाका भी परित्याग करके देशकी हीन-दशाको देखकर विह्वल हो उठे। वह दृढ़-संकल्प, ममत्व-त्यागी महात्मा जो प्रिया भगिनी और आदरणीय चचाकी मृत्युपर प्रस्तर-मूर्ति बना खड़ा रहा था, देशकी दरिद्रताको देखकर बच्चोंकी तरह बिल-बिला उठा; कि देश भक्त महर्षि दयानन्दको हिन्दुस्थानके लिये स्वराज्य-प्राप्तिके विचारोंने इतना निर्भीक बना दिया था कि सबसे बड़े अंग्रेज़ सत्ताधारी लार्ड नार्थ ब्रुक वायसरायके यह कहने-मात्रपर कि अपनी प्रार्थना-सभाओंमें ब्रिटिश राज्यकी दृढ़ताके लिये भगवान्से प्रार्थना कर दिया करें, शान्त मुद्रामें वार्तालाप करते-करते एकदम गम्भीर स्वरसे बोल उठा—"मैं ऐसी कोई बात स्वीकार नहीं कर सकता, मैं-तो प्रभुसे सायं-प्रातः यह याचना किया करता हूं कि मेरे देशवासी शीघ्राति-शीघ्र विदेशी-सत्ताके जूएसे उन्मुक्त हो जायँ"; जिसके परिणाम स्वरूप आ-जीवन सी. आई. डी. के कर्मचारी छाया-वत् आपका अनुसरण करते रहे और नवीन अन्वेषकोंके अनुमानानुसार यही अन्तमें आपकी अकाल-मृत्युका प्रधान कारण बना; परन्तु देशहितमें निर्भय दयानन्दने अपने आत्माकी आवाज़-को बड़े-से-बड़े सरकारी अधिकारीके सामने भी नहीं दबाया; कि महर्षिके युक्ति-युक्त, विद्वत्तापूर्ण प्रचारका प्रभाव विदेशी लेखकों और उनके स्वदेशी समर्थकोंपर भी पड़ा और कट्टर विरोधी भी महर्षिका यशोगान करने लगे; कि स्वदेशमेंभी छोटे-बड़े, सबपर महर्षिका जादू काम कर गया और अपने-अपने तरीकेपर प्रायः सभीने देशको स्वतन्त्र करानेका प्रयत्न आरम्भ कर दिया।

अतः हमने सुविधाके लिये इन स्वतन्त्रता-प्रिय देश-भक्तोंको निम्नांकित चार श्रेणियोंमें विभक्त किया—

(१) नरम दलके मॉडरेट — Moderates (२) गरम दलके ऐक्स्ट्रीमिस्ट—Extremists (३) सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, असहयोगके समर्थक कांग्रेसी—Congressites (४) स्वदेश, स्वधर्म, स्वदेशी, स्वातन्त्र्य एवं स्वावलम्बनके पाँच-सूत्री प्रोग्रामको समक्ष रखने वाले सर्वस्व बलिदानी वीर-क्रान्तिकारी—Revolutionaries

और अन्तमें सब दलोंके प्रयत्नोंका यथा-सम्भव उल्लेख करके यह स्पष्ट करनेका यत्न किया है कि यद्यपि समस्त दलोंके विचार भिन्न-भिन्न थे, कार्यक्षेत्र पृथक्-पृथक् थे और कार्य-पद्धति भी परस्पर मिलती नहीं थी, तथापि यदि ध्यान पूर्वक अध्ययन किया जाय तो हम इसी परिणामपर पहुंचेंगे कि देशके लिये स्वराज्य-प्राप्तिके विषयमें सबके **प्रेरणा-स्रोत महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी ही थे।**

बोलो स्वराज्य प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी की जय।

ओ३म्

महर्षि दर्शन

१

नमो करू बार-बार, तेरे चरनां मझार, सच्चे कर्त्तार, बेड़ा पार कर दीजिय ।
अभय अविनाशी, सत्-चित सुख-राशी, प्रभो ! काटो काल-पाशी, दुःख सभी हर लीजिये ।
सच्चे न्यायकारी, खल-दुष्ट बिहारी नाथ ! भक्त उद्धारी, हृदय प्रीति धर दीजिये ।
तेरो ओम् नाम जप, सभी काम सिद्ध होवें, अमृत पिये प्यारे ! जैसे मर जीजिये ॥१॥

२

कलकी यह बात जब भारतकी भूमि पर, छाये हुए बादल थे भाई अज्ञानके ।
अक़ल, दिमाग़, दिल-गुर्दा, ज़मीर सभी, चक्करमें आये थे हां ऋषि सन्तानके ।
दबे हुए नीचे ऐरे-ग़ैरे, नत्थू-ख़ैरेके थे, क़िस्से सभी भूले ये पुरानी आन-बानके ।
धर्म-ईमान सभी खोयके नादान बैठे, हुए जब दीद दयानन्द भगवान्के ।

३

किसी ओर जैन-बुद्ध, लेने देते थे न सुध, किसी ओर हो रहे थे, हमले क़ुरआनके ।
योरुप-अमरीका से इकठ्ठे होये धाये सभी, पादरी भी आये यहां, सारे ही जहानके ।
भोले-भाले हिन्दुओंको, लूटते थे सभी यहां, लायके बहाने, पीर, क़बर-मसानके ।
अपना-पराया यहां, सूझता न कोई भी था, हुए जब दीद दयानन्द भगवान्के ।

४

हिन्दुओंका धर्म था, निकम्मी इक चीज़ बना, 'मसअले' इकठ्ठे किये हुए थे नादानके ।
कोरे ही शाइस्तगीसे, जानते थे लोग हमें, बुरे आये दिन मानो ऋषि सन्तानके ।
लक़ब-'लकाब वही देते थे जनाब हमें, शोधे ओ निकम्मे थे जो सारे ही जहानके ।
बुरी गति हो रही थी हिन्दुओं की सच जानो, हुए जब दीद दयानन्द भगवान्के ।

५

पूजा एक ईश, जगदीशकी भुलाये बैठे, पीछे-पीछे फिरें, कई करोड़ देवतानके ।
कालिज, स्कूल, गुरु-कुलकी भुलाई रीति, जगह-जगह मन्दिर थे, पत्थर-पूजानके ।
ऋषिकृत ग्रन्थको न पूछता था कोई यहां, जहां तहाँ देखो, खुले पोथड़े पुरानके,
चहूं ओर छाया, अन्धकार ऋषि-देशपर, हुए जब दीद दयानन्द भगवान्के

६

'मरे कोई जिये, घोल सुथरा पतासे पिये', यही थे विचार, तो हमारे ब्राह्मणानके।
उन्नति की सुध-बुध, देशकी न रही इन्हें, सपने भी आते, खीर-पूड़ीके उड़ानके।
भंग-ओ-शराब पिये, खूब जो उड़ाये मांस, यही थे सिफ़ात, तो हमारे पण्डितानके।
अधोगति देशकी, हुंई थी पूरी-पूरी बस, हुए जब दीद दयानन्द भगवान्के।

७

काली, भैरों-बीर, शेर देवी की सवारी वाला, कहूं बने मन्दिर थे, कई हनुमान् के।
भोले-नाथ शिवजीके, डौरू कहूं बाजते थे, शोर मचे हुए कहूं गंगा अशनानके।
धौंकलके पीर, ओ निगाहेके फक़ीर सभी, लूट-लूट खा रहे थे माल हिन्दुवानके।
बुद्धू कौम दुनिया में, यही एक रह गई थी, हुए जब दीद दयानन्द भगवान्के।

८

हट्टे-कट्टे, डंडे-मुशटण्डिओंको दे रहे थे, भूल गये गुर, सभी पात्र पहचान के।
लूल्हे, अन्धे, लङ्गड़ेकी बात कोई पूछे नाहीं, गिरे हुए भाव देखो कैसे यजमान के।
बैठ जो नाकारे, खाय जांयगे जहान सारा, ऐसे बने पात्र थे, हमारे अभी दान के।
दानका तरीक़ा, सीधा भूला इन हिन्दुओं को, हुए जब दीद दयानन्द भगवान्के।

९

आठ साला देवीका विवाह किया बढ्डे संग, इकट्ठे कर लीने भारी झुण्ड विधवान के।
इनही की आहने, जलाई भाई कौम सारी, यही हैं तरीके, एक कौमको डुबानके।
कैसे भला होवे भाई ! किश्ती नदी के पार, चप्पू हाथ दिये जौ नादान या शैतान के।
कोई कोई दम, बाक़ी कौम में रहा था बस, हुए जब दीद दयानन्द भगवान् के।

१०

"गौतम-पतंजली-कणाद के भी बाबा-दादा जानते न कुछ, बिना बकरी चरान के,
आत्मिक विद्या, विदेशसे ही आई यहां, खाक जानते थे बड़े राम भगवान् के !
"ज्योतिष, हिसाब, योग, इल्मो- कानून सारे, कारीगरी और जेते गुण हैं जहान के।
योरुप से आये" ऐसा सभी यहां दावा करें, हुए जब दीद दयानन्द भगवान् के।

११

आज-कल लाखों देसी दीखते ईसाई, भाई ! इनमें बताओ कौन इङ्गलिस्तान के ?
इटली, फ्रांस देश, रूस अमरीका ओ— स्पेन जर्मनीका न एक भी निशान दे।
शुद्रोंमें पूत, कोई जाति राजपूत भाई ! बचे-खुचे पूत हैं ये सारे ब्राह्मणान के।
इसी तरह भेड़ोंमें ये ईसा ही की मिल जाते, दीद जौ न होते दयानन्द भगवान् के।

१२

ऐसा था निकम्मा-कच्चा धागा धर्म हिन्दुओं का, निश्चय न रहा नीलकण्ठ विद्वान् के।
पादरी उड़ाते थे मख़ौल और ठट्ठे ही में, रख-रख सामने वे पोथड़े पुरानके।
खेंच-खेंच हिन्दुओंको, हिन्दुओं से लेते गये, भरे जा के गल्ले वहां ईसा रहमानके।
हिन्दमें न नाम बाक़ी हिन्दुओं का रहने पाता, दीद जौ न होते दयानन्द भगवान्के।

१३

पड़े रहते बिस्तरे-बीमारी पर हिन्दु सारे, फल राहु-केतु के क्रोध का पहचानके।
दारू न दवाई, कोई लेने जाता मूल भाई, शनि, भूमि-सुतजीकी दशा है यूं जानके।
कई मरे खाय भय, डाकिनी पिशाचिनीके, भूत-ओ-प्रेत देख बीच शमशानके।
जल जाते वहम ही की, अग्निमें देश सारे, दीद जौ न होते दयानन्द भगवान्के।

१४

आता, न जगाता, दयानन्द हमें आये यदि, भाव कैसे आते, देश सेवा में ध्यानके ?
सदियोंसे जैसे गूढ़, नींद थे उड़ाये रहे, भाग्य सोये रहते, इस हिन्दु सन्तानके।
सबसे दबाये रहते, हिन्दवासी सच जानो, आते न ख्याल, जो गुज़श्ता अभिमानके,
भारतका गौरव, अन्धेरे में ही रहता भाई! दीद जौ न होते दयानन्द भगवान्के।

१५

"शमशीर ज़ालिमोंकी हिन्दुओं को मार देती, कलमा न मानते जो नबी ओ क़ुरआनके।
हिन्दमें न हिन्दु भाई, जीता कोई मूल रहता, जौ न तीर छूटते गोबिन्दसिंह जवानके।"
इसी तरह हिन्दु लोगों, एक भी न दीख पाता, खाये जाते हमें, जो ये भेजे 'साहिबान' के।
सबसे पुराना धर्म, नाश होय जाता यूं ही, दीद जौ न होते दयानन्द भगवान्के।

१६

लोप होती विद्या, यह वेदकी जहानमेंसे, दर्शन न होते हमें वेद भगवान्के।
गप्प-शप्प मार, मन-मतियोंने बैठ यहां, कीनी भरमार लिख पुस्तक पुरानके।
तेंतीस करोड़, देव-पूजा होती रहती यहां, कौन गुण गाता उस ईश्वर महान्के,
वेद-प्रचारकी न, होश कभी आती हमें, दीद जौ न होते दयानन्द भगवान्के।

१७

'खण्डिनी-पाखण्ड' वह पताका न लहराती गर, 'कट्ठे होय जाते तो पाखण्ड ही जहानके।
लेता कोऊ धर्म-उपदेशकी न सुध-बुध, छिड़े रहते क़िस्से यहां खान और पानके।
ताओ ख़ूब मूंछन पे, देके भाई जौन फिरें, नशे छूट जाते सभी जाति अभिमानके।
पहुंचा होता जायके, रसातलमें देश सारा, दीद जौ न होते दयानन्द भगवान्के।

१८

भैरों हूं के सन्त, जोगी, जती, संन्यासी सारे, जेते आज दीखत, महन्त मन्दिरानके ।
स्वर्ग हूं के ठेकेदार, श्राद्ध खानेको त्यार, साथ गिन लीजे, जो पूजारी हनुमान्के ।
शिखा कट जाती, औ जनेऊ सभी टूट जाते, मिटते निशान, सभी ऋषि-सन्तानके ।
देवी-देव देहुरेके, वाली न नज़र आते, दीद जौ न होते दयानन्द भगवान्के ।

१९

कौन गाता गीत, महाराणी देवी भगवतीके, जय जय सीताराम यहां कौन कहता आनके ?
कौन फिर आनके, बनाता ऊंचे-लम्बे-चौड़े, गोल-मोल शिवजी, बताओ तो पाषाणके ।
छोड़ निज धर्मको, ईसाई होय जाते सारे, बाकी बन जाते, कोई हाफ़िज क़ुरआनके ।
कोई पन्थ हिन्दमें, न हिन्दुओं का बाकी रहता, दीद जौ न होते दयानन्द भगवान्के ।

२०

आओ मिल बैठो, छोड़-छाड़के फ़साद सारे, गाओ गुणवाद परमात्म महान्के ।
जिसकी अपार, दया-दृष्टिसे ही आये यहां, कष्ट दयानन्द, सहे लाखों ही जहानके ।
तोड़ दी ग़ुलामी, वह दिमाग़ी कर खण्ड-खण्ड, दिये बतलाये जो फ़रायिज़ इंन्सानके ।
देशका सुधार, कभी 'प्रीतम' न होने पाता, दीद जौ न होते दयानन्द भगवानके ।

'प्रीतम' अमृतसरी'

स्वामी ... बहालगढ़ (सोनीपत)

श्रीमद्दयानन्द वचनामृत

१. अपमानकर्त्ताका अपमान करनेसे उसका सुधार नहीं होता, किन्तु सम्मान देनेसे वह सुधर जाता है……………।
२. कभी नास्तिक, लम्पट, विश्वासघाती, मिथ्यावादी, स्वार्थी, कपटी, छली आदि दुष्ट मनुष्योंका संग न करे ।
३. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहियें । (नियम ५)
४. सबसे प्रीति र्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य बर्त्तना चाहिये । (नियम ७)

स्वराज्य महिमा —

अब अभाग्योदयसे और आर्योंके आलस्य, प्रमाद, परस्पर-के विरोधसे अन्य देशोंके राज्य करनेकी कथा ही क्या कहना किन्तु आर्यावर्त्तमें भी आर्योंका अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन. निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियोंके पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियोंको अनेक प्रकारके दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि होता है। अथवा मतमतान्तरके आग्रह रहित, अपने और परायेका पक्षपात शून्य, प्रजापर पिता माताके समान कृपा, न्याय और दयाके साथ विदेशियोंका राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न भिन्न भाषा, पृथक् पृथक् शिक्षा अलग व्यवहारका विरोध छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्परका पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है।

(सत्यार्थप्रकाश अष्टम समुल्लास)